ॐ

श्रीश्री चैतन्य-चरितावली

[खण्ड २]

त्यागवैराग्यप्रेमाब्धेः
श्रीचैतन्यमहाप्रभोः ।
भक्तानन्दकरी भूया-
च्चैतन्यचरितावली ॥

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

मूल्य एक रुपया चालीस पैसे

श्रीहरिः

श्रीचैतन्य-चरितावली

[द्वितीय खण्ड]



लेखक

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

ॐ

श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली

(द्वितीय खण्ड)

य

ौर

उसर्न

-ही

उच्चैरास्फालयन्तं करचरणमहो हेमदण्डप्रकाण्डौ
बाहू प्रोद्धृत्य सत्ताण्डवतरलतनूं पुण्डरीकायताक्षम्।
विश्वस्यामङ्गलघ्नं किमपि हरिहरीत्युन्मदानन्दनादै-
र्वन्दे तं देवचूडामणिमतुलरसाविष्टचैतन्यचन्द्रम्॥

डरीक

ताई

फाल्गुन

गीताप्रेस, गोरखपुर

प्रकाशक
मोतीलाल जालान
गीताप्रेस, गोरखपुर

सं० [illegible] से २०१६ तक २१,२५०
सं० [illegible] पाँचवाँ संस्करण ५,०००
सं० २०२२ छठा संस्करण ५,०००
कुल ३१,२५०

मूल्य १.४० (एक रुपया चालीस पैसे)
सजिल्द १.८० (एक रुपया अस्सी पैसे)

गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

श्रीहरिः

विषय-सूची

चित्र-सूची

समर्पण

यत्कृतं यत्करिष्यामि यत्करोमि जनार्दन ।
तत् त्वयैव कृतं सर्वं त्वमेव फलभुग् भवेः ॥*

प्यारे ! लो, यह तुम्हारे कराये हुए कार्यका दूसरा अंश है। अपनी चीजको आप ही स्वीकार करो और जिस प्रकार स्वामी सेवकके द्वारा अपनी ही वस्तु पाकर उसकी ओर कृपाकी दृष्टिसे देखता है, उसी प्रकार इस दीन-हीन, कंगाल, साधन-रहित सेवककी ओर भी कृपा-कटाक्षकी कोरसे एक बार निहार भर लो। यही इस कृतघ्न सेवककी अभिलाषा है।

प्रभो ! तुम्हारे कराये हुए कार्योंमें अपनेपनके भाव न उठने पावें। मैं भी महात्मा पलटूदासजीकी भाँति निष्कपटभावसे बनावटी-पनको दूर करके हृदयसे कह उठूँ—

ना मैं किया न करि सकौं, साहिब करता मोर ।
करत करावत आप है, 'पलटू' 'पलटू' शोर ॥

श्रीहरिबाबाका बाँध
गँवा (बदायूँ)
फाल्गुनशुक्ला ६,
१९८८ वि०

कृपाकटाक्षका आकांक्षी—
तुम्हारा पुराना सेवक
प्रभु

---

*हे जनार्दन ! मेरेद्वारा जो कुछ हुआ है, हो रहा है और जो आगे होगा वह सब तुमने ही कराया है, इसलिये तुम्हीं इन सबके फलभोक्ता हो।



प्राक्कथन

आनन्दलीलामयविग्रहाय
हेमाभदिव्यच्छविसुन्दराय ।
तस्मै महाप्रेमरसप्रदाय
चैतन्यचन्द्राय नमो नमस्ते ॥*

(चैतन्यचन्द्रामृतस्य)

पुण्यवती नवद्वीप नगरीमें मिश्रवंशावतंस पुरन्दर-उपाधि-विशिष्ट पण्डितप्रवर श्रीजगन्नाथ मिश्रके यहाँ भाग्यवती शचीदेवीके गर्भमें तेरह मास रहकर महाप्रभु गौराङ्गदेव सं० १४०७ शकाब्द (वि० १५४२) की फाल्गुनकी पूर्णिमाके दिन इस धराधामपर अवतीर्ण हुए। बाल्यकालसे ही इन्होंने अपने अद्भुत-अद्भुत ऐश्वर्य प्रदर्शित किये। अपनी अलौकिक बाल-लीलाओंसे ये अपने माता-पिता, भाई-बन्धु तथा पुरजन-परिजनोंको आनन्दित करते हुए जब इनकी अवस्था सात-आठ वर्षकी हुई तब इनके अग्रज विश्वरूपजी अपने पिता-माताको बिलखते छोड़कर संसारत्यागी

---

* जिनका श्रीविग्रह आनन्द-लीलामय ही बना हुआ है, जिनके शरीरकी सुन्दर कान्ति सुवर्णके समान शोभायमान और देदीप्यमान है, जो प्राणियोंको पूर्ण प्रेम प्रदान करनेवाले हैं, चन्द्रमाके समान शीतल प्रेमरूपी किरणोंके द्वारा भक्तोंके सन्तापोंको शान्त करनेवाले उन श्रीचैतन्यदेवके चरण-कमलोंमें हम बार-बार प्रणाम करते हैं।

विरागी बन गये। तब इन्होंने पुत्र-शोकसे दुखी हुए माता-पिताको अल्पावस्थामें ही अपने अनुपम सान्त्वनामय वाक्योंसे शान्ति प्रदान की और माता- पिताकी विचित्र भाँतिसे अनुमति प्राप्त करके विद्याध्ययनमें ही अपना सम्पूर्ण समय बिताने लगे। कालान्तरमें इनके पूज्य पिता परलोकवासी हुए, तब सम्पूर्ण घर-गृहस्थीका भार इन्हींके ऊपर आ पड़ा। इसीलिये सोलह वर्षकी अल्पायुमें ही ये अध्यापकीके अत्युच्च आसनपर आसीन हुए और कुछ कालके अनन्तर द्रव्योपार्जन तथा मनोरञ्जन और लोक-शिक्षणके निमित्त इन्होंने राढ़-देशमें भ्रमण किया। विवाह पहले ही हो चुका था। राढ़देशसे लौटनेपर अपनी प्राणप्रिया प्रथम पत्नी लक्ष्मीदेवीको इन्होंने घरपर नहीं पाया, उन्हें पतिरूपी वियोग भुजंगने डस लिया था। माताकी प्रसन्नताके निमित्त उनके आग्रह करनेपर श्रीविष्णुप्रियाजीके साथ इनका दूसरा विवाह हुआ। कुछ काल अध्यापकी करते हुए और गार्हस्थ्य जीवनका सुख भोगनेके अनन्तर इन्होंने पितृ-ऋणसे उऋण होनेके निमित्त अपने पूर्व पितरोंकी प्रसन्नता और श्राद्ध करनेके लिये श्रीगयाधामकी यात्रा की। वहींपर स्वनामधन्य श्रीस्वामी ईश्वरपुरीने न जाने इनके कानमें कौन-सा मन्त्र फूँक दिया कि उसके सुनते ही ये पागल हो गये और सदा प्रेम-वारुणीका पान किये हुए उसके मदमें भूले- से, भटके-से, उन्मत्त-से, खिड़ी-से, पागल-से बने हुए ये सदा लोकबाह्य प्रलाप-सा करने लगे। ऐसी दशामें पढ़ना-पढ़ाना सभी कुछ छूट गया। बस, प्रेममें उन्मत्त होकर प्रेमी भक्तोंके सहित अहर्निश श्रीकृष्ण-कीर्तन करते रहना ही इनके जीवनका एकमात्र व्यापार बन गया। पुराना जीवन एकदम परिवर्तित हो गया। गयासे आनेपर अध्यापकीका अन्त होनेपर इनके पुराने जीवनके कार्यक्रमका भी अन्त ही हो गया। यह गौराङ्ग महाप्रभुके जीवनका प्रथम भाग है, जिसका विस्तारके साथ वर्णन पाठकवृन्द 'श्रीश्रीचैतन्य-चरितावली' के प्रथम खण्डमें पढ़ ही चुके होंगे।

महाप्रभुके असली प्रेममय जीवनका आरम्भ तो उनके जीवनके दूसरे ही भागमें होता है, जैसा कि हम पहले ही बता चुके हैं। प्रथम खण्डको तो उनके असली जीवनकी भूमिका ही समझनी चाहिये। भूमिकाका असली वस्तुके बिना कोई महत्त्व ही नहीं। प्रेम-जीवन ही असली जीवन है। जिस जीवनमें प्रेम नहीं उसे 'जीवन' कहना ही पाप है। वह तो 'जड जीवन' है। जिस प्रकार ईंट-पत्थर पृथ्वीपर पड़े हुए अपनी आयु बिताते हुए भूमिका भार बने हुए हैं, वही दशा प्रेमसे रहित जीवन बितानेवाले व्यक्तिकी है। हिन्दीके किसी कविने निम्न पद्यमें प्रेमका कैसा सुन्दर आदर्श बताया है—

प्रेम ही सब प्राणियोंके पुण्य-पथका द्वार है।
प्रेमसे ही जगतका होता सदा उपकार है॥
जिस हृदयमें प्रेमका उठता नहीं उद्गार है।
व्यक्ति वह निस्सार है; वह मनुज भूका भार है॥

सचमुच प्रेमके बिना जीवन इस भूमिका भार ही है। महाप्रभुके जीवनमें प्रेम ही एक प्रधान वस्तु है। उनका जीवन प्रेममय था या वे स्वयं ही प्रेममय बने हुए थे। कैसे भी कह लीजिये, उनके जीवनसे और प्रेमसे अभेद सम्बन्ध हो गया था। 'गौरजीवन' और 'प्रेम' ये दोनों पर्यायवाची शब्द ही बन गये हैं। इन बातोंका पूर्णरीत्या तो नहीं, हाँ, कुछ-कुछ आभास पाठकोंको श्रीश्रीचैतन्य-चरितावलीके पढ़नेसे मिल जायगा।

'श्रीश्रीचैतन्यचरितावली'के सम्बन्धमें एक बात हम पाठकोंको बता देना आवश्यक समझते हैं। वह यह कि यह ग्रन्थ न तो किसी भी भाषाके ग्रन्थका भावानुवाद है और न किसी ग्रन्थके आधारपर ही लिखा गया है। इसका एक प्रधान कारण है, प्रायः गौराङ्ग महाप्रभुके सम्बन्धका समस्त

साहित्य या तो बंगला-भाषामें है या संस्कृत-भाषामें। उस सम्पूर्ण साहित्यके लेखक बंगदेशी ही महानुभाव हैं और वे भी चैतन्य-सम्प्रदायके ही सज्जन। उन सभी लेखकोंने चैतन्य जीवनको बंगाली हाव-भाव और रीति-रिवाजोंके ही अधीन होकर लिखा है, क्योंकि बंगाली होनेके कारण वे ऐसा करनेके लिये मजबूर थे। इसके अतिरिक्त एक और भी बात है। आजतक गौड़ीय सम्प्रदायके जितने भी चैतन्य-चरित्र-सम्बन्धी लेखक हुए हैं, उनका दो बातोंके ऊपर प्रधान लक्ष्य रहा है। एक तो अद्वैत-वेदान्त-सम्बन्धी सिद्धान्तको मायावाद बताकर उसकी असच्छास्त्रता सिद्ध करना और दूसरे गौराङ्गदेवको सभी अवतारोंके आदि-कारण 'अवतारी' के पदपर बिठाना। बस, इन दोनों बातोंको भाँति-भाँतिसे सिद्ध करनेके ही निमित्त प्रायः सभी चैतन्यदेवके चरित्र-सम्बन्धी ग्रन्थ लिखे गये हैं। उन परम भावुक लेखकोंने मायावादियोंको उलटी-सुलटी सुनानेमें और श्रीचैतन्यदेवको साक्षात् पूर्ण परब्रह्म नहीं माननेवालोंको कोसनेमें ही अपनी अधिक शक्ति व्यय की है। मायावादियोंको नीचा दिखाने और गौराङ्गके 'अवतारित्व' को सिद्ध करनेमें गौराङ्गका असली प्रेममय जीवन छिप-सा गया है। विपक्षियोंका खण्डन करनेमें वे लेखकवृन्द महाप्रभुके '*तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना*' वाले उपदेशको प्रायः भूल गये हैं। उनका यह काम एक प्रकारसे ठीक भी है, क्योंकि उनका जीवनी लिखनेका प्रधान उद्देश्य ही यह था कि लोग सब कुछ छोड़-छाड़कर श्रीगौराङ्गको ही साक्षात् श्रीकृष्ण मानकर एकमात्र उन्हींकी शरणमें आ जायँ। श्रीगौराङ्गकी शरणमें आये बिना जीवोंकी निष्कृतिका दूसरा उपाय ही नहीं। उन्होंने तो अपने दृष्टिकोणसे लोगोंके परम-कल्याणकी ही चेष्टा की और कुछ गौरभक्तोंमें गौराङ्गका 'अवतारित्वपना' सिद्ध करके अपने परिश्रमको सफल बना भी लिया।

हमारी इस बातको सुनकर कुछ गौड़ीय सम्प्रदायके महानुभाव क्रोध-के कारण हमपर रोष प्रकट करते हुए पूछेंगे—'क्या महाप्रभु गौराङ्गदेव

साक्षात् परब्रह्म परमात्मा नहीं थे ? क्या राधाभावका रसास्वादन करनेके निमित्त स्वयं साक्षात् श्रीकृष्ण ही गौररूपसे अवतीर्ण नहीं हुए थे ?' उन महानुभावोंके श्रीचरणोंमें मैं अत्यन्त ही विनम्रभावसे यह प्रार्थना करूँगा कि—श्रीमहाप्रभु श्रीगौराङ्गदेव साक्षात् श्रीकृष्णके अवतार थे या नहीं, इस बातका मुझे पता नहीं, किन्तु वे महान् प्रेमी अवश्य हैं। प्रेमकी प्राप्तिके लिये जितने त्याग-वैराग्यकी आवश्यकता होती है, वह पूर्णरीत्या महाप्रभु श्रीगौराङ्गदेवके जीवनमें पाया जाता है। भक्तिके परमप्रधान त्याग और वैराग्य ये दो ही साधन हैं। प्रेम भक्तिका फल है। इसीलिये महाप्रभुने प्रेमको मोक्षसे भी बढ़कर पञ्चम पुरुषार्थ बताया है। उस प्रेमकी उपलब्धि अहैतुकी भक्तिके द्वारा ही हो सकती है, और भक्ति त्याग-वैराग्यके बिना हो ही नहीं सकती। अतः महाप्रभु गौराङ्गके जीवनमें त्याग, वैराग्य और भक्ति—इन तीन भावोंकी तीन पृथक्-पृथक् धाराएँ बहकर अन्तमें प्रेमरूपी महासागरमें मिलकर वे एक हो गयी हैं। इन पंक्तियोंके लेखकके द्वारा इन्हीं तीनों भावोंको प्रधानता देते हुए यह जीवनी लिखी गयी है। महाप्रभुके जीवन-सम्बन्धी घटनाओंका आधार तो बंगालकी 'चैतन्य-भागवत', 'चैतन्य मंगल' और 'चैतन्य-चरितामृत' आदि प्राचीन पुस्तकोंसे लिया गया है और उन घटनाओंको श्रीमद्भागवतके भावरूपी साँचोंमें ढालकर भागवतमय बनाया गया है। इस प्रकार महाप्रभु गौराङ्गदेवको उपलक्ष्य बनाकर असली जिसे 'चैतन्य-जीवन' कहते हैं, उसी भागवत चैतन्य-जीवनका इसमें वर्णन है। प्रेम-जीवन ही चैतन्य-जीवन है। श्रीचैतन्यदेवके समान प्रेमके भावोंको प्रकट करनेवाले प्रेमियोंका अवतार कभी-कभी ही इस धराधामपर होता है। वे अपने प्रेममय आचरणोंसे प्राणिमात्रको सुख पहुँचाते हैं। इसीलिये असली प्रेमी देश, काल और जातिके बन्धनोंसे सदा पृथक् ही रहते हैं। उनका जीवन संकीर्ण न होकर सम्पूर्ण संसारको सुख-शान्तिका पाठ पढ़ानेवाला सार्वभौम होता है। वे किसी एक विशेष जातिके भीतर ही

क्यों न पैदा हुए हों, किन्तु उनके ऊपर सभी जातिवालोंका समान अधिकार होता है। सभी देशवासी उन्हें अपना ही मानकर पूजते हैं। इसी दृष्टिको सम्मुख रखकर जैसा कुछ इस लेखकके द्वारा लिखाया गया है, वैसा आपलोगोंके सम्मुख उपस्थित है। उक्त उद्देश्यकी पूर्ति कहाँतक हो सकी है, इसे साम्प्रदायिक संकीर्णतासे रहित पक्षपात-शून्य सहृदय समालोचक महानुभाव ही समझ सकते हैं? हाँ, इतनी बात मैं निरभिमान होकर बताये देता हूँ कि इस पुस्तकमें आये हुए सभी भाव श्रीमद्भागवतके अनुकूल ही हैं। श्रीमद्भागवतकी टीकाओंमें श्रीधरी टीका ही सर्वमान्य समझी जाती है, महाप्रभु भी उसे ही मानते थे। मुझे भी वही टीका मान्य है और उसके विपरीत जहाँतक मैं समझता हूँ, इस ग्रन्थमें कोई भी भाव नहीं आया।

प्रेमको ही ध्रुव लक्ष्य बनाकर श्रीचैतन्य-चरित्रका वर्णन हो सकता है, किन्तु प्रेम कोई लौकिक भाव तो है ही नहीं। उसका वर्णन भला मायाबद्ध अज्ञानी जीव कर ही कैसे सकता है? प्रेमका वर्णन तो कोई असली प्रेमी ही कर सकता है। बात तो यह ठीक ही है किन्तु प्रेमकी उपलब्धि हो जानेपर फिर उसे इतना होश ही कहाँ रहता है, कि वह उस दशाका वर्णन कर सके। कबीरजी तो कहते हैं—

'नाम-वियोगी ना जिये, जिये तो बाउर होय ॥'

हाल तो नाम-वियोगी प्रेमी जीते ही नहीं हैं, यदि दैवसंयोगसे जी भी पड़ें तो वे लोक-बाह्य और संसारी लोकोंकी दृष्टिमें बिल्कुल पागल बन जाते हैं। उन पागलोंसे प्रेम-पथकी बातें जाननेकी आशा रखना दुराशामात्र ही है। यह तो हम-जैसे प्रेमके नामसे अपने स्वार्थको सिद्ध करनेवाले स्वभावके अधीन प्राणियोंके द्वारा ही वे ऐसा काम कराते हैं। इसमें कुछ-न-कुछ लाभ तो प्रेम-पथके पथिकोंको होगा ही। जिस प्रकार कोई राजाको देखना चाहता है, किन्तु राजा हमलोगोंकी तरह

वैसे ही सब जगह थोड़े ही घूमता रहता है ? उसके पास जानेके लिये सात पहरेवालोंसे अनुमति लेनी पड़ती है, तब कहीं जाकर किसी भाग्यशालीको राजाके दर्शन होते हैं, नहीं तो ऐसे-वैसोंको तो पहले पहरेवाला पुरुष ही फटकार देता है। अब जिस आदमीने पहले कभी राजाको देखा तो है नहीं और राजाको देखनेकी उसकी प्रबल इच्छा है, किन्तु असली राजातक उसकी पहुँच नहीं, तब वह चार आनेका टिकट लेकर नाट्यशालामें चला जाता है और वहाँ राजाका अभिनय करनेवाले बनावटी राजाको देखनेपर उसकी इच्छाकी कुछ-कुछ पूर्ति हो जाती है। यद्यपि नाट्यशालामें उसे असली राजाके दर्शन नहीं हुए, किन्तु तो भी उस बनावटी राजाको देखकर वह राजाके वेष-भूषा, वस्त्र-आभूषण, मुकुट-कुण्डल और रोब-दाब तथा प्रभावके विषयमें कुछ कल्पना कर सकता है। उस बनावटी राजाके देखनेसे वह अनुमान लगा सकता है, कि असली राजा शायद ऐसा होगा।

इसी प्रकार इस पुस्तकके पढ़नेसे पाठकोंको प्रेमकी प्राप्ति हो सके, यह तो सम्भव नहीं, किन्तु इसके द्वारा पाठक प्रेमियोंकी दशाका कुछ-कुछ अनुमान अवश्य लगा सकते हैं। उन्हें इस पुस्तकके पढ़नेसे पता चल जायगा कि प्रेममें कैसी मस्ती है, कैसी तन्मयता है, कैसी विकलता है। प्रेम-रसमें छके हुए प्रेमीकी कैसी अद्भुत दशा हो जाती है, उसके कैसे लोक-बाह्य आचरण हो जाते हैं, वह किस प्रकार संसारी लोगोंकी कुछ भी परवा न करके पागलोंकी तरह नृत्य करने लगता है। इन सभी बातोंका दिग्दर्शन पाठकोंको इस पुस्तकके द्वारा हो सकेगा।

अध्यापकीका अन्त होनेके बाद प्रभुका सम्पूर्ण जीवन प्रेममय ही था। अहा ! उस मूर्तिके स्मरणमात्रसे हृदयमें कितना भारी आनन्द प्राप्त होता है ? पाठक ! प्रेममें नृत्य करते हुए गौराङ्गका एक मनोहर-सा चित्र अपने हृदय-पटलपर अङ्कित तो करें।

सुवर्णके समान देदीप्यमान शरीरपर पीताम्बर पड़ा हुआ है। जमीन-तक लटकती हुई चौड़ी किनारीदार एक बहुत ही सुन्दर धोती बँधी हुई है। दोनों आँखोंकी पुतलियाँ ऊपर चढ़ी हुई हैं। खुली हुई आँखोंकी कोरोंमेंसे अश्रु निकलकर उन सुन्दर गोल-कपोलोंको भिगोते हुए वक्षः-स्थलको तर कर रहे हैं। दोनों हाथोंको ऊपर उठाये गौराङ्ग 'हरि बोल, हरि बोल' की सुमधुर ध्वनिसे दिशा-विदिशाओंको गुञ्जायमान कर रहे हैं। उनकी घुँघराली काली-काली लटें वायुके लगनेसे फहरा रही हैं। वे प्रेममें तन्मय होनेके कारण कुछ पीछेकी ओर झुक-से गये हैं। चारों ओर आनन्दमें उन्मत्त होकर भक्तवृन्द नाना भाँतिके वाद्य बजा-बजाकर प्रभुके आनन्दको और भी अत्यधिक बढ़ा रहे हैं। बीच-बीचमें प्रभु किसी-किसी भाग्यवान् भक्तका गाढ़ालिङ्गन करते हैं, कभी किसीका हाथ पकड़कर उसके साथ नृत्य करने लगते हैं। भावुक भक्त प्रभुके चरणोंके नीचेकी धूलि उठा-उठाकर अपने सम्पूर्ण शरीरपर मल रहे हैं। इस स्मृतिमें कितना आनन्द है, कैसा मिठास है, कितनी प्रणयोपासना भरी हुई है? हाय! हम न हुए उस समय? धन्य हैं वे महाभाग जिनके साथ महाप्रभु गौराङ्गदेवने आनन्दविहार और संकीर्तन तथा नृत्य किया।

सर्वप्रथम नाम-सङ्कीर्तनका सौभाग्य-सुख उन भाग्यशाली विद्यार्थियोंको प्राप्त हुआ, जो निमाई पण्डितकी पाठशालामें पढ़ते थे। जब निमाई गौरहरि हो गये और पाठशालाकी इतिश्री हो गयी तब मानो निमाई पण्डित प्रेमपण्डित बन गये। अब वे लौकिक पाठ न पढ़ाकर प्रेम-पाठ पढ़ानेवाले अध्यापक बन गये। सर्वप्रथम उनके कृपापात्र होनेका सौभाग्य परम-भाग्यशाली स्वनामधन्य श्रीरत्नगर्भाचार्यको प्राप्त हुआ। उन भगवद्भक्त आचार्यके चरण-कमलोंमें हम बार-बार प्रणाम करते हुए इस वक्तव्यको समाप्त करते हैं। पाठकोंको प्रथम परिच्छेदमें ही श्रीरत्नगर्भाचार्यजीके ऊपर कृपाकी सर्वप्रथम किरणके प्रकाशित होनेका वृत्तान्त मिलेगा। इस क्षुद्र

लेखककी इतनी ही प्रार्थना है कि इन सभी प्रकरणोंको समाहित चित्तसे पढ़िये। ऐसा विश्वास है, इन सब पाठोंके पढ़नेसे आपको शान्ति मिलेगी।

अन्तमें मैं उन श्रद्धेय और कृपालु महात्माओंके चरणोंमें कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ, जो अपने देवदुर्लभ दर्शनोंसे इस दीन-हीन कंगालको कृतार्थ करते रहते हैं। ब्र० इन्द्रजी, ब्र० आनन्दजी, ब्र० कृष्णानन्दजी, स्वा० विश्वनाथजी (सम्राट् गौरचन्द्र) आदि अपने प्रेमी धर्म-बन्धुओंको भी यहाँ प्रेमपूर्वक स्मरण कर लेना अपना कर्तव्य समझता हूँ। इनके सम्बन्धमें धन्यवाद या कृतज्ञता लिखना तो इनके साथ भारी अन्याय होगा, क्योंकि ये अपने हैं और अपनोंके सामने धन्यवाद और कृतज्ञता ऐसे शब्द कहना शोभा नहीं देता, किन्तु ये सभी भगवान्‌के प्यारे हैं, श्रीहरिके कृपापात्र हैं। प्रभुके प्यारोंके स्मरण करनेसे भी पापोंका क्षय होता है। अतः अपने पापोंके क्षय करनेके ही निमित्त इनका स्मरण कर लेना ठीक होगा। ये बन्धु श्रीगौर-गुणोंमें अनुराग रखते हुए अपनी सुखमय सङ्गतिसे मुझे सदा आनन्दित और समाहित करते रहते हैं।

भगवद्भक्तोंके स्मरण कर लेनेके पश्चात् तो मैं समझता हूँ, अब फिरसे भगवान्‌के स्मरणकी आवश्यकता नहीं रह जाती है। क्योंकि महात्माओंका वचन है--

भक्ति भक्त भगवन्त गुरु चतुर नाम बपु एक।
इनके पदबन्दन किये, मेंटत विघ्न अनेक॥

—प्रेमी पाठकोंसे प्रेमका भिखारी

प्रभुदत्त ब्रह्मचारी

श्रीहरिः

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्

पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात् ।

पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्

कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने ॥

ललित त्रिभङ्गीगतिसे खड़े हुए जो आँखोंकी भौंहोंको थोड़ी चढ़ाये हुए सदा बाँसुरी ही बजाते रहते हैं, जिनके मुखमण्डलपर आजतक मैंने विषादकी रेखा देखी ही नहीं, जो अपने घुँघराले काले-काले कन्धों-तक लटकते हुए बालोंके ऊपर पाँच मयूर-पुच्छोंके मुकुटको पहने रहते हैं, जिनके ऊर्ध्वपुण्ड्रके बीचमें मैं एक छोटी-सी सफेद चन्दनकी गोल बिन्दी रोज और लगा देता हूँ, जिन्हें बाँसुरी बजानेके सिवा कोई दूसरा काम ही नहीं, जो सदा मुरलीको ही मुखपर धारण किये रहते हैं, उन अपने मुरलीमनोहर मोहनको ही सम्पूर्ण मङ्गलोंकी मूर्ति मानकर स्मरण किये लेता हूँ ।



श्रीनिमाई-निताई

कृपाकी प्रथम किरण

निशम्य कर्माणि गुणानतुल्या-

न्वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि ।

यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं

प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति ॥*

(श्रीमद्भा० ७ । ७ । ३४)

हृदयमें जब सरलता और सरसताका साम्राज्य स्थापित हो जाता है, तब चारों ओरसे सद्गुण आ-आकर उसमें अपना निवास-स्थान बनाने लगते हैं । भगवद्भक्तिके उदय होनेपर सम्पूर्ण सद्गुण उसके आश्रयमें

---

* जिन्होंने भक्तोंके वशीभूत होकर उन्हें सुख पहुँचानेके निमित्त भाँति-भाँतिकी अलौकिक लीलाएँ की हैं, उन श्रीहरिके अद्वितीय गुण-कर्मों तथा अद्भुत वीर्य-पराक्रमोंके माहात्म्यका श्रवण करके प्रेमी भक्तके शरीरमें कभी तो अत्यन्त हर्षके कारण रोमाञ्च हो जाते हैं, कभी आँखोंमेंसे अश्रुधारा बहने लगती है, कभी गद्गद-कण्ठसे वह गान करने लगता है, कभी रोता है और कभी उन्मादीकी भाँति प्रेममें निमग्न होकर नृत्य करने लगता है ।

आकर बस जाते हैं। उस समय मनुष्यको पत्तेकी खड़खड़ाहटमें प्रियतमके पदोंकी धमकका भ्रम होने लगता है, वह पागलकी भाँति चौंककर अपने चारों ओर देखने लगता है। यदि उसके सामने कोई उसके प्यारेकी विरदावलीका बखान करने लगे तब तो उसके आनन्दका पूछना ही क्या है, उस समय तो वह सचमुच पागल बन जाता है और उस बखान करने-वालेके चरणोंमें लोटने लगता है। उसकी स्थिति उस विरहिणीकी भाँति हो जाती है, जो चातक-पक्षीके मुखसे भी 'पिउ-पिउ'की कर्णप्रिय मनोहर वाणी सुनकर अपने प्राण-प्यारेकी स्मृतिमें अधीर होकर नयनोंसे नीर बहाने लगती है। क्यों न हो, प्रियतमकी पुण्य-स्मृतिमें मादकता ही इस प्रकार-की है।

महाप्रभु अपने प्रिय शिष्योंके साथ रास्तेमें प्रेमालाप करते हुए अपने घरकी ओर चले आ रहे थे कि रास्तेमें उन्हें आचार्य रत्नगर्भजीका घर मिला। ये महाप्रभुके सजातीय ब्राह्मण थे, ये भी सिलहटके ही निवासी थे। प्रभुको रास्तेमें जाते देखकर इन्होंने प्रभुको बड़े ही आदरके साथ बुलाकर अपने यहाँ बिठाया। रत्नगर्भ महाशय बड़े ही कोमल प्रकृतिके पुरुष थे। इनके हृदयमें काफी भावुकता थी, सरलताकी तो ये मानो मूर्ति ही थे। शास्त्रोंके अध्ययनमें इनका अनुपम अनुराग था। प्रभुके बैठते ही परस्पर शास्त्र-चर्चा छिड़ गयी। रत्नगर्भ महाशयने प्रसङ्गवश श्रीमद्भागवत-का एक श्लोक कहा। श्लोक उस समयका था, जब यमुनाकिनारे यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंकी पत्नियाँ भगवान्‌के लिये भोज्यपदार्थ लेकर उनके समीप उपस्थित हुई थीं। श्लोकमें भगवान्‌के उसी स्वरूपका वर्णन था।

बात यों थी कि एक दिन सभी गोपोंके साथ बलरामजीके सहित भगवान् वनमें गौएँ चरानेके लिये गये। उस दिन गोपोंने गँवारपन कर डाला, रोज जिधर गौओंको ले जाते थे उधर न ले जाकर दूसरी ही ओर

ले गये। उधर बड़ी मनोहर हरी-हरी घास थी। गौओंने घास खूब प्रेमके साथ खायी और श्रीयमुनाजीका निर्मल स्वच्छ जलपान किया। गौओंका तो पेट भर गया; किन्तु ग्वाल-बाल व्रजकी ही ओर टक-टकी लगाये देख रहे थे कि आज हमारी छाक (भोजन) नहीं आयी। छाक कैसे आवे, गोपियाँ तो रोज दूसरी ओर छाक लेकर जाती थीं। आज उन्होंने उधर जाकर वनमें गौओंकी बहुत खोज की, कहीं भी पता न चला तो वे छाकको लेकर घर लौट आयीं। इधर सभी गोप भूखके कारण तड़फड़ा रहे थे। उन सबने सलाह करके निश्चय किया कि कनुआ और बलुआसे इस बातको कहना चाहिये। वे अवश्य इसका कुछ-न-कुछ प्रबन्ध करेंगे। सभी ग्वाल-बाल प्यारसे भगवान्‌को तो 'कनुआ' कहा करते थे और बलदेवजीको 'बलुआ' के नामसे पुकारते थे। ऐसा निश्चय करके वे भगवान्‌के समीप जाकर कहने लगे—'भैया कनुआ! तैंने अघासुर, बकासुर, शकटासुर आदि बड़े-बड़े राक्षसोंको बात-की-बातमें मार डाला। बालकोंके प्राण हरनेवाली पूतनाके भी शरीरमेंसे तैंने क्षणभरमें प्राण खींच लिये, किन्तु भैया! तैंने इस राँड़ भूखको नहीं मारा। यह राक्षसी हमें बड़ी पीड़ा पहुँचा रही है, तैंने हमारी समय-समयपर रक्षा की है, हमारे सङ्कटोंको दूर किया है। आज तू हमारी इस दुःखसे भी रक्षा कर। हमें खानेके लिये कहींसे कुछ वस्तु दे।'

गोपोंकी इस बातको सुनकर भगवान् अपने चारों ओर देखने लगे, किन्तु उन्हें खानेकी कोई भी वस्तु दिखायी न दी। उस वनमें कैथके भी पेड़ नहीं थे। यह देखकर भगवान् कुछ चिन्तित-से हुए। जब उन्होंने बहुत दूरतक दृष्टि डाली तो उन्हें यमुनाजीके किनारे कुछ वेदज्ञ ब्राह्मण यज्ञ करते हुए दिखायी दिये। उन्हें देखकर भगवान् गोप-बालकोंसे बोले—'तुमलोग एक काम करो। यमुना-किनारे वे जो ब्राह्मण यज्ञ कर रहे हैं, उनके पास जाओ और उनसे कहना—'हम कृष्ण और बलरामके भेजे

हुए आये हैं; हम सब लोगोंको बड़ी भूख लगी है, कृपा करके हमें कुछ खानेके लिये दे दीजिये।' वे तुम्हें भूखा समझकर अवश्य ही कुछ-न-कुछ दे देंगे। रास्तेमें ही चट मत कर आना। यहाँ ले आना। सब साथ-ही-साथ बाँटकर खायँगे।'

भगवान्‌के ऐसा कहनेपर वे गोप-ग्वाल उन ब्राह्मणोंके समीप पहुँचे। दूरसे ही उन्होंने यज्ञ करनेवाले उन ब्राह्मणोंको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और यज्ञ-मण्डपके बाहर ही अपनी-अपनी लकुटीके सहारे खड़े होकर दीनताके साथ वे कहने लगे—'हे धर्मके जाननेवाले ब्राह्मणो! हम श्रीकृष्ण-चन्द्र और बलदेवजीके भेजे हुए आपके पास आये हैं, इस समय हम सभीको बड़ी भारी भूख लगी हुई है, कृपा करके यदि आपके पास कुछ खानेका सामान हो तो हमें दे दीजिये। जिससे कृष्ण-बलरामके साथ हम अपनी भूखको शान्त कर सकें।' गोपोंके ऐसी प्रार्थना करनेपर वे ब्राह्मण उदासीन ही रहे। उन्होंने गोपोंकी बातपर ध्यान ही नहीं दिया। जब इन्होंने कई बार कहा तब उन्होंने रुखाईके साथ कह दिया—'तुम लोग सचमुच बड़े मूर्ख हो, अरे, देवताओंके भागमें हम तुम्हें कैसे दे सकते हैं? भाग जाओ, यहाँ कुछ खाने-पीनेको नहीं है।' ब्राह्मणोंके इस उत्तरको सुनकर सभी गोप दुःखित-भावसे भगवान्‌के समीप लौट आये और उदास होकर कहने लगे—'भैया कनुआ! तैंने कैसे निर्दयी ब्राह्मणोंके पास हमें भेज दिया। कुछ लेना-देना तो अलग रहा वे तो हमसे प्रेमपूर्वक बोले भी नहीं। उन्होंने तो हमें फटकार बताकर यज्ञमण्डपसे भगा दिया।'

गोपोंकी ऐसी बात सुनकर भगवान्‌ने कहा—'वे कर्मठ ब्राह्मण हमारे दुःखको भला क्या समझ सकते हैं। जो स्वयं स्वर्गसुखका लोभी है, उसे दूसरेके दुःखकी क्या परवा। अबकी तुमलोग उनकी स्त्रियोंके समीप जाओ, उनका हृदय कोमल है, वे शरीरसे तो वहाँ हैं किन्तु उनका अन्तःकरण

मेरे ही समीप है। वे तुम लोगोंको जरूर कुछ-न-कुछ देंगी। तुम लोग हम दोनों भाइयोंका नाम भर ले देना।' इस बातको सुनकर गिड़गिड़ाते हुए गोपोंने कहा—'भैया कनुआ! हम तेरे कहनेसे और तो सभी काम कर सकते हैं, किन्तु हम जनानेमें न जायँगे, तू हमें स्त्रियोंके पास जानेके लिये मत कहे।'

भगवान्ने हँसते हुए उत्तर दिया—'अरे, मेरी तो जान-पहचान जनानेमें ही है। मेरे नामसे तो वे ही सब कुछ दे सकती हैं। तुम लोग जाओ तो सही।'

भगवान्की ब्राह्मण-पत्नियोंसे जान-पहचान पुरानी थी। बात यह थी कि मथुराकी मालिन पुष्प चुननेके निमित्त नित्यप्रति वृन्दावन आया करती थीं। जब वे ब्राह्मणोंके घरोंमें पुष्प देने जातीं तभी स्त्रियोंसे श्रीकृष्ण और बलरामके अद्भुत रूप-लावण्यका बखान करतीं और उनकी अलौकिक लीलाओंका भी गुणगान किया करतीं। उन्हें सुनते-सुनते ब्राह्मण-पत्नियोंके हृदयमें इन दोनोंके प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया। वे सदा इनके दर्शनोंके लिये छटपटाती रहती थीं। उनकी उत्सुकता आवश्यकतासे अधिक बढ़ गयी थी। उनकी लालसाको पूर्ण करनेके ही निमित्त भगवान्ने यह लीला रची थी।

जब भगवान्ने कई बार जोर देकर कहा तब तो उदास मनसे गोप ब्राह्मण-पत्नियोंके पास पहुँचे और उसी प्रकार दीनताके साथ उन्होंने कहा—'हे ब्राह्मण-पत्नियो! यहाँसे थोड़ी ही दूरपर बलदेवजी और श्रीकृष्णचन्द्रजी बैठे हैं, वे दोनों ही बहुत भूखे हैं। यदि तुम्हारे पास कुछ खानेकी वस्तु हो, तो उन्हें जाकर दे आओ।' ब्राह्मण-पत्नियोंका इतना सुनना था कि वे प्रेमके कारण अधीर हो उठीं। यह सुनकर कि श्रीरामकृष्ण भूखे बैठे हैं उनकी अधीरताका ठिकाना नहीं रहा। जिनके दर्शनोंकी चिरकालसे इच्छा थी, जिनकी मनोहर मूर्तिके दर्शनके लिये नेत्र छटपटा-से

रहे थे, वे ही श्रीकृष्ण-बलराम भूखे हैं और भोजनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, इस बातसे उन्हें सुख-मिश्रित दुःख-सा हुआ। वे जल्दीसे भाँति-भाँतिके पकवानोंको थालोंमें सजाकर श्रीकृष्णके समीप जानेके लिये तैयार हो गयीं। उनके पतियोंने बहुत मना किया, किन्तु उन्होंने एक भी न सुनी और प्रेममें मतवाली हुई जल्दीसे श्रीकृष्णके समीप पहुँचनेका प्रयत्न करने लगीं।

उस समय भगवान् खूब सज-बजकर ठाटके साथ खड़े-खड़े उसी ओर देख रहे थे कि कोई आती है या नहीं। भगवान् व्यासदेवजीने बड़ी ही सुन्दरताके साथ भगवान्के उस मधुर गोपवेशका सजीव और जीता-जागता चित्र खींचा है। भगवान्का उस समयका वेश कैसा है—'उनका शरीर नूतन मेघके समान श्याम रंगका है। उसपर वे पीताम्बर धारण किये हुए हैं, गलेमें वनमाला शोभित हो रही है। मस्तकपर मोरपंखका मनोहर मुकुट शोभित हो रहा है, सम्पूर्ण शरीरको सेलखड़ी, गेरू, पोतनी मिट्टी, यमुनारज आदि भाँति-भाँतिकी धातुओंसे रँग लिया है। कहीं गेरूकी लकीरें खींच रखी हैं, कहीं यमुनारज मल रखी है, कहींपर सेलखड़ी घिसकर उसकी बिन्दियाँ लगा रखी हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण शरीरको सजा लिया है। कानोंमें भाँति-भाँतिके कोमल-कोमल पत्ते उरस रखे हैं। सुन्दर नटका-सा वेश बनाये एक मित्रके कन्धेपर हाथ रखे हुए हैं। उनकी काली-काली घुँघराली लटें सुन्दर गोल कपोलोंके ऊपर लटक रही हैं। मन्द-मन्द मुस्कराते हुए उसी ओर देख रहे हैं। भगवान्के ऐसे मनोहर वेशको देखकर कौन सहृदय पुरुष अपने आपेमें रह सकता है? आचार्य रत्नगर्भ-का कण्ठ बड़ा ही कोमल और सुरीला था, वे बड़े लहजेके साथ प्रेममें गद्गद होकर इस श्लोकको पढ़ने लगे—

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्ह-
धातुप्रबालनटवेषमनुव्रतांसे ।

विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं
कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥

(श्रीमद्भा० १० । २३ । २२)

बस, इस श्लोकका सुनना था कि महाप्रभु प्रेममें उन्मत्त-से हो गये। जोरोंके साथ जहाँ बैठे थे, वहींसे उछले और उसी समय मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। उन्हें न शरीरका होश है न स्थानका। वे बेहोश पड़े जोरोंके साथ लम्बी-लम्बी साँसें ले रहे थे, थोड़ी देरमें कहने लगे—'आचार्य! मेरे हृदयमें प्रेमका सञ्चार कर दो, कानोंमें अमृत भर दो। फिरसे मुझे श्लोक सुना दो। मेरा हृदय शीतल हो रहा है। अहा—श्यामं हिरण्यपरिधिम्' कैसे-कैसे, हाँ-हाँ फिरसे सुनाइये।' आचार्य उसी लहजेके साथ फिर श्लोक पढ़ने लगे—

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्ह-
धातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ।
विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं
कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥

दूसरी बार श्लोकका सुनना था कि महाप्रभु जोरोंसे फूट-फूटकर रोने लगे। इनके रुदनको सुनकर आस-पासके बहुत-से आदमी वहाँ जुट आये। सभी प्रभुकी ऐसी दशा देखकर चकित हो गये। आजतक किसीने भी ऐसा प्रेमका आवेग किसी भी पुरुषमें नहीं देखा था। प्रभुके कमलके समान दोनों नेत्रोंकी कोरोंसे श्रावण-भादोंकी वर्षाकी भाँति शीतल अश्रुकण गिर रहे थे। वे प्रेममें विह्वल होकर कह रहे थे—'प्यारे कृष्ण! कहाँ हो? क्यों नहीं मुझे हृदयसे चिपटा लेते। अहा, वे ब्राह्मण-पत्नियाँ

धन्य हैं, जिन्हें नटनागरके ऐसे अद्भुत दर्शन हुए थे।' यह कहते-कहते प्रभुने प्रेमावेशमें आकर रत्नगर्भको जोरोंसे आलिङ्गन किया। प्रभुके आलिङ्गनमात्रसे ही रत्नगर्भ उन्मत्त हो गये। अबतक तो एक ही पागलको देखकर लोग आश्चर्यचकित हो रहे थे, अब तो एक ही जगह दो पागल हो गये। रत्नगर्भ कभी तो जोरोंसे हँसते, कभी रुदन करते और कभी प्रभुके पादपद्मोंमें पड़कर प्रेमकी भिक्षा माँगते। कभी रोते रोते फिर उसी श्लोकको पढ़ने लगते। रत्नगर्भ ज्यों-ज्यों श्लोक पढ़ते, प्रभुकी वेदना त्यों-ही-त्यों अत्यधिक बढ़ती जाती। वे श्लोकके श्रवणमात्रसे ही बार-बार मूर्च्छित होकर गिर पड़ते थे। रत्नगर्भको कुछ भी होश नहीं था, वे बेसुध होकर श्लोकका पाठ करते और बीच-बीचमें जोरोंसे रुदन भी करने लगते। जैसे-तैसे गदाधर पण्डितने पकड़कर रत्नगर्भको श्लोक पढ़नेसे शान्त किया तब कहीं जाकर प्रभुको कुछ-कुछ बाह्यज्ञान हुआ। कुछ होश होनेपर सभी मिलकर गङ्गा-स्नान करने गये और फिर सभी प्रेममें छके हुए-से अपने-अपने घरोंको चले गये। इस प्रकार प्रभुकी सर्वप्रथम कृपा-किरणके अधिकारी रत्नगर्भाचार्य ही हुए। उन्हें ही सर्वप्रथम प्रभुकी असीम अनुकम्पाका आदि-अधिकारी समझना चाहिये।

भक्त-भाव

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥*

(श्रीकृष्णचैतन्यशिक्षाष्टक)

भक्त-गण दास्य, सख्य, वात्सल्य, शान्त और मधुर इन पाँचों भावों-के द्वारा अपने प्रियतमकी उपासना करते हैं । उपासनामें ये ही पाँच भाव मुख्य समझे गये हैं, किन्तु इन पाँचोंमें भी दास्यभाव ही सर्वश्रेष्ठ और सर्वप्रधान है । या यों कह लीजिये कि दास्यभाव ही इन पाँचों भावोंका मुख्य प्राण है । दास्यभावके बिना न तो सख्य ही हो सकता है और न वात्सल्य, शान्त तथा मधुर ही । कोई भी भाव क्यों न हो, दास्यभाव इसमें अव्यक्त-

* अपने आपको तृणसे भी नीचा समझना चाहिये तथा तरुसे भी अधिक सहनशील बनना चाहिये । स्वयं तो सदा अमानी हो बने रहना चाहिये, किन्तु दूसरोंको सदा सम्मान प्रदान करते रहना चाहिये । अपनेको ऐसा बना लेनेपर ही श्रीकृष्ण-कीर्तनके अधिकारी बन सकते हैं । क्योंकि श्रीकृष्ण कीर्तन प्राणियोंके लिये सर्वदा कीर्तनीय वस्तु है ।

रूपसे जरूर छिपा रहेगा। दास्यके बिना प्रेम हो ही नहीं सकता। जो स्वयं दास बनना नहीं जानता वह स्वामी कभी बन ही नहीं सकेगा, जिसने स्वयं किसीकी उपासना तथा वन्दना नहीं की है वह उपास्य तथा वन्दनीय हो ही नहीं सकता। तभी तो अखिल ब्रह्माण्डकोटिनायक श्रीहरि स्वयं अपने श्रीमुखसे कहते हैं 'क्रीतोऽहं तेन चार्जुन' हे अर्जुन! भक्तोंने मुझे खरीद लिया है, मैं उनका क्रीतदास हूँ। क्योंकि वे स्वयं चराचर प्राणियोंके स्वामी हैं इसलिये स्वामीपनेके भावको प्रदर्शित करनेके निमित्त वे भक्त तथा ब्राह्मणोंके स्वयं दास होना स्वीकार करते हैं और उनके पदरजको अपने मस्तकपर चढ़ानेके निमित्त सदा उनके पीछे-पीछे घूमा करते हैं।

महाप्रभु अब भावावेशमें आकर भक्तोंके भावोंको प्रकट करने लगे। भक्तोंको सम्पूर्ण लोगोंके प्रति और भगवत्-भक्तोंके प्रति किस प्रकारके आचरण करने चाहिये, उनमें भागवत पुरुषोंके प्रति कितनी दीनता, कैसी नम्रता होनी चाहिये, इसकी शिक्षा देनेके निमित्त वे स्वयं आचरण करके लोगोंको दिखाने लगे। क्योंकि वे तो भक्ति-भावके प्रदर्शक भक्तशिरोमणि ही ठहरे। उनके सभी कार्य लोकमर्यादा-स्थापनके निमित्त होते थे। उन्होंने मर्यादाका उल्लङ्घन कहीं भी नहीं किया, यही तो प्रभुके जीवनमें एक भारी विशेषता है।

अध्यापकीका अन्त हो गया, बाह्यशास्त्र पढ़ना तथा पढ़ाना दोनों ही छूट गये, अब न वह पहला-सा चाञ्चल्य है और न शास्त्रार्थ तथा वाद-विवादकी उन्मादकारी धुन। अब तो इनपर दूसरी ही धुन सवार हुई है, जिस धुनमें ये सभी संसारी कामोंको ही नहीं भूल गये हैं, किन्तु अपने आपको भी विस्मृत कर बैठे हैं। इनके भाव अलौकिक हैं, इनकी बातें गूढ़ हैं, इनके चरित्र रहस्यमय हैं, भला सर्वदा स्वार्थमें ही सने रहनेवाले संसारी मनुष्य इनके भावोंको समझ ही कैसे सकते हैं! अब ये नित्यप्रति प्रातःकाल गङ्गा-स्नानके निमित्त जाने लगे। रास्तेमें जो भी ब्राह्मण, वैष्णव तथा वयोवृद्ध

पुरुष मिलता उसे ही नम्रतापूर्वक प्रणाम करते और उसका आशीर्वाद ग्रहण करते ।

गङ्गाजीपर पहुँचकर ये प्रत्येक वैष्णवकी पदधूलिको अपने मस्तकपर चढ़ाते । उनकी वन्दना करते और भावावेशमें आकर कभी-कभी प्रदक्षिणा भी करने लगते । भक्तगण इन्हें भाँति-भाँतिके आशीर्वाद देते । कोई कहता– 'भगवान् करे आपको भगवान्की अनन्य भक्तिकी प्राप्ति हो ।' कोई कहता– 'आप प्रभुके परम प्रिय बनें ।' कोई कहता—'श्रीकृष्ण तुम्हारी सभी मनोकामनाओंको पूर्ण करें ।' सबके आशीर्वादोंको सुनकर प्रभु उनके चरणोंमें लोट जाते और फूट-फूटकर रोने लगते । रोते-रोते कहते—'आप सभी वैष्णवोंके आशीर्वादका ही सहारा है, मुझ दीन-हीन कंगालपर आप सभी लोग कृपा कीजिये । भागवत पुरुष बड़े ही कोमल स्वभावके होते हैं, उनका हृदय करुणासे सदा भरा हुआ होता है, वे पर-पीड़ाको देखकर सदा दुखी हुआ करते हैं । मुझ दुखियाके दुःखको भी दूर करो । मुझे श्रीकृष्णसे मिला दो, मेरी मनोकामना पूर्ण कर दो, मेरे सत्संकल्पको सफल बना दो । यही मेरी आप सभी वैष्णवोंके चरणोंमें विनीत प्रार्थना है ।'

घाटपर बैठे हुए वैष्णवोंकी, प्रभु जो भी मिल जाती वही सेवा कर देते । किसीका चन्दन ही घिस देते, किसीकी गीली धोतीको ही धो देते । किसीके जलके घड़ेको भरकर उसके घरतक पहुँचा आते । किसीके सिरमें आँवला तथा तैल ही मलने लगते । भक्तोंकी सेवा-शुश्रूषा करनेमें ये सबसे अधिक सुखका अनुभव करते । वृद्ध वैष्णव इन्हें भाँति-भाँतिके उपदेश करते । कोई कहता 'निरन्तर श्रीकृष्ण-कीर्तन करते रहना ही एकमात्र सार है । तुम्हें श्रीकृष्ण ही कहना चाहिये, श्रीकृष्णके मनोहर नामोंका ही स्मरण करते रहना चाहिये । श्रीकृष्ण-कथाओंके अतिरिक्त अन्य कोई भी संसारी बातें न सुननी चाहिये । सम्पूर्ण जीवन श्रीकृष्णमय ही हो जाना चाहिये । खाते

कृष्ण, पीते कृष्ण, चलते कृष्ण, उठते कृष्ण, बैठते कृष्ण, हँसते कृष्ण, रोते कृष्ण, इस प्रकार सदा कृष्ण-कृष्ण ही कहते रहना चाहिये । श्रीकृष्ण-नामामृतके अतिरिक्त इन्द्रियोंको किसी प्रकारके दूसरे आहारकी आवश्यकता ही नहीं है । इसीका पान करते-करते वे सदा अतृप्त ही बनी रहेंगी ।'

वृद्ध वैष्णवोंके सदुपदेशोंको ये श्रद्धाके साथ श्रवण करते, उनकी वन्दना करते और उनकी पद-धूलिको मस्तकपर चढ़ाते तथा अञ्जन बनाकर आँखोंमें आँजने लगते । इनकी ऐसी भक्ति देखकर वैष्णव कहने लगते—'कौन कहता है, निमाई पण्डित पागल हो गया है, ये तो श्रीकृष्ण-प्रेममें मतवाले बने हुए हैं । इन्हें तो प्रेमोन्माद है । अहा ! धन्य है इनकी जननीको जिनकी कोखसे ऐसा सुपुत्र उत्पन्न हुआ ।' वैष्णवगण इस प्रकार इनकी परस्परमें प्रशंसा करने लगते ।

इधर महाप्रभुकी ऐसी विचित्र दशा देखकर शचीमाता मन-ही-मन बड़ी दुखी होतीं । वह दीन होकर भगवान्से प्रार्थना करतीं—'प्रभो ! इस विधवाके एकमात्र आश्रयको अपनी कृपाका अधिकारी बनाओ । नाथ ! इस सड़सठ वर्षकी अनाथिनी दुखियाकी दीन-हीन दशापर ध्यान दो । पति परलोकवासी बन चुके, ज्येष्ठ पुत्र बिलखती छोड़कर न जाने कहाँ चला गया । अब आगे-पीछे यही मेरा एकमात्र सहारा है । इस अन्धी वृद्धाका यह निमाई ही एकमात्र लकुटी है । इस लकुटीके ही सहारे यह संसारमें चल-फिर सकती है । हे अशरण-शरण ! इसे रोगमुक्त कीजिये, इसे सुन्दर स्वास्थ्य प्रदान कीजिये ।' भोली-भाली माता सभीके सामने अपना दुखड़ा रोतीं । रोते-रोते कहने लगतीं—'न जाने निमाईको क्या हो गया है, वह कभी तो रोता है, कभी हँसता है, कभी गाता है, कभी नाचता है, कभी रोते-रोते मूर्च्छित होकर गिर पड़ता है, कभी जोरोंसे दौड़ने लगता है और कभी किसी पेड़पर चढ़ जाता है ।'

स्त्रियाँ भाँति-भाँतिकी बातें कहतीं। कोई कहती--'अम्माजी! तुम भी बड़ी भोली हो, इसमें पूछना ही क्या है, वही पुराना वायुरोग है। समय पाकर उभर आया है। किसी अच्छे वैद्यसे इसका इलाज कराइये।'

कोई कहती--'वायुरोग बड़ा भयङ्कर होता है, तुम निमाईके दोनों पैरोंको बाँधकर उसे कोठरीमें बंद करके रखा करो; खानेके लिये हरे नारियलका जल दिया करो। इससे धीरे-धीरे वायुरोग दूर हो जायगा।' कोई-कोई सलाह देतीं–'शिवातैलका सिरमें मर्दन कराओ, सब ठीक हो जायगा। भगवान् सब भला ही करेंगे। वे ही हम सब लोगोंकी एकमात्र शरण हैं।'

बेचारी शचीमाता सबकी बातें सुनतीं और सुनकर उदासभावसे चुप हो जातीं। इकलौते पुत्रके पैर बाँधकर उसे कोठरीमें बंद कर देनेकी उसकी हिम्मत न पड़ती। बेचारी एक तो पुत्रके दुःखसे दुखी थी, दूसरा उसे विष्णुप्रियाका दुःख था। पतिकी ऐसी दशा देखकर विष्णुप्रिया सदा चिन्तित ही बनी रहतीं। उन्हें अन्न-जल कुछ भी अच्छा नहीं लगता। उदासीन-भावसे सदा पतिके ही सम्बन्धमें सोचती रहतीं। शचीमाताके बहुत अधिक आग्रह करनेपर पतिके उच्छिष्ट अन्नमेंसे दो-चार ग्रास खा लेतीं, नहीं तो सदा वैसे ही बैठी रहतीं। इससे शचीमाताका दुःख दुगुना हो गया था। उनकी अवस्था सड़सठ वर्षकी थी। वृद्धावस्थाके कारण इतना दुःख उनके लिये असह्य था। किन्तु नीलाम्बर चक्रवर्तीकी पुत्रीको, जगन्नाथ मिश्र-जैसे पण्डितकी धर्मपत्नीको तथा विश्वरूप और विश्वम्भर-जैसे महापुरुषोंकी माताके लिये ये सभी दुःख स्वाभाविक ही थे, वे ही इन दुःखोंको सहन करनेमें भी समर्थ हो सकती थीं, साधारण स्त्रियोंका काम नहीं था कि वे इतने भारी-भारी दुःखोंको सहन कर सकें।

महाप्रभुकी नूतनावस्थाकी नवद्वीपभरमें चर्चा होने लगी। जितने मुख थे उतने ही प्रकारकी बातें भी होती थीं। जिसके मनमें जो आता वह

उसी प्रकारकी बातें कहता । बहुत-से तो कहते—'ऐसा पागलपन तो हमने कभी नहीं देखा ।' बहुत-से कहते—'सचमुच भाव तो विचित्र है, कुछ समझमें नहीं आता, असली बात क्या है । चेष्टा तो पागलोंकी-सी जान नहीं पड़ती । चेहरेकी कान्ति अधिकाधिक दिव्य होती जाती है । उनके दर्शनमात्रसे ही हृदयमें हिलोरें-सी मारने लगती हैं, अन्तःकरण उमड़ने लगता है । न जाने उनकी आकृतिमें क्या जादू भरा पड़ा है । पागलोंकी भी कहीं ऐसी दशा होती है ?' कोई-कोई इन बातोंका खण्डन करते हुए कहने लगते–'कुछ भी क्यों न हो, है तो यह मस्तिष्कका ही विकार । किसी प्रकारकी हो, यह वातव्याधिके सिवाय और कुछ नहीं है ।'

हम पहले ही बता चुके हैं कि श्रीवास पण्डित प्रभुके पूज्य पिताजीके परम स्नेही और सखा थे, उनकी पत्नी मालती देवीसे शचीमाताका सखी-भाव था । वे दोनों ही प्रभुको पुत्रकी भाँति प्रेम करते थे । श्रीवास पण्डितको इस बातका हार्दिक दुःख बना रहता था कि निमाई पण्डित-जैसे समझदार और विद्वान् पुरुष भगवत्-भक्तिसे उदासीन ही बने हुए हैं; उनके मनमें सदा यही बात बनी रहती कि निमाई पण्डित कहीं वैष्णव बन जाय तो वैष्णव धर्मका बेड़ा पार ही हो जाय । फिर वैष्णवोंकी आजकी भाँति दुर्गति कभी न हो । प्रभुके सम्बन्धमें लोगोंके मुखोंसे भाँति-भाँतिकी बातें सुनकर श्रीवास पण्डितके मनमें परम कुतूहल हुआ, वे आनन्द और दुःखके बीचमें पड़कर भाँति-भाँतिकी बातें सोचने लगे । कभी तो सोचते—'सम्भव है, वायुरोग ही उभड़ आया हो, इस शरीरका पता ही क्या है ? शास्त्रोंमें इसे अनित्य और आगमापायी बताया है, रोगोंका तो यह घर ही है ।' फिर सोचते—'लोगोंके मुखोंसे जो मैं लक्षण सुन रहा हूँ, वैसे तो भगवत्-भक्तोंमें ही होते हैं, मेरा हृदय भी भीतर-ही-भीतर किसी अज्ञात सुखका-सा अनुभव कर रहा है, कुछ भी हो, चलकर उनकी दशा देखनी चाहिये ।' यह सोचकर वे प्रभुकी दशा देखनेके निमित्त अपने घरसे चल दिये ।

महाप्रभु उस समय श्रीतुलसीजीमें जल देकर उनकी प्रदक्षिणा कर रहे थे। पिताके समान पूजनीय श्रीवास पण्डितको देखकर प्रभु उनकी ओर दौड़े और प्रेमके साथ उनके गलेसे लिपट गये। श्रीवासने प्रभुके अंगोंका स्पर्श किया। प्रभुके अंगोंके स्पर्शमात्रसे उनके शरीरमें बिजली-सी दौड़ गयी। उनके सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो गया। वे प्रेममें विभोर होकर एकटक प्रभुके मनोहर मुखकी ही ओर देखते रहे। प्रभुने उन्हें आदरसे ले जाकर भीतर बिठाया और उनकी गोदीमें अपना सिर रखकर वे फूट-फूटकर रोने लगे। शचीमाता भी श्रीवास पण्डितको देखकर वहाँ आ गयीं और रो-रोकर प्रभुकी व्याधिकी बातें सुनाने लगीं। पुत्र-स्नेहके कारण उनका गला भरा हुआ था, वे ठीक-ठीक बातें नहीं कह सकती थीं। जैसे-तैसे श्रीवास पण्डितको माताने सभी बातें सुनायीं।

सब बातें सुनकर भावावेशमें श्रीवास पण्डितने कहा—'जो इसे वायुरोग बताते हैं, वे स्वयं वायुरोगसे पीड़ित हैं। उन्हें क्या पता कि यह ऐसा रोग है जिसके लिये शिव-सनकादि बड़े-बड़े योगीजन तरसते रहते हैं। शचीदेवी! तुम बड़भागिनी हो, जो तुम्हारे ऐसा भगवत्-भक्त पुत्र उत्पन्न हुआ। ये सब तो पूर्ण भक्तिके चिह्न हैं।'

श्रीवास पण्डितकी ऐसी बातें सुनकर माताको कुछ-कुछ सन्तोष हुआ। अधीर भावसे प्रभुने श्रीवास पण्डितसे कहा—'आज आपके दर्शनसे मुझे परम शान्ति हुई। सभी लोग मुझे वायुरोग ही बताते थे। मैं भी इसे वायुरोग ही समझता था और मेरे कारण विष्णुप्रिया तथा माताको जो दुःख होता था, उसके कारण मेरा हृदय फटा-सा जाता था। यदि आज आप यहाँ आकर मुझे इस प्रकार आश्वासन न देते तो मैं सचमुच ही गङ्गाजीमें डूबकर अपने प्राणोंका परित्याग कर देता। लोग मेरे सम्बन्धमें भाँति-भाँतिकी बातें करते हैं।'

श्रीवास पण्डितने कहा—'मेरा हृदय बार-बार कह रहा है, आपके द्वारा संसारका बड़ा भारी उद्धार होगा। आप ही भक्तोंके एकमात्र आश्रय और आराध्य बनेंगे। आपकी इस अद्वितीय और अलौकिक मादकताको देखकर तो मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि अखिल-कोटि-ब्रह्माण्डनायक अनादि पुरुष श्रीहरि ही अवनितलपर अवतीर्ण होकर अविद्या और अविचारका विनाश करते हुए भगवन्नामका प्रचार करेंगे। मुझे प्रतीत हो रहा है कि सम्भवतया प्रभु इसी शरीरद्वारा उस शुभ कार्यको करावें।'

प्रभुने अधीरताके साथ कहा—'मैं तो आपके पुत्रके समान हूँ। वैष्णवोंके चरणोंमें मेरी अनुरक्ति हो, ऐसा आशीर्वाद दीजिये। श्रीकृष्ण-कीर्तनके अतिरिक्त कोई भी कार्य मुझे अच्छा ही न लगे यही मेरी अभिलाषा है, सदा प्रभु-प्रेममें विकल होकर मैं रोया ही करूँ, यही मेरी हार्दिक इच्छा है।'

श्रीवास पण्डितने कहा—'आप ही ऐसा आशीर्वाद दें, जिससे इस प्रकारका थोड़ा-बहुत पागलपन हमें भी प्राप्त हो सके। हम भी आपकी भाँति प्रेममें पागल हुए लोक-बाह्य बनकर उन्मत्तोंकी भाँति नृत्य करने लगें।'

इस प्रकार बहुत देरतक इन दोनों ही महापुरुषोंमें विशुद्ध अन्तः-करणकी बातें होती रहीं। अन्तमें प्रभुकी अनुमति लेकर श्रीवास पण्डित अपने घरको चले आये।

अद्वैताचार्य और उनका सन्देह

अर्चयित्वा तु गोविन्दं तदीयान्नार्चयेत्तु यः।
न स भागवतो ज्ञेयः केवलं दाम्भिकः स्मृतः॥
(तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वैष्णवान्पूजयेत्सदा) *

(श्रीविष्णुपुराण)

भगवान् तो प्राणीमात्रके हृदयमें विराजमान हैं। समानरूपसे संसारके अणु-परमाणुमें व्याप्त हैं, किन्तु पात्रभेदके कारण उनकी उपलब्धि भिन्न-भिन्न प्रकारसे होती है। भगवान् निशानाथकी किरणें समानरूपसे सभी वस्तुओंपर एक-सी ही पड़ती हैं। पत्थर, मिट्टी, घड़ा, वस्त्रपर भी वे ही किरणें पड़ती हैं और शीशा तथा चन्द्रकान्तमणिपर भी उन्हीं किरणोंका प्रभाव पड़ता है। मिट्टी तथा पत्थरमें निशानाथका प्रभाव प्रकट नहीं होता है, वहाँ घोर तमोगुणके कारण अव्यक्त-रूपसे ही बना रहता है, किन्तु स्वच्छ और निर्मल चन्द्रकान्तमणिपर उनकी कृपाकी तनिक-सी किरण पड़ते ही उसकी विचित्र दशा हो जाती है। उन लोकसुखकारी भगवान् निशानाथकी कृपाको पाते ही उसका हृदय पिघलने लगता है और वह द्रवीभूत होकर बहने लगता है। इस कारण चन्द्रदेव उसके प्रति अधिकाधिक स्नेह करने लगते हैं। इसी कारण उसका नाम ही

---

* जो भगवान्की पूजा तो करता है, किन्तु भगवद्भक्त वैष्णवोंकी पूजा नहीं करता, वह यथार्थमें भक्त नहीं है, उसे तो दाम्भिक ही समझना चाहिये। भगवान् तो भक्तकी ही पूजासे अत्यन्त सन्तुष्ट होते हैं, इसलिये सर्व प्रयत्नसे वैष्णवोंकी ही पूजा करनी चाहिये।

चन्द्रकान्तमणि पड़ गया। उसका चन्द्रमाके साथ नित्यका शाश्वत सम्बन्ध हो गया। वह निशानाथसे भिन्न नहीं है। निशानाथके गुणोंका उसमें समावेश हो जाता है। इसी प्रकार भक्तोंके हृदयमें भगवान्की कृपा-किरण पड़ते ही वह पिघलने लगता है। चन्द्रकान्तमणि तो चाहे, चन्द्रमाकी किरणोंसे बनी भी रहे, किन्तु भक्तोंके हृदयका फिर अस्तित्व नहीं रहता, वह कृपा-किरणोंके पड़ते ही पिघल-पिघलकर प्रभुके प्रेम-पीयूषार्णवमें जाकर तदाकार हो जाता है। यही भक्तोंकी विशेषता है। तभी तो गोस्वामी तुलसीदासजीने यहाँतक कह डाला है—

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम तें अधिक राम कर दासा ॥

भगवद्भक्तोंकी महिमा ही ऐसी है, भक्तोंके समझनेके लिये भी प्रभुकी कृपाकी ही आवश्यकता है। जिसपर भगवान्की कृपा नहीं, वह भक्तोंकी महिमाको भला समझ ही क्या सकता है। जिसके हृदयमें उस रसराजके रस-सुधामयी एक बिन्दुका भी प्रवेश नहीं हुआ, जिसमें उसके ग्रहण करनेकी किञ्चिन्मात्र भी शक्ति नहीं हुई, वह रसिकताके मर्मको समझ ही कैसे सकता है? इसीलिये रसिक-शिरोमणि भगवत-रसिकजी कहते हैं—

'भगवत-रसिक' रसिककी बातें रसिक बिना कोउ समुझि सके ना।

महाप्रभुके नवानुरागकी चर्चा नदियाके सभी स्थानोंमें भाँति-भाँतिसे हो रही थी, उस समय सभी वैष्णव श्रीअद्वैताचार्यजीके यहाँ एकत्रित हुआ करते थे। अद्वैताचार्यके स्थानको वैष्णवोंका अखाड़ा ही कहना ठीक है। वहाँपर सभी नामी-नामी वैष्णवरूपी पहलवान एकत्रित होकर भक्तितत्त्वरूपी युद्धका अभ्यास किया करते थे। प्रभुकी प्राप्तिके लिये भाँति-भाँतिके दाव-पेंचोंकी उस अखाड़ेमें आलोचना तथा प्रत्यालोचना हुआ करती थी और सदा इस बातपर विचार होता कि कदाचाररूपी प्रबल शत्रु किसके द्वारा पछाड़ा जा सकता है? वैष्णव अपने बलका विचार करते और अपनी ऐसी दुर्दशापर आँसू भी बहाते।

महाप्रभुके नूतन भावकी बातोंपर यहाँ भी वाद-विवाद होने लगे। अधिकांश वैष्णव इसी पक्षमें थे कि निमाई पण्डितको भक्तिका ही आवेश है, उनके हृदयमें प्रेमका पूर्णरूपसे प्रकाश हो रहा है। उनकी सभी चेष्टाएँ अलौकिक हैं, उनके मुखके तेजको देखकर मालूम पड़ता है कि वे प्रेमके ही उन्मादमें उन्मादी बने हुए हैं, दूसरा कोई भी कारण नहीं है, किन्तु कुछ भक्त इसके विपक्षमें थे। उनका कथन था कि निमाई पण्डितकी भला, एक साथ ऐसी दशा किस प्रकार हो सकती है? कलतक तो वे देवी, देवता और भक्त-वैष्णवोंकी खिल्लियाँ उड़ाते थे, सहसा उनमें इस प्रकारके परिवर्तनका होना असम्भव ही है। जरूर उन्हें वही पुराना वायुरोग फिरसे हो गया है। उनकी सभी चेष्टाएँ पागलोंकी-सी ही हैं।

उन सबकी बातें सुनकर श्रीमान् अद्वैताचार्यजीने सबको सम्बोधित करते हुए गम्भीरताके साथ कहा—'भाई! आपलोग जिन निमाई पण्डितके सम्बन्धमें बातें कर रहे हो, उन्हींके सम्बन्धमें मेरा भी एक निजी अनुभव सुन लो। तुम सब लोगोंको यह बात तो विदित ही है कि मैं भगवान्‌को प्रकट करनेके निमित्त नित्य गङ्गा-जलसे और तुलसीसे श्रीकृष्णका पूजन किया करता हूँ। गौतमी तन्त्रके इस वाक्यपर मुझे पूर्ण विश्वास है—

> तुलसीदलमात्रेण जलस्य चुलुकेन वा।
> विक्रीणीते स्वमात्मानं भक्तेभ्यो भक्तवत्सलः॥

अर्थात् भगवान् ऐसे दयालु हैं कि वे भक्तिसे दिये हुए एक चुल्लू जल तथा एक तुलसीपत्रके द्वारा ही अपनी आत्माको भक्तोंके लिये दे देते हैं। इसी वाक्यपर विश्वास करके मैं तुमलोगोंको बार-बार आश्वासन दिया करता था। कल श्रीमद्भगवद्गीताके एक श्लोकका अर्थ मेरी समझमें ही नहीं आया। इसी चिन्तामें रात्रिमें मैं बिना भोजन किये

ही सो गया था। स्वप्नमें क्या देखता हूँ कि एक गौर वर्णके तेजस्वी महापुरुष मेरे समीप आये और मुझसे कहने लगे—'अद्वैत! जल्दीसे उठ, जिस श्लोकमें तुझे शङ्का थी, उसका अर्थ इस प्रकार है। अब तेरी मनःकामना पूर्ण हुई। जिस इच्छासे तू निरन्तर गङ्गा-जल और तुलसीसे मेरा पूजन करता था, तेरी वह इच्छा अब सफल हो गयी। हम अब शीघ्र ही प्रकाशित हो जायँगे। अब तुम्हें भक्तोंको अधिक दिन आश्वासन न देना होगा। अब हम थोड़े ही दिनोंमें नाम-संकीर्तन आरम्भ कर देंगे। जिसकी घनघोर तुमुल ध्वनिसे दिशा-विदिशाएँ प्रतिध्वनित हो उठेंगी।' इतना कहनेपर उन महापुरुषने अपना असली स्वरूप दिखाया। वे और कोई नहीं थे, शचीनन्दन विश्वम्भर ही ये बातें मुझसे कह रहे थे। जब इनके अग्रज विश्वरूप मेरी पाठशालामें पढ़ा करते थे, तब ये उन्हें बुलानेके निमित्त मेरे यहाँ कभी-कभी आया करते थे, इन्हें देखते ही मेरा मन हठात् इनकी ओर आकर्षित होता था, तभी मैं समझता था कि मेरी मनःकामना इन्हींके द्वारा पूर्ण होगी। आज स्वप्नमें उन्हें देखकर तो यह बात स्पष्ट ही हो गयी।' इतना कहते-कहते वृद्ध आचार्यका गला भर आया। वे फूट-फूटकर बालकोंकी भाँति रुदन करने लगे। भगवान्‌की भक्तवत्सलताका स्मरण करके वे हिचकियाँ भर-भरकर रो रहे थे, इनकी ऐसी दशा देखकर अन्य वैष्णवोंकी आँखोंमेंसे भी आँसू निकलने लगे। सभीका हृदय प्रेमसे भर आया। सभी वैष्णवोंके इस भावी उत्कर्षका स्मरण करके आनन्दसागरमें गोता लगाने लगे। इस प्रकार बहुत-सी बातें होनेके अनन्तर सभी वैष्णव अपने-अपने घरोंको चले गये।

इधर महाप्रभुकी दशा अब और भी अधिक विचित्र होने लगी। उन्हें अब श्रीकृष्ण-कथा और वैष्णवोंके सत्सङ्गके अतिरिक्त दूसरा विषय रुचिकर ही प्रतीत नहीं होता था, वे सदा गदाधर या अन्य किसी भक्तके साथ भगवच्चर्चा ही करते रहते थे। एक दिन प्रभुने

गदाधर पण्डितसे कहा—'गदाधर ! आचार्य अद्वैत परम भागवत वैष्णव हैं, वे ही नवद्वीपके भक्त वैष्णवोंके शिरोमणि और आश्रयदाता हैं, आज उनके यहाँ चलकर उनकी पद-रजसे अपनेको पावन बनाना चाहिये।'

प्रभुकी ऐसी इच्छा जानकर गदाधर उन्हें साथ लेकर अद्वैताचार्यके घरपर पहुँचे। उस समय सत्तर वर्षकी अवस्थावाले वृद्ध आचार्य बड़ी श्रद्धाभक्तिके साथ तुलसी-पूजन कर रहे थे। आचार्यके सिरके सभी बाल श्वेत हो गये थे। उनके तेजोमय मुखमण्डलपर एक प्रकारकी अपूर्व आभा विराजमान थी, वे अपने सिकुड़े हुए मुखसे शुद्धताके साथ गम्भीर स्वरमें स्तोत्रपाठ कर रहे थे। मुखसे भगवान्‌की स्तुतिके मधुर श्लोक निकल रहे थे और आँखोंसे अश्रुओंकी धारा बह रही थी। उन परम भागवत वृद्ध वैष्णवके ऐसे अपूर्व भक्तिभावको देखकर प्रभु प्रेममें गद्गद हो गये। उन्हें भावावेशमें शरीरकी कुछ भी सुध-बुध न रही। वे मूर्छा खाकर पृथ्वीपर बेहोश होकर गिर पड़े !

अद्वैताचार्यने जब अपने सामने अपने इष्टदेवको मूर्छित-दशामें पड़े हुए देखा, तब तो उनके आनन्दकी सीमा न रही। सामने रखी हुई पूजनकी थालीको उठाकर उन्होंने प्रभुके कोमल पादपद्मोंकी अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य और पत्र-पुष्पोंसे विधिवत् पूजा की। उन इतने भारी ज्ञानी वृद्ध महापुरुषको एक बालकके पैरोंकी पूजा करते देख आश्चर्यमें चकित होकर गदाधरने उनसे कहा—'आचार्य ! आप यह क्या अनर्थ कर रहे हैं ? इतने भारी ज्ञानी, मानी और वयोवृद्ध पण्डित होकर आप एक बच्चेके पैरोंकी पूजा करके उसके ऊपर पाप चढ़ा रहे हैं।'

गदाधरकी ऐसी बात सुनकर हँसते हुए आचार्य अद्वैतने उत्तर दिया—'गदाधर ! तुम थोड़े दिनोंके बाद इस बालकका महत्त्व समझने लगोगे। सभी वैष्णव इनके चरणोंकी पूजा कर अपनेको कृतकृत्य समझा

करेंगे। अभी तुम मेरे इस कार्यको देखकर आश्चर्य करते हो। कालान्तरमें तुम्हारा यह भ्रम स्वतः ही दूर हो जायगा।'

इसी बीच प्रभुको कुछ-कुछ बाह्यज्ञान हुआ। चैतन्यता प्राप्त होते ही उन्होंने आचार्यके चरण पकड़ लिये और वे रोते-रोते कहने लगे—'प्रभो! अब हमारा उद्धार करो। हमने अपना बहुत-सा समय व्यर्थकी बकवादमें ही बरबाद किया। अब तो हमें अपने चरणोंकी शरण प्रदान कीजिये। अब तो हमें प्रेमका थोड़ा-बहुत तत्त्व समझाइये। हम आपकी शरणमें आये हैं, आप ही हमारी रक्षा कर सकते हैं।'

प्रभुकी इस प्रकारकी दैन्ययुक्त प्रार्थनाको सुनकर आचार्य भौंचक्के-से रह गये और कहने लगे—'प्रभो! अब मेरे सामने अपनेको बहुत न छिपाइये। इतने दिनतक तो छिपे-छिपे रहे, अब और कबतक छिपे ही रहनेकी इच्छा है? अब तो आपके प्रकाशमें आनेका समय आ गया है।'

प्रभुने दीनताके साथ कहा—'आप ही हमारे माता-पिता तथा गुरु हैं। आपका जब अनुग्रह होगा, तभी हम श्रीकृष्णप्रेम प्राप्त कर सकेंगे। आप ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि हम वैष्णवोंके सच्चे सेवक बन सकें।'

इस प्रकार बहुत देरतक परस्परमें दोनों ओरसे दैन्ययुक्त बातें होती रहीं। अन्तमें प्रभु गदाधरके साथ अपने घरको चले गये। इधर अद्वैताचार्यने सोचा—'ये मुझे छलना चाहते हैं, यदि सचमुच मेरा स्वप्न सत्य होगा और ये वे ही रात्रिवाले महापुरुष होंगे तो संकीर्तनके समय मुझे स्वतः ही अपने पास बुला लेंगे। अब मेरा नवद्वीपमें रहना ठीक नहीं।' यह सोचकर वे नवद्वीपको छोड़कर शान्तिपुरके अपने घरमें जाकर रहने लगे।

श्रीवासके घर संकीर्तनारम्भ

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्द्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसङ्कीर्तनम् ॥*

(पद्यावली अं० १० । १

सम्पूर्ण संसार एक अज्ञात आकर्षणके अधीन होकर ही सब व्यवहार कर रहा है। अग्नि सभीको गरम प्रतीत होती है। जल सभीको शीतल ही जान पड़ता है। सर्दी-गरमी पड़नेपर उसके सुख-दुःखका अनुभव जीवमात्रको होता है। यह बात अवश्य है कि स्थिति-भेदसे उसके अनुभवमें न्यूनाधिक्य-भाव हो जाय। किसी-न-किसी रूपमें अनुभव तो सब करते ही हैं।

इस जीवका आदि उत्पत्ति-स्थान आनन्द ही है। आनन्दका पुत्र होनेके कारण यह सदा आनन्दकी ही खोज करता रहा है। 'मैं सदा आनन्दमें ही बना रहूँ' यह इसकी स्वाभाविक इच्छा होती है, होनी भी चाहिये। कारण कि जनकके गुण जन्यमें जरूर ही आते हैं। इसलिये आनन्दसे ही उत्पन्न होनेके कारण यह आनन्दमें ही रहना भी चाहता है और अन्तमें आनन्दमें ही मिल भी जाता है। जलका एक बिन्दु समुद्रसे पृथक् होता है, पृथक् होकर चाहे वह अनेकों स्थानमें भ्रमण कर आवे, किन्तु अन्तमें सर्वत्र घूमकर उसे समुद्रमें ही आना पड़ेगा।

---

* जो श्रीकृष्ण-संकीर्तन चित्तरूपी दर्पणका मार्जन करनेवाला है, भवरूपी महादावाग्निका शमन करनेवाला है, जीवोंके मङ्गलरूपी कैरवचन्द्रिकाका वितरण करनेवाला है, विद्यारूपी वधूका जीवन है, आनन्दरूपी सागरका वर्द्धन करनेवाला है, प्रत्येक पदपर पूर्णामृतको आस्वादन करानेवाला है और जो सर्व प्रकारसे शीतलस्वरूप है उसकी विशेषरूपसे जय हो।

समुद्रके अतिरिक्त उसकी दूसरी गति ही नहीं। भाप बनके वह बादलोंमें जायगा। बादलोंसे वर्षा बनकर पृथ्वीपर बरसेगा। पृथ्वीसे बहकर तालाबमें जायगा। तालाबसे छोटी नदीमें पहुँचेगा, उसमेंसे फिर बड़ी नदीमें, इसी प्रकार महानदके प्रवाहके साथ मिलकर वह समुद्रमें ही पहुँच जायगा। कभी-कभी क्षुद्र तालाबके संसर्गसे उसमें दुर्गन्धि-सी भी प्रतीत होने लगेगी, किन्तु चौमासेकी महाबाढ़में वह सब दुर्गन्धि साफ हो जायगी और वह भारी वेगके साथ अपने निर्दिष्ट स्थानपर पहुँच जायगा।

मनन करनेवाले प्राणियोंका मन एक-सा ही होता है। सर्वत्र उसकी गति एक ही भाँतिसे सञ्चालन करती है। सम्पूर्ण शरीरमें चित्तकी वृत्तियाँ किसी एक निर्धारित नियमके ही साथ कार्य करती हैं। जीवका मुख्य लक्ष्य है अपने प्रियतमके साथ जाकर योग करना। उसे प्यारेके पास पहुँचे बिना शान्ति नहीं, फिर वहाँ जाकर उसका बनकर रहना या उसीके स्वरूपमें अपनेको मिला देना, यह तो अपने-अपने भावोंके ऊपर निर्भर है। कुछ भी क्यों न हो, पास तो पहुँचना ही होगा। योग तो करना ही पड़ेगा। बिना योगके शान्ति नहीं, योग तभी हो सकता है, जब चित्तवृत्तियोंका निरोध हो। चित्त बड़ा ही चञ्चल है, एकान्तमें यह अधिकाधिक उपद्रव करने लगता है, इसलिये इसके निरोधका एक सरल-सा उपाय यही है कि जिन्होंने पूर्वजन्मोंके शुभ संस्कारोंसे साधन करके या भगवत्कृपा प्राप्त करके अपनी चित्तवृत्तियोंका थोड़ा-बहुत या सम्पूर्ण निरोध कर लिया है, उन्हींके चित्तके साथ अपने चित्तको मिला देना चाहिये। कारण कि सजातीय वस्तु अपनी सजातीय वस्तुके प्रति शीघ्र आकृष्ट हो जाती है। इसीलिये सत्सङ्ग और संकीर्तनकी इतनी अधिक महिमा गायी गयी है। यदि एक उद्देश्यसे एक-मन और एक-चित्त होकर जो भी साधन किया जाय, तो पृथक्-पृथक् साधन करनेकी अपेक्षा उसका महत्त्व सहस्रों गुणा अधिक होता है और विशेषकर इस ऐसे घोर कलियुगके समयमें

जब सभी खाद्य पदार्थ भाव-दोषसे दूषित हो गये हैं तथा विचार-दोषसे गिरिशिखर, एकान्त स्थान आदि सभी स्थानोंका वायुमण्डल दूषित बन गया है, ऐसे घोर समयमें सत्पुरुषोंके समूहमें रहकर निरन्तर प्रेमसे श्रीकृष्ण-संकीर्तन करते रहना ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। स्मृतियोंमें भी यही वाक्य मिलता है 'संघे शक्तिः कलौ स्मृता' कलियुगमें सभी प्रकारके साधन सङ्घ-शक्तिसे ही फलीभूत हो सकते हैं और कलियुगमें 'कलौ केशव-कीर्तनात्' अर्थात् केशव-कीर्तन ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसलिये इन सभी बातोंसे यही सिद्ध हुआ कि कलिकालमें सब लोग एक-चित्त और एक-मनसे एकान्त स्थानमें निरन्तर केशव-कीर्तन करें तो प्रत्येक साधकको अपने-अपने साधनमें एक दूसरेसे बहुत अधिक मदद मिल सकती है। यही सब समझ-सोचकर तो संकीर्तनावतार श्रीचैतन्यदेवने संकीर्तनकी नींव डाली। वे इतने बड़े भावावेशमें आकर भी वनोंमें नहीं भाग गये। उस प्रेमोन्मादकी अवस्थामें जिसमें कि घर-बार, भाई-बन्धु सभी भूल जाते हैं, वे लोगोंमें ही रहकर श्रीकृष्ण-कीर्तन करते रहे और अपने आचरणसे लोक-शिक्षा देते हुए जगदुद्धार करनेमें संलग्न-से ही बने रहे। यही उनकी अन्य महापुरुषोंसे विशेषता है।

महाप्रभुकी दशा अब कुछ-कुछ गम्भीरताको धारण करती जाती है, अब वे कभी-कभी होशमें भी आते हैं और भक्तोंसे परस्परमें बातें भी करते हैं। चिरकालसे आशा लगाये हुए बैठे कुछ भक्त प्रभुके पास आये और सभीने मिलकर प्रतिदिन संकीतन करनेकी सलाह की। प्रभुने सबकी सम्मति सहर्ष स्वीकार की और भक्ताग्रगण्य श्रीवासके घर संकी-र्तनका सभी आयोजन होने लगा। रात्रिके समय छँटे-छँटे भगवद्भक्त वहाँ आकर एकत्रित होने लगे। प्रभुने सबसे पहले संकीर्तन आरम्भ किया। सभीने प्रभुका साथ दिया। संकीर्तन करते-करते प्रभु भावावेशमें आकर ताण्डव-नृत्य करने लगे। शरीरकी किञ्चिन्मात्र भी सुध-बुध नहीं रही। एक प्रकारके महाभावमें मग्न होकर उनका शरीर अलातचक्रकी

भाँति निरन्तर घूम रहा था। न तो किसीको उनके पद ही दिखायी देते थे और न उनका घूमना ही प्रतीत होता था, नृत्य करते-करते उन्हें एक प्रकारकी उन्मादकारी बेहोशी-सी आ गयी और उसी बेहोशीमें वे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। भक्तोंने इन्हें बड़े यत्नसे उठाया। थोड़ी देरके अनन्तर इन्होंने रोते-रोते भक्तोंसे कुछ कहना आरम्भ किया—'भाई ! मैं क्या करूँ, मेरा मन अब मेरे वशमें नहीं है। मैं जो कहना चाहता हूँ, उसे कह नहीं सकता। कितने दिनोंसे मैं तुमसे एक बात कहनेके लिये सोच रहा हूँ, किन्तु उसे अभीतक नहीं कह सका हूँ। आज मैं तुमलोगोंसे उसे कहूँगा। तुमलोग सावधानीके साथ श्रवण करो।'

प्रभुके ऐसा कहनेपर सभी भक्त स्थिर-भावसे चुपचाप बैठ गये और एकटक होकर उत्सुकताके साथ प्रभुके मुखचन्द्रकी ओर निहारने लगे। प्रभुने साहस करके गम्भीरताके साथ कहना आरम्भ किया—'आपलोग तो अपने परम आत्मीय हैं, आपके सामने गोप्य ही क्या हो सकता है ? इसलिये सबके सामने प्रकट न करने योग्य इस बातको मैं आपके समक्ष बताता हूँ। जब मैं गयासे लौट रहा था, तब नाटशाला ग्राममें एक श्यामवर्णका परम सुन्दर बालक मेरे समीप आया। उसके लाल-लाल कोमल चरणोंमें सुन्दर नूपुर बँधे हुए थे। पैरोंकी उँगलियाँ बड़ी ही सुहावनी तथा क्रमसे छोटी-बड़ी थीं। कमरमें पीताम्बर बँधा हुआ था। पेट त्रिबलीसे युक्त और नाभि गोल तथा गहरी थी। वक्षःस्थल उन्नत और मांससे भरा हुआ था। गलेकी एक भी हड्डी दिखायी नहीं देती थी। गलेमें वनमाला तथा गुञ्जोंकी मालाएँ पड़ी हुई थीं। कानोंमें सुन्दर कुण्डल झलमल कर रहे थे। वह कमलके समान दोनों मनोहर नेत्रोंसे तिरछी निगाहसे मेरी ओर देख रहा था, उसके सुन्दर गोल कपोलोंके ऊपर काली-काली लटें लहरा रही थीं। वह मन्द-मन्द मुस्कानके साथ मुरली बजा रहा था। उस मुरलीकी मनोहर तानको सुनकर मेरा मन मेरे वशमें नहीं रहा। मैं बेहोश हो गया और फिर वह बालक न जाने

कहाँ चला गया ?' इतना कहते-कहते प्रभु बेहोश हो गये। उनकी आँखोंसे अश्रुधारा बहने लगी। शरीरके सम्पूर्ण रोम बिल्कुल खड़े हो गये। वे मूर्च्छित-दशामें ही इस श्लोकको पढ़ने लगे—

अमून्यधन्यानि दिनान्तराणि
हरे ! त्वदालोकनमन्तरेण ।
अनाथबन्धो ! करुणैकसिन्धो !
हा हन्त ! हा हन्त !! कथं नयामि ॥*

(कृष्णकर्णामृत ४१)

प्रभु इस श्लोकको गद्गद-कण्ठसे बार-बार पढ़ते और फिर बेहोश हो जाते। थोड़ा होश आनेपर फिर इसे ही पढ़ने लगते। जैसे-तैसे भक्तोंने प्रभुको श्लोक पढ़नेसे रोका और वे थोड़ी देरमें प्रकृतिस्थ हो गये। इस प्रकार उनकी ऐसी दशा देखकर सभी उपस्थित भक्त अश्रु-विमोचन करने लगे, यों वह पूरी रात्रि इसी प्रकार संकीर्तन और सत्सङ्गमें ही व्यतीत हुई।

इस प्रकार श्रीवास पण्डितके घर नित्य ही कीर्तनका आनन्द होने लगा। रात्रिमें जब मुख्य-मुख्य भक्त एकत्रित हो जाते, तब घरके किवाड़ भीतरसे बंद कर दिये जाते और फिर कीर्तन आरम्भ होता। कीर्तनमें खोल, करताल, मृदङ्ग, मजीरा आदि सभी वाद्य लय और स्वरके साथ बजाये जाते थे। प्रभु सभी भक्तोंके बीचमें खड़े होकर नृत्य करते थे। अब इनका नृत्य बहुत ही मधुर होने लगा। सभी भक्त आनन्दके आवेशमें आकर अपने आपेको भूल जाते और प्रभुके साथ नृत्य करने लगते। प्रभुके शरीरमें स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभङ्ग, कम्प, वैवर्ण्य तथा प्रलय आदि

* हे करुणाके सिन्धो ! हे अनाथोंके एकमात्र बन्धो ! हे हरे ! इन व्यर्थके दिनोंको, जिनमें कि तुम्हारे दर्शनोंसे वञ्चित रहा हूँ, हे नाथ ! हे व्रजनाथ ! मैं किस प्रकार व्यतीत करूँ ?

सभी सात्विक भावोंका उदय होता। भक्त इनके अद्भुत भावोंको देखकर मुग्ध हो जाते और भावावेशमें आकर खूब जोरोंसे संकीर्तन करने लगते। सभी सहृदय थे, सभीका चित्त प्रभुसे मिलनेके लिये सदा छटपटाता रहता था, किसीके भी मनमें मान-सम्मान तथा दिखावेपनके भाव नहीं थे। सभीके हृदय शुद्ध थे, ऐसी दशामें आनन्दका पूछना ही क्या है? वे सभी स्वयं आनन्दस्वरूप ही थे। भक्त परस्परमें एक दूसरेकी वन्दना करते, कोई-कोई प्रेममें विह्वल होकर प्रभुके पैरोंको ही पकड़ लेते। बहुत-से परस्पर ही पैर पकड़-पकड़ रुदन करते। इस प्रकार सभी प्रेममय कृत्योंसे श्रीवास पण्डितका घर प्रेम-पयोधि बन गया था। उस प्रेमार्णवमें प्रवेश करते ही प्रत्येक प्राणी प्रेममें पागल होकर स्वतः ही नृत्य करने लगता था। वहाँ प्रभुके संसर्गमें पहुँचते ही सभी संसारी विषय एकदम भूल जाते थे। भक्तोंका हृदय स्वयमेव तड़फड़ाने लगता था।

गदाधर इनके परम अन्तरङ्ग थे। ये सदा प्रभुकी ही सेवामें बने रहते। एक दिन ये भोजनके अनन्तर मुखशुद्धिके निमित्त प्रभुको पान दे रहे थे। प्रभुने प्रेमावेशमें आकर अधीर बालककी भाँति पूछा—'गदाधर! भैया, तुम ही बताओ, मेरे कृष्ण मुझे छोड़कर कहाँ चले गये? भैया! मैं उनके बिना जीवित नहीं रह सकता। तुम सच-सच मुझे उनका पता दो, वे जहाँ भी होंगे, मैं वहीं जाकर उनकी खोज करूँगा और उनसे लिपटकर खूब पेटभरके रोऊँगा। तुम बता भर दो कि वे गये कहाँ?'

गदाधरने बात टालनेके लिये कह दिया—'आप तो वैसे ही व्यर्थमें अधीर हुआ करते हैं। भला, आपके कृष्ण कभी आपको छोड़कर अन्यत्र जा सकते हैं? वे तो हर समय आपके हृदयमें विराजमान रहते हैं।'

यह सुनकर आपने उसी अधीरताके साथ पूछा—'क्या प्यारे कृष्ण अब भी मेरे हृदयमें बैठे हैं?'

गदाधरने कुछ देरके बाद कहा—'बैठे क्यों नहीं हैं। अब वे आपके हृदयमें विराजमान हैं और सदा ही रहते हैं।'

इतना सुनते ही बड़े आनन्द और उल्लासके साथ प्रभु अपने बड़े-बड़े नखोंसे हृदयको विदारण करने लगे। वे कहने लगे–'मैं हृदय फाड़-कर अपने कृष्णके दर्शन करूँगा। वे मेरे पास ही छिपे बैठे हैं और मुझे दर्शन तक नहीं देते! इस हृदयको चीर डालूँगा।' इस प्रकार करते देख गदाधरको बहुत दुःख हुआ और उन्होंने भाँति-भाँतिकी अनुनय-विनय करके इन्हें इस कामसे निवारण किया। तब ये बहुत देरके बाद होशमें आये।

एक दिन रात्रिमें प्रभु शय्यापर शयन कर रहे थे। गदाधर उनकी चरण-सेवामें संलग्न थे, चरण-सेवा करते-करते गदाधरने अपना मस्तक प्रभुके पादपद्मोंमें रखकर गद्गद-कण्ठसे प्रार्थना की–'प्रभो! इस अधम-को, किन पापोंके परिणामस्वरूप श्रीकृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति नहीं होती? आप तो दीनवत्सल हैं, मुझे साधनका बल नहीं, शुभ कर्म भी मैं नहीं कर सकता! तीर्थयात्रा आदि पुण्य कार्योंसे भी मैं वञ्चित हूँ; मुझे तो एकमात्र श्रीचरणोंका ही सहारा है। मेरे ऊपर कब कृपा होगी? प्रभो! कबतक मैं इसी प्रकार प्रेमविहीन शुष्क जीवन बिताता रहूँगा?'

उनकी इस प्रकार कातर-वाणी सुनकर प्रभु प्रसन्न हुए और उन्हें आश्वासन देते हुए कहने लगे—'गदाधर! तुम अधीर मत हो, तुम तो श्रीकृष्णके अत्यन्त ही प्यारे हो। दीन ही तो भगवान्को सबसे प्रिय है। बिना दीन-हीन बने कोई प्रभुको प्राप्त कर ही नहीं सकता। जिन्हें अपने शुभकर्मोंका अभिमान है या उग्र साधनोंका भरोसा है, वे प्रभुकी महती कृपाके अधिकारी कभी हो ही नहीं सकते। प्रभु तो अकिञ्चनप्रिय हैं, निष्किञ्चन बननेपर ही उनकी कृपाकी उपलब्धि हो सकती है। तुम्हारे

भाव पूरे निष्किञ्चन भक्तके-से हैं। जब तुम सच्चे हृदयसे निष्किञ्चन बन गये तब फिर तुम्हें श्रीकृष्ण-प्रेमकी प्राप्तिमें देर न होगी। कल गङ्गा-स्नानके बाद तुम्हें प्रभुकी पूर्ण कृपाका अनुभव होने लगेगा।'

प्रभुकी ऐसी बात सुनकर गदाधरकी प्रसन्नताका वारापार नहीं रहा। वे रात्रिभर प्रेममें मग्न होकर आनन्दाश्रु बहाते रहे, वे एक-एक घड़ीको गिनते रहे कि कब प्रातःकाल हो और कब मुझे प्रेम प्राप्त हो। प्रतीक्षामें उनकी दशा पागलोंकी-सी हो गयी, वे कभी तो उठकर बैठ जाते, कभी खड़े होकर नृत्य ही करने लगते। कभी फिर लेट जाते और कभी आप-ही-आप कुछ सोचकर जोरोंसे हँसने लगते। प्रभु उनकी दशा देखकर बड़े ही प्रसन्न हुए। प्रातःकाल गङ्गा-स्नान करते ही वे आनन्दमें विभोर होकर नृत्य करने लगे। वे प्रेमासवको पीकर उन्मत्त-से प्रतीत होते थे, मानो उन्हें उस मधुमय मनोज्ञ मदिराका पूर्णरूपसे नशा चढ़ गया हो। उन्होंने प्रेमरसमें निमग्न हुए अलसाने-से नेत्रोंसे प्रभुकी ओर देखकर उनके पाद-पद्मोंमें प्रणाम किया और कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहने लगे—'प्रभो! आपने इस अधम पापीको भी प्रेम-प्रदान करके अपने पतितपावन पुण्य नामका यथार्थ परिचय करा दिया। आपकी कृपा जीवोंपर सदा अहैतुकी ही होती है। मुझ साधनहीनको भी दुस्साध्य प्रेमकी परिधितक पहुँचा दिया। आपको सब सामर्थ्य है। आप सब कुछ कर सकते हैं।'

प्रभुने उनकी ऐसी दशा देखकर अधीरताके साथ कहा—'गदाधर! कृपालु श्रीकृष्णने तुम्हारे ऊपर कृपा कर दी, अब तुम उनसे मेरे लिये भी प्रार्थना करना।'

गदाधरने अत्यन्त ही दीनताके साथ कहा—'प्रभो! मैं तो आपको ही इसका कारण समझता हूँ। इस प्रेमको आपकी ही दयाका फल

समझता हूँ, आपसे भी भिन्न कोई दूसरे कृष्ण हैं, इसका मुझे पता नहीं।' यह कहते-कहते गदाधर प्रेममें विह्वल होकर रुदन करने लगे।

शुक्लाम्बर ब्रह्मचारीजीने भी गदाधरकी ऐसी दशा देखी। उनके अन्तःकरणमें भी प्रेम-प्राप्तिकी उत्कट इच्छा उत्पन्न हो गयी। वे भी गदाधरकी भाँति अपने आपेको भूलकर प्रेममें उन्मत्त होना चाहते थे। उनका हृदय भी प्रेमासवको पान करनेके लिये अधीर हो उठा। दूसरे दिन वे भिक्षा करके आ रहे थे। रास्तेमें गङ्गा जाते हुए प्रभु उन्हें मिल गये। प्रभुको देखते ही वे वयोवृद्ध ब्रह्मचारी उनके पैरोंमें लिपट गये। प्रभुने सङ्कोच प्रकट करते हुए कहा—'मैं आपके पुत्रके समान हूँ। आपने बाल्यकालसे ही पिताकी भाँति मेरा लालन-पालन किया है और गोदमें लेकर प्रेमपूर्वक खिलाया है। आप यह क्या अनर्थ कर रहे हैं, क्यों मेरे ऊपर पाप चढ़ा रहे हैं?'

प्रभुकी इन बातोंको सुनकर कातर-भावसे ब्रह्मचारीजीने कहा—'प्रभो! अब हमारी बहुत छलना न कीजिये। इस व्यर्थके जीवनको बिताते-बिताते वृद्धावस्था समीप आ चुकी। इस शरीरको भाँति-भाँतिके कष्ट पहुँचाकर काशी, काञ्ची, अवन्तिका आदि सभी पवित्र पुरियों और पुण्य-तीर्थोंकी पैदल ही यात्रा की। घर घरसे मुट्ठी-मुट्ठी अन्न माँगकर हमने अपनी जीविका चलायी। अब तो हमें श्रीकृष्ण-प्रेमका अधिकारी बना देना चाहिये। अब हमें किसी भी प्रकार प्रभु-प्रेम प्राप्त हो, यही पूज्य पाद-पद्मोंमें विनीत प्रार्थना है।'

ब्रह्मचारीजीकी बातें सुनकर प्रभु कुछ भी नहीं बोले। वे ब्रह्मचारीजीकी ओर देखकर मन्द-मन्द भावसे खड़े मुस्करा रहे थे। ब्रह्मचारीजी प्रभुकी मुसकराहटका अर्थ समझ गये। वे अधीर होकर अपने आप ही कह उठे—'प्रभो! हम तीर्थयात्राओंका कथन करके अपना अधिकार

नहीं जता रहे हैं। हम तो दीनभावसे एकमात्र आपकी शरण होकर प्रेमकी याचना कर रहे हैं। हमें श्रीकृष्ण-प्रेम प्रदान कीजिये।'

भावावेशमें प्रभुके मुखसे स्वतः ही निकल पड़ा—'जाओ दिया, दिया।'

बस, इतना सुनना था कि ब्रह्मचारी सब कुछ भूलकर प्रेमावेशमें भरकर पागलोंकी भाँति नृत्य करने लगे। वे नृत्य करते-करते उन्मत्तकी भाँति मुखसे कुछ प्रलाप-सा भी करते जाते थे। प्रभु उनकी ऐसी विचित्र दशा देखकर प्रेममें गद्‌गद हो गये और उनकी झोलीमेंसे धानमिश्रित भिक्षाके सूखे चावलोंको निकाल-निकालकर चबाने लगे, मानो सुदामाके प्रति प्रेम प्रकट करते हुए कृष्ण उनके घरकी चावलोंकी कनीको चबा रहे हों। इन दोनोंके इस प्रकार प्रेममय व्यवहारको देखकर सभी दर्शक चकित-से हो गये और बार-बार प्रभुके प्रेमकी प्रशंसा करने लगे। शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी भी अपनेको कृतकृत्य समझकर प्रेममें विभोर हुए अपनी कुटियामें चले गये।

इस प्रकार भक्तोंके हृदयमें प्रभुके प्रति अधिकाधिक सम्मानके भाव बढ़ने लगे। प्रभु भी भक्तोंपर पहिलेसे अत्यधिक प्रेम प्रदर्शित करने लगे। श्रीवास पण्डितके घर संकीर्तनका आरम्भ माघमासमें हुआ था, परन्तु दो ही तीन महीनेमें इसकी चर्चा चारों ओर फैल गयी और बहुत-से दर्शनार्थी संकीर्तन देखनेकी उत्सुकतासे रात्रिमें श्रीवास पण्डितके घरपर आने लगे। किन्तु संकीर्तनके समय घरका फाटक बंद कर दिया जाता था, इसलिये सभी प्रकारके लोग भीतर नहीं जा सकते थे। बहुत-से लोगोंको तो निराश होकर ही द्वारपरसे लौटना पड़ता था। संकीर्तनमें खास-खास भक्त ही भीतर जा सकते थे। उस समय संकीर्तन-का यही नियम निर्धारित किया गया था।

धीर-भाव

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेच्छम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥*

(भर्तृ० नी० श० ८४)

नियमोंका बन्धन सबको अखरता है। सभी प्राणी नियमोंके बन्धनों-को परित्याग करके स्वाधीन होना चाहते हैं, इसका कारण यही है कि प्राणीमात्रकी उत्पत्ति आनन्द अथवा प्रेमसे हुई। प्रेममें किसी प्रकारका नियम नहीं होता। प्राणीमात्रको प्रेम-पीयूषकी ही पिपासा है। सभी इसी परमप्रिय पयके अभावमें अधीर होकर छटपटाते-से नजर आते हैं और सभी प्रकारके बन्धनोंको छिन्न-भिन्न करके उसके समीपतक पहुँचना चाहते हैं, किन्तु बिना नियमोंका पालन किये उसतक पहुँचना भी असम्भव है। प्रेमके चारों ओर नियमकी परिखा खुदी हुई है। बिना

* नीतिनिपुण पुरुष चाहे निन्दा करें, चाहे स्तुति; लक्ष्मी चाहे रहे या स्वेच्छापूर्वक कहीं अन्यत्र चली जाय; चाहे आज ही मृत्यु आ जाय या युगोंतक जीवित बने रहें। धीर पुरुष इन सब बातोंकी तनिक भी परवा नहीं करते, उन्होंने धर्म समझकर जिस कामको ग्रहण कर लिया है, उससे वे कैसी भी विपत्ति पड़ने-पर विचलित नहीं होते।

उसे पार किये हुए कोई प्रेम-पीयूषतक पहुँच ही नहीं सकता। यह ठीक है, कि प्रेम स्वयं नियमोंसे अतीत है, उसके समीप कोई नियम नहीं, किन्तु साथ ही वह नियमके बिना प्राप्त भी नहीं हो सकता।

एक बार किसी भी प्रकार सही, प्रेमसे पृथक् हो गये अथवा अपनेको उससे पृथक् मान ही बैठे तो बिना नियमोंकी सहायताके उसे फिरसे प्राप्त नहीं कर सकते। प्रेमको प्राप्त करनेका एकमात्र साधन नियम ही है। जो प्रेमके नामसे नियमोंका उल्लङ्घन करके विषय-लोलुपताके वशीभूत होकर अपनी इन्द्रियोंको उनके प्रिय भोगोंसे तृप्त करते हैं, वे दम्भी हैं। प्रेमके नामसे इन्द्रिय-वासनाओंको तृप्त करना ही उनका चरम लक्ष्य है। प्रेम तो कल्पतरु है, उसकी उपासना जो मनुष्य जिस भावसे करेगा, उसे उसी वस्तुकी प्राप्ति होगी। जो प्रेमके नामसे अच्छे-अच्छे पदार्थोंको ही चाहते हैं, उन्हें वे ही मिलते हैं। जो प्रेमका बहाना बनाकर सुन्दर-सुन्दर विषय भोगना चाहते हैं, उन्हें उनके इच्छानुसार विषयोंकी ही प्राप्ति होती है, किन्तु जो प्रेमके नामसे प्रेमको ही चाहते हैं और प्रेमके सिवा यदि त्रिलोकीका राज्य भी उनके सामने आ जाय तो उसे भी वे प्रेमके पीछे ठुकरा देते हैं।

बहुधा लोगोंको कहते सुना है 'स्वर्गके सुखोंकी तो बात ही क्या है, हम तो मोक्षको भी ठुकरा देते हैं।' ये सब कहनेकी ही बातें हैं; सुन्दर मिठाईको देखकर ही जिनके मुखमें पानी भर आता है, वे स्वर्गके दिव्य-दिव्य भोगोंको भला कैसे ठुकरा सकेंगे? वे अज्ञ पुरुष स्वर्गके सुखोंसे अनभिज्ञ हैं। जिसने चिरकालतक नियमोंका पालन नहीं किया है, उसका चित्त अपने वश हो सकेगा, वह कभी प्रेमी बन सकेगा, इसका अनुमान त्रिकालमें भी नहीं किया जाता।

नियमोंका पालन करनेमें सभीको झुँझलाहट होती है, किन्तु जो धीर पुरुष हैं, जिनके ऊपर प्रभुकी कृपा है, वे तो मनको मारकर इच्छाके

विरुद्ध भी नियमोंका पालन करते हैं और धीरे-धीरे नियमोंके पालनसे उनमें दृढ़ता, तत्परता, नम्रता तथा दीनता और सहनशीलता आदि सद्वृत्तियाँ आने लगती हैं। जो नियमोंसे झुँझलाकर उन्हें छिन्न-भिन्न करना चाहते हैं, उनके हृदयमें पहिले तो नियमोंके प्रति द्वेष उत्पन्न होता है, द्वेषसे उस नियमके विरुद्ध प्रचार करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है। द्वेषबुद्धिसे किसीके विरुद्ध प्रचार करनेसे क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोधसे उस काममें इतनी अधिक आसक्ति हो जाती है कि उसके विरुद्ध प्रचार करनेके लिये वह बुरे-बुरे घृणित उपायोंको भी काममें लाने लगता है। उन बुरे कामोंसे ही उसका सर्वस्व नाश हो जाता है।

महाप्रभुका कीर्तन बंद मकानमें होता था। ऐसा उस समय भक्तोंने नियम बना रखा था कि अनधिकारियोंके पहुँचनेसे भावोंमें सांसारिकताका समावेश न होने पावे। लोगोंके हृदयोंमें संकीर्तनको देखनेकी उत्सुकता उत्पन्न हुई। उन्हें यह नियम बहुत ही अखरने लगा। उन्हें प्रभुके इस नियमके प्रति झुँझलाहट होने लगी। जो श्रद्धा-वान् थे, वे तो अपने मनकी झुँझलाहटको रोककर धैर्यके साथ प्रतीक्षा करने लगे और कीर्तनके अन्तमें उन्होंने नम्रतापूर्वक कीर्तनमें प्रवेश करनेकी प्रार्थना की। उन्हें अधिकारी समझकर दूसरे दिनसे प्रवेश करनेकी अनुमति मिल गयी और वे उसी नियमपालनके प्रभावसे जीवन-में उत्तरोत्तर उन्नति करते हुए सद्वृत्तियोंकी वृद्धिके द्वारा प्रभुके पाद-पद्मोंतक पहुँच गये, किन्तु जो उस नियमके कारण अपनी झुँझलाहटको नहीं रोक सके, उन्हें संकीर्तनके प्रति द्वेष उत्पन्न हुआ। द्वेषके कारण वे वैष्णवोंके शत्रु बन गये। संकीर्तनके विरुद्ध प्रचार करने लगे और संकीर्तनको नष्ट करनेके लिये भाँति-भाँतिके बुरे-बुरे उपाय काममें लाने लगे। उनके क्रूर कर्मोंके द्वारा संकीर्तन नष्ट नहीं हुआ, प्रत्युत विरोधके कारण उसकी तो अधिकाधिक वृद्धि ही हुई, किन्तु वे दुष्ट-स्वभावके

मनुष्य स्वयं अधोगतिके अधिकारी हुए। उन्होंने शुभ नियमके प्रति असहिष्णुताके भाव प्रदर्शित करके अपने आपको गड्ढेमें गिरा दिया। इन विरोधियोंके ही कारण संकीर्तन देशव्यापी बन सका। इस प्रकार इन दुष्ट-पुरुषोंके विरोधसे भी महापुरुषोंके सत्कार्योंमें बहुत-सी सहायता मिलती है। इसलिये सत्पुरुषोंके शुभ कामोंका दुष्ट प्रकृतिके पुरुष कितना भी विरोध करें, वे उससे घबड़ाते नहीं, किन्तु उस विरोधके कारण और भी दूने उत्साहके साथ उस कार्यमें प्रवृत्त हो जाते हैं।

संकीर्तनके विरोधियोंने संकीर्तनको रोकनेके लिये भाँति-भाँतिके उपाय किये, लोगोंमें उनके प्रति बुरे भाव उत्पन्न किये, लोगोंको संकीर्तनके विरुद्ध उभाड़ा, उसकी अनेकों प्रकारसे निन्दा की, किन्तु वे सभी कामोंमें असफल ही रहे।

इस प्रकार महाप्रभु अपने प्रेमी भक्तोंके सहित श्रीकृष्णसंकीर्तनमें सदा संलग्न रहने लगे, किन्तु कुछ बहिर्मुख वृत्तिवाले पुरुष संकीर्तनके विरोधी बन गये। रात्रिभर संकीर्तन होता था, भक्तगण जोरोंसे 'हरि बोल' 'हरि बोल' की ध्वनि करते। आसपासके लोगोंके निद्रासुखमें विघ्न पड़ता, इसलिये वे भाँति-भाँतिसे कीर्तनके विरुद्ध भाव फैलाने लगे। कोई कहता—'ये सब लोग पागल हो गये हैं, तभी तो रात्रिभर चिल्लाते रहते हैं, क्या बतावें, इनके कारण तो सोना भी हराम हो गया है!' कोई कहता—'सब एक-से ही इकट्ठे हो गये हैं। ज्ञान, योग, तप, जपमें तो बुद्धिकी आवश्यकता होती है, परिश्रम करना पड़ता है। इसमें कुछ करना-धरना तो पड़ता ही नहीं। चिल्लाना ही है, सो सभी तरहके लोग मिलकर चिल्लाते रहते हैं।'

कोई बीचमें ही कह उठता—'अजी! हत्याकी जड़ तो यह श्रीवासिया बामन ही है। भीखके रोट लग गये हैं! माँगकर खाते हैं, मस्ती

आ गयी है, चार पैसे पासमें हो गये हैं, उन्हींकी गर्मीके कारण रात्रिभर चिल्लाता रहता है। और भी दस-बीस बेकार लोगोंको इकट्ठा कर लिया है। इसके पीछे हम सभी लोगोंका नाश होगा।'

इतनेमें ही एक कहने लगा—'मैंने आज ही सुना है, राजाकी तरफसे दो नावें सभी कीर्तन करनेवालोंको बाँधकर ले जानेके लिये आ रही हैं। साथमें एक फौज भी आवेगी जो श्रीवासके घरको तोड़-फोड़कर गङ्गाजीमें बहा देगी और सभी कीर्तन करनेवालोंको पकड़ ले जायगी।'

इस बातसे भयभीत होकर कुछ लोग कहने लगे—'भाई! इसमें हमारा तो कुछ दोष है ही नहीं, हम तो साफ कह देंगे कि हम कीर्तनमें जाते ही नहीं, अमुक-अमुक लोग किवाड़ बंद करके भीतर न जाने क्या-क्या किया करते हैं।'

कुछ लोगोंने सम्मति दी—'जबतक फौज न आने पावे उससे पहिले ही काजीसे जाकर कीर्तनकी शिकायत कर आवें और उससे जता आवें कि इस वेदविरुद्ध अशास्त्रीय कार्यमें हमारी बिल्कुल सम्मति नहीं है। न जाने ये स्त्रियोंको साथ लेकर क्या-क्या कर्म करते रहते हैं! मालूम पड़ता है, ये लोग वाम-मार्गकी पद्धतिसे पञ्च-मकारोंके साथ उपासना करते हैं। ऊपरसे लोगोंको सुनानेके लिये तो जोर-जोरसे श्रीकृष्ण-कीर्तन करते हैं और भीतर मांस, मदिरा, मछली, मैथुन आदि वाम-मार्गियोंके साधनोंका प्रयोग करते हैं। इससे यही ठीक होगा कि पहिलेसे ही काजी-को जता दें।' यह बात लोगोंको पसंद आयी और कुछ लोगोंने जाकर नवद्वीपके काजीके सामने संकीर्तनकी शिकायत की। सब बातें सुनकर काजीने कह दिया—'आपलोग किसी बातकी चिन्ता न करें, हम कीर्तन-को बंद करा देंगे।' इस उत्तरको सुनकर शिकायत करनेवाले प्रसन्नता-पूर्वक अपने-अपने स्थानोंको लौट आये।

अब तो बाजारमें संकीर्तनके सम्बन्धमें भाँति-भाँतिकी अफवाहें उड़ने लगीं। कोई कहता—'इनके जोर-जोरसे चिल्लानेसे भगवान् भी नाराज हो जायँगे और इसके परिणामस्वरूप सम्पूर्ण देशमें दुर्भिक्ष पड़ने लगेगा।' कोई उसकी बातका नम्रताके साथ खण्डन करता हुआ कहता —'यह तो नहीं कह सकते कि भगवान् नाराज हो जायँगे, वे तो घट-घट-व्यापी अन्तर्यामी हैं, सबके भावोंको जानते हैं और सबकी सहते हैं, किन्तु यदि ये धीरे-धीरे नाम-स्मरण करें तो क्या इससे पुण्य न होगा? रातभर'हा-हा' 'हू-हू' मचाते रहनेसे क्या लाभ?'

उसी समय कोई अपने हृदयकी जलनको शान्त करनेके भावसे द्वेषबुद्धिसे कहता—'अब दो ही चार दिनोंमें इन्हें अपनी भक्ति और संकीर्तनका मजा मिल जायगा। श्रीवासकी खैर नहीं है।'

इन सभी बातोंको श्रीवास पण्डित भी सुनते। रोज-रोज सुननेसे उनके मनमें भी कुछ-कुछ भय उत्पन्न होने लगा। वे सोचने लगे— 'गौड़देशका राजा हिन्दू तो है नहीं। हिन्दू-धर्मका विरोधी यवन है, यदि वह ऐसा करे भी तो कोई आश्चर्य नहीं, फिर हमारे बहुत-से हिन्दू भाई ही तो संकीर्तनके विरुद्ध काजीके पास जाकर शिकायत कर आये हैं। ऐसी स्थितिमें बहुत सम्भव है, हम सब लोगोंको भाँति-भाँतिके कष्ट दिये जायँ।'

लोगोंके मुखसे ऐसी-ऐसी बातें सुनकर कुछ भोले भक्त तो बहुत ही अधिक डर गये। वे श्रीवास पण्डितके पास आकर सलाह करने लगे कि अब क्या करना चाहिये। कोई-कोई तो भयभीत होकर यहाँतक कहने लगे कि यदि ऐसा ही हो तो थोड़े दिनोंके लिये हमलोगोंको देश छोड़कर चले जाना चाहिये। उन सबकी बातें सुनकर श्रीवास पण्डितने कहा—'भाई! अब जो होना होगा सो होगा। श्रीनृसिंह भगवान् सब भला ही करेंगे।

हम श्रीकृष्ण-कीर्तन ही तो करते हैं। देखा जायगा। जो कष्ट आवेगा, उसे सहेंगे।' श्रीवासपण्डितने भक्तोंको तो इस भाँति समझा दिया, किन्तु उनके मनमें भय बना ही रहा। तो भी उन्होंने अपने मनोगत भावोंको प्रभुके सम्मुख प्रकट नहीं किया। प्रभु तो सबके भावोंको समझनेवाले थे, उन्होंने भक्तोंके भावोंको समझ लिया कि ये यवन राजाके कारण कुछ भयभीत-से हो गये हैं, इसलिये इन्हें निर्भय कर देना चाहिये।

एक दिन प्रभुने अपने सम्पूर्ण शरीरमें सुगन्धित चन्दन लगाया, घुँघराले काले-काले सुन्दर बालोंमें सुगन्धित तैल डाला। मूल्यवान् स्वच्छ और महीन वस्त्र पहिने और साथमें दो-चार भक्तोंको लेकर गङ्गा-किनारेकी ओर चल पड़े। उनके अरुण अधर पानकी लाली लगनेसे और भी अत्यधिक अरुण बन गये थे। नेत्रोंमेंसे प्रसन्नता प्रकाशित हो रही थी, मुखकमल शरत्पूर्णिमाके चन्द्रके समान खिला हुआ था। वे मन्द-मन्द मुस्कानके साथ भक्तोंके आनन्दको वर्धन करते हुए गङ्गाजीके घाटोंपर इधर-से-उधर टहलने लगे। जो सात्त्विक प्रकृतिके भगवत्-भक्त थे, वे तो प्रभुके अद्भुत रूपलावण्यको देखकर मन-ही-मन परम प्रसन्न हो रहे थे, किन्तु जो बहिर्मुख वृत्तिके निन्दक पुरुष थे, वे आपसमें भाँति-भाँतिकी आलोचना-प्रत्यालोचना करने लगे। परस्परमें एक दूसरेसे कहने लगे—'यह निमाई पण्डित भी अजीब आदमी मालूम पड़ता है, इसे तनिक भी भय नहीं है। सम्पूर्ण शहरमें हल्ला हो रहा है, कल सेना पकड़ने आवेगी और सबसे पहिले निमाई पण्डितको ही बाँधकर नावपर चढ़ाया जायगा। इन सब बातोंको सुननेपर भी यह राजपुत्रके समान बन-ठनकर हँसता हुआ घूम रहा है। इसके चेहरेपर सिकुड़न भी नहीं मालूम पड़ती। बड़ा विचित्र पुरुष है!'

कोई-कोई कहता—'अजी! सब झूठी बातें हैं, न फौज आती है और न नाव ही आ रही है। सब चंडूखानेकी गप्पें हैं।'

दूसरा इसका जोरोंसे खण्डन करके कहता—'वाह साहब ! आप गप्प ही समझ रहे हैं, कल काजीसाहब स्वयं कहते थे। 'हाथ कंगनको आरसी क्या' कल आप प्रत्यक्ष ही देख लेना।'

इस प्रकार लोग भाँति-भाँतिसे अपने-अपने अनुमानोंको दौड़ा रहे थे। महाप्रभु भक्तोंके साथ आनन्दमें विहार कर रहे थे। इसी बीच एक प्रभुके पुराने परिचित पण्डित गङ्गाजीपर सन्ध्या करते हुए मिले। प्रभुको देखकर उन्होंने इन्हें प्रणाम किया, फिर आपसमें वार्तालाप होने लगा। बातों-ही-बातोंमें पण्डितने कहा—'भाई ! सुन रहे हैं, तुम्हें पकड़नेके लिये राजाकी तरफसे सेना आ रही है। सम्पूर्ण शहरमें इसकी गरम अफवाह है। यदि ऐसी ही बात है, तो तुम कुछ दिनके लिये नवद्वीप छोड़कर कहीं अन्यत्र ही चले जाओ। राजाके साथ विरोध करना ठीक नहीं। फिर ऐसे राजाके साथ जो हमारे धर्मका स्वयं विरोधी हो। हमारी राय तो यही है कि इस समय तुम्हें मैदान छोड़कर भाग ही जाना चाहिये, आगे जैसा तुम उचित समझो।'

प्रभुने कुछ उपेक्षाके साथ कहा—'अजी ! जो होगा सो होने दो, अब गौड़ छोड़कर और जा ही कहाँ सकते हैं ? यदि दूसरी जगह जायँगे तो वहाँ क्या बादशाह सेना भेजकर हमें पकड़कर नहीं मँगा सकता ? इससे यहीं अच्छे हैं। जो कुछ दुःख पड़ेगा, उसे सहेंगे। शुभ कामोंकी ऐसे समयमें ही तो परीक्षा होती है, दुःख ही तो धर्मकी कसौटी है। देखना है कितने इसपर खरे उतरते हैं।' यह सुनकर पण्डित चुप हो गये। प्रभु श्रीवास पण्डितके मकानकी ओर चल पड़े।

श्रीनृसिंहावेश

किं किं सिंहस्ततः किं नरसदृशवपुर्देव चित्रं गृहीतो
नैतादृक् क्वापि जीवोऽद्भुतमुपनय मे देव संप्राप्त एषः ।
चापं चापं न चापीत्यहहहहहहा कर्कशत्वं नखाना-
मित्थं दैत्येन्द्रवक्षः खरनखमुखरैर्जघ्निवान् यः स नोऽव्यात् ॥*

(सु० र० भां० २० । ५५)

---

* हिरण्यकशिपु अपने सेवकसे पूछता है—'कौन है, कौन है ?' सेवक कहता है—'प्रभो ! सिंह है ।' तब पूछता है—'तब क्या हुआ, सिंह है तो होने दो ।' सेवक कहता है—'प्रभो ! उसका शरीर मनुष्यके समान है, यही तो महान् आश्चर्यकी बात है ।' यह सुनकर हिरण्यकशिपु कहने लगा—'इस प्रकारका अद्भुत जीव तो आजतक मैंने कभी देखा नहीं, अच्छा उसे मेरे पास ले आओ ।' जल्दीसे सेवक बोल उठा—'देखिये प्रभो ! यह वह आ ही गया ।' हिरण्यकशिपुने जल्दीसे धनुष मांगते हुए कहा—'धनुष ! धनुष !, नौकरोंकी बुद्धि भ्रष्ट ही हो गयी थी, उन्होंने कहा—'उसके पास धनुष नहीं है' ओहो ! उसके तो बड़े-बड़े कर्कश नख हैं ।' वे लोग इतना कह ही रहे थे कि नृसिंह भगवान्ने अपने कठोर और तीक्ष्ण नखोंसे दैत्येन्द्र हिरण्यकशिपुके वक्षःस्थलको विदीर्ण कर दिया । ऐसे नृसिंह भगवान् हमलोगोंकी रक्षा करें ।

श्रीवास पण्डित नृसिंह भगवान्‌के उपासक थे, वे अपने पूजागृहमें बैठे हुए भक्तिभावसे नृसिंह भगवान्‌का विधिवत् पूजन कर रहे थे। इतनेहीमें उन्हें अपने घरके किवाड़ोंपर जोरसे खट-खटकी आवाज सुनायी पड़ी, मानो कोई जोरोंके साथ किवाड़ोंको खड़खड़ा रहा हो। श्रीवासका ध्यान भंग हुआ। वे डर-से गये कि किवाड़ोंको इतने जोरसे कौन खड़खड़ा रहा है। उन्होंने पूछा—'कौन है?' बाहरसे आवाज आयी—'जिसका तुम पूजन कर रहे हो, जिसे अबतक अप्रत्यक्ष मानकर पूजा करते थे, उसे प्रत्यक्ष देख लो।' यह सुनकर श्रीवास पण्डित कुछ सिटपिटा-से गये और उन्होंने डरते-डरते किवाड़ खोले। इतनेमें ही श्रीवास क्या देखते हैं, कि अद्‌भुत रूप-लावण्यसे युक्त शचीनन्दन श्रीविश्वम्भर निर्भय भावसे पूजागृहमें चले जा रहे हैं। वे जाते ही पूजा-के सिंहासनपर विराजमान हो गये। श्रीवास पण्डितको ऐसा प्रतीत हुआ, कि साक्षात् विष्णु भगवान् विश्वम्भरके रूपमें प्रकट हुए हैं, उनके चार हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म सुशोभित हो रहे हैं, गलेमें वैजयन्ती-माला पड़ी हुई है, एक बड़े भारी मत्त सिंहकी भाँति बार-बार हुंकार कर रहे हैं। श्रीवास प्रभुके ऐसे भयंकर रूपको देखकर भयभीत-से हो गये।

भगवान्‌के सिंहासनपर बैठे-ही-बैठे प्रभु घोर गम्भीर स्वरसे सिंहकी भाँति दहाड़ते हुए कहने लगे—'श्रीवास! अभीतक तुमने हमें पहिचाना नहीं। नाड़ा (अद्वैताचार्य) तो हमारी परीक्षा करनेके ही निमित्त शान्तिपुर चले गये। तुम्हें किसी प्रकारका भय न करना चाहिये। हम एक-एक दुष्टका विनाश करेंगे। भक्तोंको कष्ट पहुँचाने-वाला कोई भी दुष्ट हमारे सामने बच न सकेगा। तुम घबड़ाओ नहीं। शान्त-चित्तसे हमारी स्तुति करो।' प्रभुके इस प्रकार आश्वासन देनेपर श्रीवास पण्डित कुछ देर बाद प्रेममें विह्वल होकर गद्गद-कण्ठसे स्तुति करने लगे—

नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु-
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥*

(श्रीमद्भा० पू० १० । १४ । १)

इस श्लोकको पढ़नेके अनन्तर वे दीनभावसे कहने लगे—'विश्वम्भरकी जय हो, विश्वरूप अग्रजकी जय हो, शचीनन्दनकी जय हो, जगन्नाथप्रियकी जय हो, गौर-सुन्दरकी जय हो, मदनमोहनकी जय हो, नृसिंहरूपधारी भगवान्‌की जय हो, भक्तभयहारी भगवान्‌की जय हो, भक्तभयभञ्जन प्रभुकी जय हो !

इतने दिनोंसे मैं अज्ञानान्धकारमें इधर-उधर भटक रहा था । आज गुरुरूपसे प्रभु साक्षात् आपके दर्शन हुए । आज आपने अपना असली स्वरूप प्रकट करके मुझ पामर प्राणीको परम पावन बना दिया । आप ही ब्रह्मा हैं, आप ही विष्णु हैं, आप ही शिव हैं । सृष्टिके आदिकारण आप ही हैं । आपकी जय हो !'

श्रीवासके इस प्रकार स्तोत्र-पाठ करनेपर प्रभुने उन्हें आज्ञा दी कि 'तुम अपने सम्पूर्ण परिवारके सहित हमारी पूजा करो और हमसे मनो-

* हे भक्तभयहारी भगवन् ! आप प्रसन्न हों, मैं आपकी स्तुति करता हूँ । प्रभो ! आपकी मेघके समान सलोनी श्यामसुन्दर मूर्ति है, शरीरपर बिजलीके समान चमकीला पीताम्बर शोभायमान है, गुञ्जाओंके भूषणोंसे तथा मयूर-पिच्छके मुकुटसे आपका श्रीमुख देदीप्यमान है । गलेमें वनमाला विराजमान है, एक हाथमें दही-भातका कौर लिये होनेसे तथा अन्य स्थानोंमें लकुटी, नरसिंहा और मुरलीसे आपकी शोभा अत्यन्त ही बढ़ी हुई है । आपके चरणयुगल बड़े ही कोमल हैं और नन्दबाबाको आप पिता कहकर पुकारते हैं । ऐसे आपके लिये—केवल आपकी ही प्राप्तिके निमित्त—मैं प्रणाम करता हूँ ।

वाञ्छित वरदान माँगो।' प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य करके श्रीवास पण्डितने अपने घरकी सम्पूर्ण स्त्रियोंको, बाल-बच्चे तथा दास-दासियोंको एकत्रित किया और सभी मिलकर आनन्द तथा उल्लासके साथ प्रभुकी पूजा करनेके लिये उद्यत हो गये। पिताके समान पूज्य और वृद्ध श्रीवास पण्डित इस बातको बिलकुल भूल ही गये, कि ये हमारे मित्र पण्डित जगन्नाथ मिश्रके छोटे पुत्र हैं, जिन्हें हमने गोदीमें खिलाया है, और जो हमारा सदा पिताके समान सम्मान करते हैं। उस समय उन्हें यह पूर्ण भाव हो गया था कि साक्षात् नृसिंह भगवान् ही प्रकट हुए हैं। इसीलिये विष्णुपूजाके निमित्त जितनी सामग्री एकत्रित की थी, वह सब-की-सब प्रभुकी पूजामें लगा दी। श्रीवासके घरकी स्त्रियोंने अपने-अपने हाथोंसे प्रभुके गलेमें मालाएँ पहिनायीं। उनके मस्तकके ऊपर पुष्प चढ़ाये और उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। प्रभुने भी उनके मस्तकों-पर अपना चरण रखकर उन्हें आशीर्वाद दिया—'तुम सबकी हममें भक्ति हो।' इस प्रकार सभीने मिलकर भक्तिभावके साथ प्रभुका पूजन किया।

इसके अनन्तर जोरोंसे हुँकार करते हुए प्रभुने गम्भीर स्वरमें कहा—'श्रीवास! तुम्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिये। तुम अनन्य भावसे हमारा ही तो स्मरण-कीर्तन करते हो, फिर डरकी क्या बात? बादशाहकी क्या ताकत है जो हमारे विरुद्ध कुछ कर सकेगा? यदि वैष्णवोंको पकड़नेके लिये नाव आवेगी तो सबसे पहले नावमें हम ही चढ़ेंगे और जाकर बादशाहसे कहेंगे, कि तुमने कीर्तन रोकनेकी क्यों आज्ञा दी है? यदि काजियोंके कहनेसे तुमने ऐसा किया है, तो उन्हें यहाँ बुलाओ और वे अपने शास्त्रके विश्वासके अनुसार प्रार्थना करके सभीसे 'अल्लाह' या 'खुदा' कहलवावें। नहीं तो हम सभी हिन्दू, यवन, पशु-पक्षी आदि जीवोंसे 'कृष्ण-कृष्ण' कहलाते हैं। इस प्रकार सभी जीवोंके मुखसे श्रीकृष्ण-कीर्तन कराकर हम संकीर्तनका महत्त्व प्रकाशित करेंगे और यवनोंसे भी कृष्ण कहलायेंगे। यदि इतनेपर भी वह न मानेगा तो हम उसका संहार करेंगे।

तुम किसी बातकी चिन्ता मत करो, निर्भय रहो। हम तुम्हें अभी बताते हैं कि यह सब किस प्रकार हो सकेगा।' इतना कहकर प्रभुने श्रीवास पण्डितकी भतीजीको अपने पास बुलाया। उसका नाम नारायणी था, उसकी अवस्था लगभग ४ वर्षकी होगी। प्रभुने उसे अपने पास बुलाकर कहा—'बेटी! नारायणी! तुम श्रीकृष्णप्रेममें उन्मत्त होकर रुदन तो करो!' बस, इतना सुनना था, कि वह चार वर्षकी बालिका श्रीकृष्ण-प्रेममें मूर्छित होकर गिर पड़ी और जोरोंसे 'हा कृष्ण! हा कृष्ण!!' कहकर रुदन करने लगी। उसके इस प्रकार रुदनको सुनकर सभी स्त्री-पुरुष आश्चर्यसागरमें गोते खाने लगे। सभीकी आँखोंसे आँसू बहने लगे।

हँसते-हँसते प्रभुने कहा—'इसी प्रकार हम सबसे कृष्ण-कीर्तन करायेंगे।' इस प्रकार श्रीवासको आश्वासन देकर प्रभु मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े और बहुत देरके अनन्तर होशमें आये। होशमें आनेपर आप आश्चर्यके साथ इधर-उधर देखने लगे और बोले—'पण्डितजी! मैं यहाँ कैसे आ गया? मैंने कोई चपलता तो नहीं कर डाली? आप तो मेरे पिताके समान हैं, मेरे सभी अपराधोंको आप सदासे क्षमा करते आये हैं। यदि मुझसे कोई चपलता हो भी गयी हो तो उसे क्षमा कर दीजियेगा। मुझे कुछ भी मालूम नहीं है कि मैं यहाँ कैसे आया और मैंने क्या-क्या कहा?'

प्रभुकी इस प्रकार भोली-भाली बातें सुनकर श्रीवास पण्डितने विनीत-भावसे कहा—'प्रभो! मुझे चिरकालतक भ्रममें रखा, अब फिरसे मुझे भ्रममें न डालिये, मेरी अब छलना न कीजिये। अब तो मुझे आपका सत्-स्वरूप मालूम पड़ गया है, आपके चरणोंमें मेरा इसी प्रकार अनुराग बना रहे, ऐसा आशीर्वाद दीजिये।' श्रीवासके ऐसा कहनेपर प्रभु मन-ही-मन प्रसन्न हुए और कुछ लजाते हुए-से अपने घरकी ओर चले गये।

श्रीवाराहावेश

नमस्तस्मै वराहाय हेलयोद्धरते महीम्।
खुरमध्यगतो यस्य मेरुः खुरखुरायते ॥*

(सु० र० भां १९ । २३)

'आवेश' उसे कहते हैं कि किसी एक अन्य शरीरमें किसी भिन्न शरीरीके गुणोंका कुछ कालके लिये आवेश हो जाय। प्रायः लोकमें स्त्री-पुरुषोंके ऊपर भूत, प्रेत, यक्ष, राक्षस तथा देव-दानवोंके आवेश आते देखे गये हैं। जो जैसी प्रकृतिके पुरुष होते हैं, उनके ऊपर वैसे ही आवेश भी आते हैं। देवताओंका आवेश सात्त्विक प्रकृतिके ही लोगोंके ऊपर आवेगा। यक्ष-राक्षसोंका आवेश राजस-प्रकृतिके ही शरीरोंमें प्रकट होगा और जो घोर तामस-प्रकृतिके पुरुष हैं, उन्हींके शरीरमें भूत-पिशाचोंका आवेश आता है। सभीके शरीरोंमें आवेश हो, यह बात नहीं। कभी किसी विरले ही शरीरमें आवेश होता हुआ देखा जाता है। वह क्यों होता है और किस प्रकार होता है इसका कोई निश्चित नियम नहीं। जिस देव, दानव अथवा भूत-पिशाचने जिस शरीरको अपने उपयुक्त समझ लिया, उसीमें प्रवेश करके वह अपने भावोंको व्यक्त करता है।

इसके अतिरिक्त भगवान्के कलावतार, अंशावतार आदि अवतारों-के मध्यमें एक आवेशावतार भी होता है। किसी महान् कार्यके लिये

---

* उन श्रीवराह भगवान्को नमस्कार है, जिन्होंने पातालमें गयी हुई पृथ्वीका बात-की-बातमें ही उद्धार कर दिया और जिनके खुरोंके आघातसे सुमेरु-पर्वत भी खुर-खुर शब्द करने लगा था।

किसी विशेष शरीरमें भगवान्‌का आवेश होता है और उस कार्यको पूरा करके फौरन ही वह आवेश चला जाता है। भगवान् तो 'कर्तुमकर्तुमन्यथा-कर्तुम्' सभी कुछ करनेमें समर्थ हैं, उनकी इच्छामात्रसे बड़े-बड़े दुष्टों-का संहार हो सकता है, किन्तु भक्तोंके प्रेमके अधीन होकर, उन्हें अपनी असीम कृपाका महत्व जतानेके निमित्त तथा अपनी लीला प्रकट करने-के निमित्त वे भाँति-भाँतिके अवतारोंका अभिनय करते हैं! वास्तवमें तो वे नाम, रूप तथा सभी प्रकारके गुणोंसे रहित हैं।

जिस प्रकार पृथ्वीको दुष्ट क्षत्रियोंके अत्याचारसे पीड़ित देखकर महर्षि परशुरामके शरीरमें भगवान्‌का आवेश हुआ और पृथ्वीको दुष्ट क्षत्रियोंसे हीन करके शीघ्र ह ी वह आवेश अदृश्य हो गया, फिर परशु-रामजी शुद्ध ऋषि बन आजतक भी महेन्द्र पर्वतपर बैठे तपस्या कर रहे हैं। इस प्रकार आवेशावतार किसी विशेष कार्यकी सिद्धिके निमित्त होता है और व ह अधिक दिनतक ठहरता भी नहीं। द्रौपदीके चीर खींचनेपर भगवान्‌का चीरावतार भी हुआ था और क्षणभरमें ही द्रौपदी-की लाज रखकर वह अदृश्य भी हो गया।

इसी प्रकार अ ब प्रभुके भी शरीरमें भिन्न-भिन्न अवतारोंके आवेश होने लगे। जिस समय ये आवेशावस्थामें होते, उस समय उसी अवतार-के गुणोंके अनुसार बर्ताव करने लगते और जब वह आवेश समाप्त हो जाता, तब आप एक अमानी भक्तकी भाँति बहुत ही दीनताका बर्ताव करने लगते। भक्तोंकी पद-रजको अपने मस्तकपर चढ़ाते और सबसे अधीर होकर पूछते—'मु श्रीकृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति कब हो सकेगी? आप लोग मुझे श्रीकृष्णप्राप्तिका उपाय बतावें। मैं अप प्यारे श्रीकृष्णसे कैसे मिल सकूँगा?' इस प्रकार इनके जीवनमें दो भिन्न-भिन्न भाव प्रतीत होने लगे। भावावेशमें तो भगवद्भाव और साधारणरीत्या भक्त-भाव। जो इनके अन्तरङ्ग भक्त थे, वे तो इनमें सर्वकालमें भगवद्भावना ही रखते और ये कितनी भी दीनता प्रकट करते तो भी उससे उनके

भावमें परिवर्तन नहीं होता, किन्तु जो साधारण थे, वे सन्देहमें पड़ जाते कि यह बात क्या है? कोई कहता–'ये साक्षात् श्रीकृष्ण ही हैं।' कोई कहता–'न जाने किसी देवी-देवताका आवेश होता हो।' कोई-कोई इसे तान्त्रिक सिद्धि भी बताने लगे। प्रभुके शरीरमें कुछ श्रीकृष्ण-लीलाओंका भी भक्तोंने उदय देखा था। कभी तो ये अक्रूर-लीला करते, कभी गोपियों के विरहमें रुदन करते थे।

मुरारी गुप्त वराह भगवान्के उपासक थे। एक दिन मुरारी गुप्त वराह भगवान्के स्तोत्रका पाठ कर रहे थे। प्रभु दूरसे ही स्तोत्रपाठ सुन-कर वराहकी भाँति जोरोंसे गर्जना करते हुए 'शूकर-शूकर' ऐसा कहते हुए मुरारी गुप्तके घरकी ओर चले। उस समय इनकी प्रकृतिमें मुरारी गुप्तने सभी वराहावतारके गुणोंका अनुभव किया। प्रभु दोनों हाथोंको पृथ्वीपर टेककर हाथ-पैरोंसे बिल्कुल वराहकी भाँति चलने लगे। रास्तेमें एक बड़ा पीतलका जलपूर्ण कलश रखा था। प्रभुने उसे अपनी डाढ़से उठाकर दूसरी ओर फेंक दिया और आप सीधे गुप्त महाशयके पूजागृहमें चले गये। वहाँ जाकर आप आसनासीन हुए और मुरारीसे कहने लगे —'मुरारी! तुम हमारी स्तुति करो।'

मुरारीने हाथ जोड़े हुए अति दीनभावसे कहा—'प्रभो! आपकी महिमा वेदातीत है। वेद, शास्त्र आपकी महिमाको पूर्णरीतिसे समझ ही नहीं सकते। श्रुतियोंने आपका 'नेति' 'नेति' कहकर कथन किया है। आप अन्तर्यामी हैं। शेषजी सहस्र मुखोंमें अहर्निश आपके गुणोंका निरन्तर कथन करते रहते हैं तो भी प्रलयके अन्ततक आपके समस्त गुणोंका कथन नहीं कर सकते। फिर मैं अज्ञ प्राणी भला आपकी स्तुति कैसे कर सकूँगा?'

प्रभुने उसी प्रकार गम्भीर स्वरमें कहा—'मुरारी! तुम्हें भय करने की कोई बात नहीं। जो दुष्ट मेरे संकीर्तनमें विघ्न करेगा, मैं उसका संहार

करूँगा, फिर चाहे वह कोई भी क्यों न हो। तुम निर्भय रहो। नाम-संकीर्तनद्वारा मैं जगदुद्धारका कार्य करूँगा।' यह कहते-कहते प्रभु अचेतसे हो गये और वहीं मूर्छित होकर गिर पड़े। कुछ कालके अनन्तर प्रभु प्रकृतिस्थ हुए और मुरारीसे फिर उसी प्रकारकी अधीरताकी बातें करने लगे। मुरारी गुप्त तो इनके प्रभावका पहले ही परिचय प्राप्त कर चुके थे। इसलिये उनके भावमें किसी प्रकारका परिवर्तन नहीं हुआ। प्रभु इस प्रकार मुरारीको अपने दर्शनोंसे कृतार्थ करके घरकी ओर चले गये। इसी प्रकार भक्तोंको अनेक भावों और लीलाओंसे प्रभु सदा आनन्दित और सुखी बनाते हुए श्रीकृष्ण-कीर्तनमें संलग्न बनाये रखते थे।

एक दिन संकीर्तन करते-करते प्रभुने बीचमें ही कहा—'नदियामें अब शीघ्र ही एक महापुरुष आनेवाले हैं, जिनके द्वारा नवद्वीपके कोने-कोने और घर-घरमें श्रीकृष्ण-संकीर्तनका प्रचार होगा।' प्रभुके मुखसे इस बातको सुनकर सभी भक्तोंको परम प्रसन्नता प्राप्त हुई और वे आनन्दके उद्रेकमें और अधिक उत्साहके साथ नृत्य करने लगे। भक्तोंको दृढ़ विश्वास था कि प्रभुने जो बात कही है, वह सत्य ही होगी।

इस बातको चार-पाँच ही दिन हुए होंगे, कि एक दिन संकीर्तनके अनन्तर प्रभुने भक्तोंसे कहा—'मेरे अग्रज, मेरे परम सखा, मेरे बन्धु और मेरे वे सर्वस्व महापुरुष अवधूतके वेशमें नवद्वीपमें आ गये हैं, अब तुम लोग जाकर उन्हें खोज निकालो।' प्रभुकी ऐसी आज्ञा पाकर भक्तगण उन अवधूत महापुरुषको खोजनेके लिये चले। पाठकोंको उत्सुकता होगी कि ये निमाईके सर्वस्व अवधूत-वेशमें कौन महापुरुष थे? असलमें ये अवधूत नित्यानन्दजी ही थे, जो गौर-भक्तोंमें 'निमाई के भाई निताई' के नामसे पुकारे जाते हैं। पाठकोंको इनका परिचय अगले अध्यायमें मिलेगा।

निमाईके भाई निताई

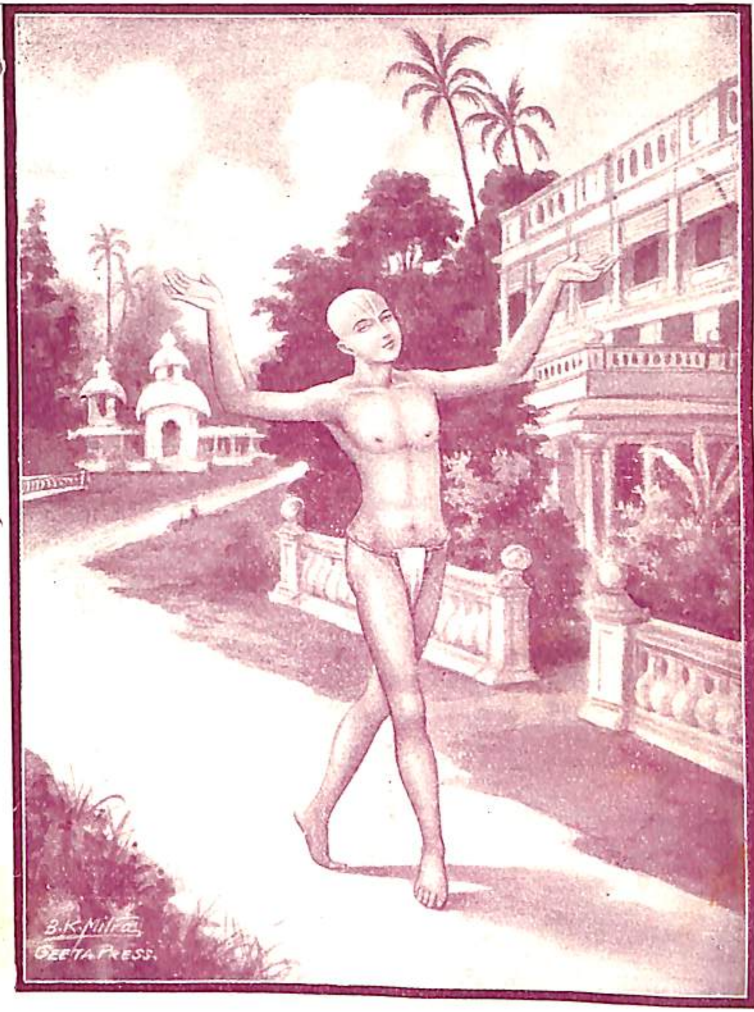
पुण्यतीर्थे कृतं येन तपः क्वाप्यतिदुष्करम्।
तस्य पुत्रो भवेद्वश्यः समृद्धो धार्मिकः सुधीः ॥*

(सु० र० भां० ६४ । ६)

विधिका विधान भी बड़ा ही विचित्र है, कभी-कभी एक ही माताके उदरसे उत्पन्न हुए दो भाई परस्परमें शत्रुभावसे बर्ताव करते हुए देखे गये हैं। वालि-सुग्रीव, रावण-विभीषण, कर्ण-अर्जुन आदि सहोदर भाई ही थे, किन्तु ये परस्परमें एक दूसरेकी मृत्युका कारण बने हैं। इसके विपरीत विभिन्न माता-पिताओंसे उत्पन्न होकर उनमें इतना अधिक प्रेम देखनेमें आता है, कि इतना किसी विरले सहोदर भाईमें भी सम्भवतया न हो। इन सब बातोंसे यही अनुमान किया जाता है, कि प्रत्येक प्राणी पूर्वजन्मके संस्कारोंसे आबद्ध है। जिसका जिसके साथ जितने जन्मोंका सम्बन्ध होगा, उसे उसके साथ उतने ही जन्मोंतक उस सम्बन्धको निभाना होगा। फिर चाहे उन दोनोंका जन्म एक ही परिवार अथवा देशमें हो या विभिन्न जाति-कुल अथवा ग्राममें हो। सम्बन्ध तो पूर्वकी ही भाँति चला आवेगा। महाप्रभु गौराङ्गदेवका जन्म गौड़देशके सुप्रसिद्ध नदिया नामक नगरमें हुआ। इनके पिता सिलहट-निवासी मिश्र ब्राह्मण थे, माता नवद्वीपके सुप्रसिद्ध पण्डित नीलाम्बर चक्रवर्तीकी पुत्री थी। ये स्वयं दो भाई थे। बड़े भाई विश्वरूप इन्हें पाँच वर्षका ही छोड़कर सदाके लिये चले गये। अपने माता-पिताके यही एकमात्र पुत्र थे, इसलिये चाहे इन्हें सबसे छोटा कह लो या सबसे बड़ा। इनके माताके दूसरी कोई जीवित सन्तान ही विद्यमान नहीं थी।

---

* जिन्होंने किसी पुण्य-तीर्थोंमें रहकर किसी प्रकारका घोर और दुष्कर तप किया है, उन्हींके यहां इन्द्रियोंको वशमें करनेवाला, समृद्धिशाली धार्मिक अथवा विद्वान् पुत्र उत्पन्न होता है। फिर चाहे वह तप किसी भी जन्ममें क्यों न किया हो। विना पूर्वजन्मके सुकृतोंसे गुणी अथवा धार्मिक पुत्र नहीं हो सकता।



निताई

श्रीनित्यानन्दका जन्म राढ़ देशमें हुआ। इनके माता-पिता राढ़ी-श्रेणीके ब्राह्मण थे, ये अपने सभी भाइयोंमें बड़े थे, किन्तु इनके छोटे भाइयोंका कोई नाम भी नहीं जानता कि वे कौन थे और कितने थे? ये गौराङ्गके बड़े भाईके नामसे प्रसिद्ध हुए और गौरभक्तोंमें संकीर्तनके समय गौरसे पहले निताईका ही नाम आता है।

भजो निताई गौर राधे श्याम। जपो हरे कृष्ण हरे राम॥

इस प्रकार इन दोनोंका पाञ्चभौतिक शरीर एकस्थानीय रजवीर्यका न होते हुए भी इनकी आत्मा एक ही तत्त्वकी बनी हुई थी। इनका शरीर पृथक्-पृथक् देशीय होनेपर भी इनका अन्तःकरण एक ही था, इसीलिये तो 'निमाई और निताई' दोनों भिन्न-भिन्न होते हुए भी अभिन्न समझे जाते हैं।

प्रभु नित्यानन्दजीका जन्म वीरभूमि जिलेके अन्तर्गत 'एकचाका' नामक एक छोटे से ग्राममें हुआ था, इनके ग्रामसे थोड़ी दूरीपर मोड़ेश्वर (मयूरेश्वर) नामका एक बहुत ही प्रसिद्ध शिवलिङ्ग था। आजकल वहाँ मयूरेश्वर नामका एक ग्राम भी बसा है, जो वीरभूमिका एक थाना है। नित्यानन्द प्रभुके पिताका नाम हाड़ाई ओझा और माताका नाम पद्मावती देवी था। ओझा-दम्पति विष्णुभक्त थे। बिना परमभागवत और सद्वैष्णव हुए उनके घरमें नित्यानन्द-जैसे महापुरुषका जन्म हो ही कैसे सकता था? उस समय साम्प्रदायिक सङ्कुचितताका इतना अधिक प्राबल्य नहीं था। प्रायः सभी सम्प्रदायोंके माननेवाले वैष्णव, स्मार्तमतानुसार ही अपनेको वैष्णव मानते थे। उपास्यदेव तो उनके विष्णु ही होते थे, विष्णुपूजनको ही प्रधानता देते हुए वे अन्य देवताओं-की भी समय-समयपर भक्तिभावसे पूजा किया करते थे। अपनेको श्रीवैष्णव-सम्प्रदायके अनुयायी कहनेवाले कुछ पुरुष जो आज शिव-पूजनकी तो बात ही क्या त्रिपुण्ड्र, बिल्वपत्र और रुद्राक्ष आदिके दर्शनोंसे भी घृणा करते हैं, पूर्वकालमें उनके भी सम्प्रदायमें कई शिवो-

पासक आचार्योंका वृत्तान्त मिलता है। अस्तु, हाड़ाई पण्डित वैष्णव होते हुए भी नित्यप्रति मोड़ेश्वरमें जाकर बड़े भक्ति-भावसे शिवजीकी पूजा किया करते थे। शिवलिङ्गकी तो सभी देवताओंकी भावनासे पूजा की जा सकती है।

हाड़ाई पण्डितके वंशमें सदासे पुरोहित-वृत्ति होती चली आयी थी। इसलिये ये भी थोड़ी-बहुत पुरोहिती कर लेते थे। घरमें खाने-पहननेकी कमी नहीं थी, किन्तु इनका घर सन्तानके बिना सूना था, इसलिये ओझा-दम्पतिको यही एक भारी दुःख था। एक दिन पद्मावतीदेवीको स्वप्नमें प्रतीत हुआ कि कोई महापुरुष कह रहे हैं—'देवि ! तुम्हारे गर्भसे एक ऐसे महापुरुषका जन्म होगा, जिनके द्वारा सम्पूर्ण देशमें श्रीकृष्ण-संकीर्तनका प्रचार होगा और वे जगन्मान्य महापुरुष समझे जायँगे।' प्रायः देखा गया है कि सात्त्विक प्रकृतिवाले पुरुषोंको शुद्ध भावसे शयन करनेपर रात्रिके अन्तमें जो स्वप्न दीखते हैं वे सच्चे ही होते हैं। भाग्यवती पद्मावतीदेवीका भी स्वप्न सच्चा हुआ। यथासमय उनके गर्भ रहा और शाके १३९५ में माघके शुक्लपक्षमें पद्मावतीदेवीके गर्भसे एक पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ। पुत्रका नाम रक्खा गया नित्यानन्द। आगे चलकर ये ही नित्यानन्द प्रभु अथवा 'निताई' के नामसे गौर भक्तोंमें बलरामके समान पूजे गये और प्रसिद्ध हुए।

बालक नित्यानन्द देखनेमें बड़े ही सुन्दर थे। इनका शरीर इकहरा और लावण्यमय था। चेहरेसे कान्ति प्रकट होती थी, गौर वर्ण था, आँखें बड़ी-बड़ी और स्वच्छ तथा सुहावनी थीं, इनकी बुद्धि बाल्यकालसे ही बड़ी तीक्ष्ण थी। पाँच वर्षकी अवस्थामें इनका विद्यारम्भ-संस्कार कराया गया। विद्यारम्भ-संस्कार होते ही ये खूब मनोयोगके साथ अध्ययन करने लगे। थोड़े ही समयमें इन्हें संस्कृत-साहित्य तथा व्याकरणका अच्छा ज्ञान हो गया। ये पाठशालाके समयमें तो पढ़ने जाते, शेष समयमें बालकोंके साथ खूब खेल-कूद करते। इनके खेल अन्य

साधारण प्राकृतिक बालकोंकी भाँति नहीं होते थे। ये बालकोंको साथ लेकर छोटी ही उम्रसे श्रीकृष्ण-लीलाओंका अभिनय किया करते। किसी बालकको श्रीकृष्ण बना देते, किसीको ग्वाल-बाल और आप स्वयं बलराम बन जाते। कभी गौ-चारण-लीला करते, कभी पुलिन-भोजनका अभिनय करते और कभी मथुरा-गमनकी लीला बालकोंसे कराते। इन्हे ये लीलाएँ किसने सिखा दीं और इन्होंने इनकी शिक्षा कहाँ पायी, इसका किसीको कुछ भी पता नहीं चलता। ये सभी शास्त्रीय लीला ही किया करते।

कभी-कभी आप रामायणकी लीलाओंको बालकोंसे कराते। किसीको राम बना देते, किसीको भरत, शत्रुघ्न और आप स्वयं लक्ष्मण बन जाते। शेष बालकोंको नौकर-चाकर तथा रीछ-वानर बनाकर भिन्न-भिन्न स्थानोंकी लीलाओंको करते। कभी तो वनगमनका अभिनय करते, कभी चित्रकूटका भाव दर्शाते और कभी सीता-हरणका अभिनय करते। एक दिन आप लक्ष्मण-मूर्च्छाकी लीला कर रहे थे। आप स्वयं लक्ष्मण बनकर मेघनादकी शक्तिसे बेहोश होकर पड़े थे। एक लड़केको हनुमान् बनकर सञ्जीवन लानेके लिये भेजा। वह लड़का छोटा ही था, इन्होंने जैसे बताया उसे भूल गया। ये बहुत देरतक बेहोश बने पड़े रहे। सच-मुच लोगोंने देखा कि इनकी नाड़ी बहुत ही धीरे-धीरे चल रही है। बहुत जगानेपर भी ये नहीं उठते हैं। इसकी सूचना इनके पिताको जाकर बालकोंने दी। पिता यह सुनकर दौड़े आये और उन्होंने भी आकर इन्हें जगाया, किन्तु तो भी नहीं जगे। तब तो पिताको बड़ा भारी दुःख हुआ। जो बालक इनके पास रामरूपसे बैठा रुदन कर रहा था, उसे याद आयी और उसने हनूमान् बननेवाले लड़केको बुलाया। जब हनूमान्जी सञ्जीवन लेकर आये और इन्हें वह सुँघायी गयी तब इनकी मूर्च्छा भंग हुई। इस प्रकार ये बाल्यकालसे ही भाँति-भाँतिकी शास्त्रीय लीलाओंका अभिनय किया करते थे।

पढ़ने-लिखनेमें ये अपने सभी साथियोंसे सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे। इनकी बुद्धि अत्यन्त ही तीक्ष्ण थी, प्रायः देखा गया है, पिताका ज्येष्ठ पुत्रके प्रति अत्यधिक प्रेम होता है और माताको सबसे छोटी सन्तान सबसे प्रिय होती है। फिर ये तो रूप और गुणोंमें भी अद्वितीय ही थे, इसी कारण हाड़ाई ओझा इन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते थे। वे जहाँ भी कहीं जाते, वहीं इन्हें साथ ले जाते । इनके बिना उन्हें कहीं जाना-आना या अकेले बैठकर खाना-पीना अच्छा ही नहीं लगता था। माता भी इनके मनोहर मुखकमलको देखकर सदा आनन्दसागरमें डुबकियाँ लगाती रहती थी। इस प्रकार इनकी अवस्था बारह-तेरह वर्ष-की हो गयी।

हाड़ाई पण्डित बड़े साधु-भक्त थे। प्रायः हमेशा ही कोई साधु-सन्त इनके घरपर बने रहते। ये भी यथाशक्ति जैसा घरमें रूखा-सूखा अन्न होता, उसके द्वारा श्रद्धापूर्वक आगत साधु-सन्तोंका सत्कार किया करते थे। एक दिन एक संन्यासी आकर हाड़ाई पण्डितके यहाँ अतिथि हुए। पण्डितजीने श्रद्धापूर्वक उनका आतिथ्य किया। पद्मावतीदेवीने शुद्धताके साथ अपने हाथोंसे दाल, चावल, पकौड़ी और कई प्रकारके साग बनाये। पण्डितजीने भक्ति-भावसे संन्यासीजीको भोजन कराया। इनके भक्तिभावको देखकर संन्यासी महात्मा बड़े प्रसन्न हुए और दो-चार दिन पण्डितजीके ही यहाँ ठहर गये। पण्डितजी भी उनकी यथाशक्ति सेवा-शुश्रूषा करते रहे। संन्यासी देखनेमें बड़े ही रूपवान् थे। उनके चेहरे-से एक प्रकारकी ज्योति हमेशा निकलती रहती थी। उनकी आकृतिसे गम्भीरता, सच्चरित्रता, पवित्रता, तेजस्विता और भगवद्भक्तिके भाव प्रकट होते थे। हाड़ाई पण्डितकी संन्यासीके प्रति बड़ी श्रद्धा हो गयी। इस अल्पवयस्के संन्यासीके प्रभावसे हाड़ाई पण्डित अत्यधिक प्रभावा-न्वित हो गये। एक दिन एकान्तमें संन्यासीजीने हाड़ाई पण्डितजीसे कहा—'पण्डितजी! हम आपसे एक भिक्षा माँगते हैं, दोगे?'

दीनता प्रकट करते हुए हाड़ाई पण्डितने कहा—'प्रभो ! इस दीन-हीन कंगालके पास है ही क्या ! इधर-उधरसे जो कुछ मिल जाता है, उसीसे निर्वाह होता है। आप देखते ही हैं, मेरे घरमें ऐसी कौन-सी चीज है, जिसे मैं आपको भिक्षामें दे सकूँ ? जो कुछ उपस्थित है उसमें ऐसी कोई भी चीज नहीं है, जो आपके लिये अदेय हो सके। यदि आप शरीर माँगें, तो मैं शरीरतक देनेको तैयार हूँ।'

संन्यासीजीने कुछ गम्भीरताके साथ कहा—'पण्डित ! तुम्हारे पास सब कुछ है, जो चीज मैं माँगना चाहता हूँ, वह यह पार्थिव धन नहीं है। वह तो बहुत ही मूल्यवान् वस्तु है, उसे देनेमें तुम जरूर आनाकानी करोगे, क्योंकि वह तुम्हें अत्यन्त ही प्रिय है।'

हाड़ाई पण्डितने कहा—'भगवन् ! मैं ऐसा सुनता आया हूँ कि प्राणीमात्रके लिये अपने प्राण ही सबसे अधिक प्रिय हैं, यदि आप मेरे प्राणोंकी भी भिक्षा माँगें, तो मैं उन्हें भी देनेके लिये तैयार हूँ।'

संन्यासीजीने कुछ देर ठहरकर कहा—'मैं तुम्हारे शरीरके भीतरके प्राणोंको नहीं चाहता, किन्तु बाहरके प्राणोंकी याचना करता हूँ। तुम अपने प्राणोंसे भी प्यारे ज्येष्ठ पुत्रको मुझे दे दो। मैं सभी तीर्थोंकी यात्रा करना चाहता हूँ। इसके लिये एक साथीकी मुझे आवश्यकता है। तुम्हारा यह पुत्र योग्य और होनहार है, इसका भी कल्याण होगा और मेरा भी काम चल जायगा।'

संन्यासीजीकी इस बातको सुनकर हाड़ाई पण्डित सुन्न पड़ गये। उन्हें स्वप्नमें भी ध्यान नहीं था, कि संन्यासी महाशय ऐसी विलक्षण वस्तुकी याचना करेंगे। भला, जिस पुत्रको पिता प्राणोंसे भी अधिक प्यार करता हो, जिसके बिना उसका जीवन असम्भव-सा ही हो जाने-वाला हो, उस पुत्रको यदि कोई सदाके लिये माँग बैठे तो उस पिताको कितना भारी दुःख होगा, इसका अनुमान तो कोई सहृदय स्नेही

पिता ही कर सकता है। अन्य पुरुषकी बुद्धिके बाहरकी बात है। महाराज दशरथसे विश्वामित्र-जैसे क्रोधी और तेजस्वी ब्रह्मर्षिने कुछ दिनोंके ही लिये श्रीरामचन्द्रजीको माँगा था। धर्ममें आस्था रखनेवाले महाराज यह जानते भी थे कि महर्षिकी इच्छा-पूर्ति न करनेपर मेरे राज्य तथा परिवारकी खैर नहीं है। उन अमित तेजस्वी ब्रह्मर्षिके तप और प्रभावसे भी वे पूर्णरीत्या परिचित थे, उन्हें इस बातका भी दृढ़ विश्वास था कि विश्वामित्रजीके साथमें रामचन्द्रजीका किसी प्रकार भी अनिष्ट नहीं हो सकता, फिर भी पुत्र-वात्सल्यके कारण विश्वामित्रजीकी इच्छा-पूर्ति करनेके लिये वे सहमत नहीं हुए और अत्यन्त दीनताके साथ ममतामें सने हुए वाक्योंसे कहने लगे—

देह प्रान तें प्रिय कछु नाहीं। सोउ मुनि देउँ निमिष एक माहीं॥
सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहिं बनइ गोसाईं॥

जब भगवान् वशिष्ठने उन्हें समझाया, तब कहीं जाकर उनका मोह भंग हुआ और वे महर्षिके इच्छानुसार श्रीरामचन्द्रजीको उनके साथ बनमें भेजनेको राजी हुए।

इधर हाड़ाई पण्डितको उनकी धर्मनिष्ठाने समझाया। उन्होंने सोचा—'पुत्रको देनेमें भी दुःख सहना होगा और न देनेमें भी अकल्याण है। संन्यासी शाप देकर मेरा सर्वस्व नाश कर सकते हैं। इसलिये चाहे जो हो पुत्रको इन्हें दे ही देना चाहिये।' यह सोचकर वे पद्मावतीदेवीके पास गये और उनसे जाकर सभी वृत्तान्त कहा। भला, जिसे नित्यानन्द-जैसे महापुरुषकी माता होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वह अपने धर्मसे विचलित कैसे हो सकती है? पुत्र-मोहके कारण वह कैसे अपने धर्मको छोड़ सकती है! सब कुछ सुनकर उसने दृढ़ताके साथ उत्तर दिया—'मैं तो आपके अधीन हूँ। जो आपकी इच्छा है, वही मेरी भी होगी, पुत्र-वियोगका दुःख असह्य होता है, किन्तु पतिव्रताओंके लिये पति-

आज्ञा-उल्लङ्घनका दुःख उससे भी अधिक असह्य होता है, इसलिये आपकी जैसी इच्छा हो करें। मैं सब प्रकारसे सहमत हूँ, जिससे धर्म-लोप न हो वही काम कीजिये।'

पत्नीकी अनुमति पाकर हाड़ाई पण्डितने अपने प्राणोंसे भी प्यारे प्रिय पुत्रको रोते-रोते संन्यासीके हाथोंमें सौंप दिया। धर्मनिष्ठ नित्यानन्दजीने भी इसमें कुछ भी आपत्ति नहीं की। वे प्रसन्नतापूर्वक संन्यासीके साथ हो लिये। उन्होंने पीछे फिरकर फिर अपने माता-पिता तथा कुटुम्बियोंकी ओर नहीं देखा।

संन्यासीजीके साथ नित्यानन्दजीने भारतवर्षके प्रायः सभी मुख्य-मुख्य तीर्थोंकी यात्रा की। वे गया, काशी, प्रयाग, मथुरा, द्वारका, बद्रीनाथ, केदारनाथ, गङ्गोत्तरी, यमुनोत्तरी, रङ्गनाथ, सेतुबन्ध रामेश्वर, जगन्नाथपुरी आदि तीर्थोंमें गये। इसी तीर्थयात्रा-भ्रमणमें इनका श्रीमन्माधवेन्द्रपुरीके साथ साक्षात्कार हुआ और उनके द्वारा श्रीकृष्ण-भक्ति प्राप्त करके ये प्रेममें विह्वल हो गये। उनसे विदा होकर ये व्रजमें आये। इनके साथके संन्यासी कहाँ रह गये, इसका कोई ठीक-ठीक पता नहीं चलता।

व्रजमें आनेपर इन्हें पता चला कि नवद्वीपमें गौरचन्द्र उदय होकर अपनी सुशीतल किरणोंसे दोनों ही पक्षोंमें निरन्तर मोहज्वालामें झुलसते हुए संसारी प्राणियोंको अपने श्रीकृष्ण संकीर्तनरूपी अमृतसे शीतलता प्रदान कर रहे हैं, इनका मन स्वतः ही श्रीगौरचन्द्रके आलोकमें पहुँचनेके लिये हिलोरें मारने लगा। अब ये अधिक समयतक व्रजमें नहीं रह सके और प्रयाग, काशी होते हुए सीधे नवद्वीपमें पहुँच गये।

नवद्वीपमें जाकर अवधूत नित्यानन्द सीधे महाप्रभुके समीप नहीं गये। वे पण्डित नन्दनाचार्यके घर जाकर ठहर गये। इधर प्रभुने तो अपनी दिव्यदृष्टिद्वारा पहले ही देख लिया था, कि नित्यानन्द नवद्वीप आ रहे हैं, इसीलिये उन्होंने खोज करनेके लिये भक्तोंको भेजा।

स्नेहाकर्षण

दर्शने स्पर्शने वापि श्रवणे भाषणेऽपि वा।
यत्र द्रवत्यन्तरङ्गं स स्नेह इति कथ्यते ॥*

(सु० र० भां० ६२। ११)

सचमुच प्रेममें कितना भारी आकर्षण है! आकाशमें चन्द्र भगवान्का इन्दु-मण्डल है और पृथ्वीपर सरित्पति सागर विराजमान हैं। जिस दिन शर्वरीनाथ अपनी सम्पूर्ण कलाओंसे आकाशमण्डलमें उदित होते हैं, उसी दिन अवनिपर मारे प्रेमके पयोनिधि उमड़ने लगता है। पद्माकर भगवान् भुवन-भास्करसे कितनी दूरपर रहते हैं, किन्तु उनके आकाशमें उदय होते ही वे खिल उठते हैं, उनका मुकुर-मन जो अबतक

---

* जिसके देखनेसे, जिसके शरीर-स्पर्शसे, जिसके गुणोंके श्रवणसे, जिसके किसी प्रकारके भी भाषणसे मनमें एक प्रकारकी गुदगुदी-सी होने लगे, हृदय आप-से-आप ही पिघलने लगे तो समझ लेना चाहिये कि वहां स्नेहका आविर्भाव हो चुका है। मनीषियोंने इस हृदयके पिघलनेकी प्रक्रियाको ही प्रेम बताया है।

सूर्यदेवके शोकमें संकुचित बना बैठा था, वह उनकी किरणोंका स्पर्श पाते ही आनन्दसे विकसित होकर लहराने लगता है। बादल न जाने कहाँ गरजते हैं, किन्तु पृथ्वीपर भ्रमण करनेवाले मयूर यहींसे उनकी सुमधुर ध्वनि सुनकर आनन्दमें उन्मत्त होकर चिल्लाने और नाचने लगते हैं, यदि प्रेममें इतना अधिक आकर्षण न होता तो सचमुच इस संसार-का अस्तित्व ही असम्भव हो जाता। संसारकी स्थिति ही एकमात्र प्रेमके ही ऊपर निर्भर है। प्रेम ही ईश्वर है और ईश्वर ही प्रेम है। प्रेम ही प्राणियोंको भाँति-भाँतिके नाच नचा रहा है। हृदयका विश्राम-स्थान प्रेम ही है। स्वच्छ हृदयमें जब प्रेमका सच्चा स्वरूप प्रकट होता है, तभी हृदयमें शान्ति होती है। हृदयमें प्रेमका प्राकट्य हो जानेपर कोई विषय अज्ञेय नहीं रह जाता, आगे-पीछेकी सभी बातें प्रत्यक्ष दीखने लगती हैं। फिर चर-अचरमें जहाँ भी प्रेम दृष्टिगोचर होता है वहीं हृदय आप-से-आप दौड़कर चला जाता है। अहा, जिन्होंने प्रेम-पीयूषका पान कर लिया है, जो प्रेमासवका पान करके पागल बन गये हैं, उन प्रेमियोंके पाद-पद्मोंमें पहुँचनेपर हृदयमें कितनी अधिक शान्ति उत्पन्न होती है, उसे तो वे ही प्रेमी भक्त अनुभव कर सकते हैं, जिन्हें प्रभुके प्रेम-प्रसाद-की पूर्णरीत्या प्राप्ति हो चुकी है।

नित्यानन्द प्रभु प्रेमके ही आकर्षणसे आकर्षित होकर नवद्वीप आये थे, इधर इस बातका पता प्रभुके हृदयको बेतारके तारद्वारा पहले ही लग चुका था। उन्होंने उसी दिन भक्तोंको नवद्वीपमें अवधूत नित्या-नन्दको खोजनेके लिये भेजा। नवद्वीप कोई छोटा-मोटा गाँव तो था ही नहीं, जिसमेंसे वे झट नित्यानन्दजीको खोज लाते, फिर नित्यानन्दजीसे कोई परिचित भी नहीं था, जो उन्हें देखते ही पहचान लेता। श्रीवास पण्डित तथा हरिदास दिनभर उन नवीन आये हुए महापुरुषकी खोज करते रहे, किन्तु उन्हें इनका कुछ भी पता नहीं चला। अन्तमें निराश

होकर वे प्रभुके पास लौट आये और आकर कहने लगे—'प्रभो ! हमने आपके आज्ञानुसार नवद्वीपके मुहल्ले-मुहल्लेमें जाकर उन महापुरुषकी खोज की, सब प्रकारके मनुष्योंके घरोंमें जाकर देखा, किन्तु हमें उनका कुछ भी पता नहीं चला। अब जैसी आज्ञा हो, वैसा ही करें; जहाँ बतावें वहीं जायँ।'

इन लोगोंके मुखसे इस बातको सुनकर प्रभु कुछ मुसकराये और सबकी ओर देखते हुए बोले—'मुझे रात्रिमें स्वप्न हुआ है कि वे महापुरुष जरूर यहाँ आ गये हैं और लोगोंसे मेरे घरका पता पूछ रहे हैं। अच्छा, एक काम करो, हम सभी लोग मिलकर उन्हें ढूँढ़ने चलें।' यह कहकर प्रभु उसी समय उठकर चल दिये। उनके पीछे गदाधर, श्रीवासादि भक्तगण भी हो लिये। प्रभु उठकर सीधे पं० नन्दनाचार्यके घरकी ओर चल पड़े। आचार्यके घर पहुँचनेपर भक्तोंने देखा कि एक दिव्यकान्तियुक्त महापुरुष अपने अमित तेजसे सम्पूर्ण घरको आलोकमय बनाये हुए पद्मासनसे विराजमान हैं। उनके मुखमण्डलकी तेजोमय किरणोंमें ग्रीष्मके प्रभाकरकी किरणोंकी भाँति प्रखर प्रचण्डता नहीं थी, किन्तु शरद्-चन्द्रकी किरणोंके समान शीतलता, शान्तता और मनोहरता मिली हुई थी। गौराङ्गने भक्तोंके सहित उन महापुरुषकी चरण-वन्दना की और एक ओर चुपचाप बैठ गये। किसीने किसीसे कुछ भी बातचीत नहीं की। नित्यानन्द प्रभु अनिमेष-दृष्टिसे गौराङ्गके मुख-चन्द्रकी ओर निहार रहे थे। भक्तोंने देखा, उनकी पलकोंका गिरना एकदम बंद हो गया है। सभी स्थिरभावसे मन्त्रमुग्धकी भाँति नित्यानन्द प्रभुकी ओर देख रहे थे। प्रभुने अपने मनमें सोचा—'भक्तोंको नित्यानन्दजीकी महिमा दिखानी चाहिये। इन्हें कोई प्रेमप्रसङ्ग सुनाना चाहिये, जिसके श्रवणसे इनके शरीरमें सात्त्विक भावोंका उद्दीपन हो। इनके भावोंके उदय होनेसे ही भक्त इनके मनोगत भावोंको समझ सकेंगे।' यह

सोचकर प्रभुने श्रीवास पण्डितको कोई स्तुति-श्लोक पढ़नेके लिये धीरेसे संकेत किया। प्रभुके मनोगत भावको समझकर श्रीवास इस श्लोकको पढ़ने लगे—

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान्वेणोरधरसुधया पूरयन्गोपवृन्दै-
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्तिः॥

(श्रीमद्भा० १०। २१। ५)

श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धके इस श्लोकमें कितना माधुर्य है, इसे तो संस्कृत-साहित्यानुरागी सहृदय रसिक भक्त ही अनुभव कर सकते हैं। इसका भाव शब्दोंमें व्यक्त किया ही नहीं जा सकता। व्रजमण्डलके भक्तगण तो इसी श्लोकको श्रीमद्भागवतके प्रचारमें मूल कारण बताते हैं। बात यह थी कि भगवान् शुकदेवजी तो बाल्यकालसे ही विरक्त थे, वे अपने पिता भगवान् व्यासदेवजीके पास न आकर घोर जंगलोंमें ही अवधूत-वेशमें विचरण करते थे। व्यासदेवने उसी समय श्रीमद्भागवतकी रचना की थी। उनकी इच्छा थी कि शुकदेवजी इसे पढ़ें, किन्तु वे जितनी देरमें गौ दुही जा सकती है, उतनी देरसे अधिक कहीं ठहरते ही नहीं थे। फिर अठारह हजार श्लोकवाली श्रीमद्भागवतको वे किस प्रकार पढ़ सकते थे, इसलिये व्यासदेवजीकी इच्छा मनकी मनहीमें रह गयी।

व्यासदेवजीके शिष्य उस घोर जंगलमें समिधा, कुश तथा फूल-फल लेने जाया करते थे, एक दिन उन्हें इस बीहड़ वनमें एक व्याघ्र मिला, व्याघ्रको देखकर वे लोग डर गये और आकर भगवान् व्यासदेवसे कहने लगे—'गुरुदेव! अब हम घोर जंगलमें न जाया करेंगे, आज हमें व्याघ्र मिला था, उसे देखकर हम सब-के-सब भयभीत हो गये।'

शिष्योंके मुखसे ऐसी बात सुनकर भगवान् व्यासदेव कुछ मुसकराये और थोड़ी देर सोचकर बोले—'व्याघ्रसे तुमलोगोंको भय ही किस बातका है ? हम तुम्हें एक ऐसा मन्त्र बता देंगे कि उसके प्रभावसे कोई भी हिंसक जन्तु तुम्हारे पास नहीं फटक सकेगा।' शिष्योंने गुरुदेवके वाक्यपर विश्वास किया और दूसरे दिन स्नान-सन्ध्यासे निवृत्त होकर हाथ जोड़े हुए वे गुरुके समीप आये और हिंसक जन्तु-निवारक मन्त्रकी जिज्ञासा की। भगवान् व्यासदेवने यही 'बर्हापीडं नटवरवपुः' वाला श्लोक बता दिया। शिष्योंने श्रद्धा-भक्तिसहित इसे कण्ठस्थ कर लिया और सभी साथ मिलकर जब-जब जंगलको जाते तब-तब इस श्लोकको मिलकर स्वरके साथ पढ़ते। उनके सुमधुर गानसे नीरव और निर्जन जंगल गूँजने लगता और चिरकालतक उसमें इस श्लोककी प्रतिध्वनि सुनायी पड़ती। एक दिन अवधूत-शिरोमणि श्रीशुकदेवजी घूमते-फिरते उधर आ निकले। उन्होंने जब इस श्लोकको सुना तो वे मुग्ध हो गये। शिष्योंसे जाकर पूछा—'तुमलोगोंने यह श्लोक कहाँ सीखा ?' शिष्योंने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'हमारे कुलपति भगवान् व्यासदेवने ही हमें इस मन्त्रका उपदेश दिया है। इसके प्रभावसे हिंसक जन्तु पास नहीं आ सकते।' भगवान् शुकदेवजी इस श्लोकके भीतर जो छिपा हुआ अनन्त और अमर बनानेवाला रस भरा हुआ था, उसे पान करके पागल-से हो गये। वे अपने अवधूतपनेके सभी आचरणोंको भुलाकर दौड़े-दौड़े भगवान् व्यासदेवके समीप पहुँचे और उस श्लोकको पढ़ानेकी प्रार्थना की। अपने विरक्त परमहंस पुत्रको इस भाँति प्रेममें पागल देखकर पिताकी प्रसन्नताका वारापार नहीं रहा। वे शुकदेवजीको एकान्तमें ले गये और धीरेसे कहने लगे—'बेटा ! मैंने इसी प्रकारके अठारह हजार श्लोकोंकी परमहंससंहिता ही बनायी है, तुम उसका अध्ययन करो।'

इन्होंने आग्रह करते हुए कहा—'नहीं पिता जी ! हमें तो बस, यही एक श्लोक बता दीजिये ।' भगवान् व्यासदेवने इन्हें वही श्लोक पढ़ा दिया और इन्होंने उसी समय उसे कण्ठस्थ कर लिया । अब तो ये घूमते हुए उसी श्लोकको सदा पढ़ने लगे । श्रीकृष्णप्रेम तो ऐसा अनोखा आसव है कि इसका जिसे तनिक भी चसका लग गया, फिर वह कभी त्याग नहीं सकता । मनुष्य यदि फिर उसे छोड़ना भी चाहे तो वह स्वयं उसे पकड़ लेता है । शुकदेवजीको भी उस मधुमय मनोज्ञ मदिराका चसका लग गया, फिर वे अपने अवधूतपनेके आग्रहको छोड़कर श्रीमद्भागवतके पठनमें संलग्न हो गये और पितासे उसे सांगोपांग पढ़कर ही वहाँसे उठे । तभी तो भगवान् व्यासदेवजी कहते हैं—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ॥

(श्रीमद्भागवत)

भगवान्के गुणोंमें यही तो एक बड़ी भारी विशेषता है कि जिनकी हृदय-ग्रन्थि खुल गयी है, जिनके सर्वसंशयोंका जड़मूलसे छेदन हो गया है और जिनके सम्पूर्ण कर्म नष्ट भी हो चुके हैं, ऐसे आत्माराम मुनि भी उन गुणोंमें अहैतुकी भक्ति करते हैं । क्यों न हो, वे तो रसराज हैं न ? 'प्रेमसिन्धुमें डूबे हुएको किसीने आजतक उछलते देखा ही नहीं ।'

जिस श्लोकका इतना भारी महत्त्व है उसका भाव भी सुन लीजिये । गौएँ चराने मेरे नन्हें-से गोपाल वृन्दावनकी ओर जा रहे हैं । साथमें वे ही पुराने ग्वाल-बाल हैं, उन्हें आज न जाने क्या सूझी है, कि वे कनुआकी कमनीय कीर्तिका निरन्तर बखान करते हुए जा रहे हैं । सभी अपने कोमल कण्ठोंसे श्रीकृष्णका यशोगान कर रहे हैं । इधर ये अपनी

मुरलीकी तानमें ही मस्त हैं, इन्हें दीन-दुनिया किसीका भी पता नहीं। अहा ! उस समयकी इनकी छबि कितनी सुन्दर है—

'सम्पूर्ण शरीरकी गठन एक सुन्दर नटके समान बड़ी ही मनोहर और चित्ताकर्षक है। सिरपर मोरमुकुट विराजमान है। कानोंमें बड़े-बड़े कनेरके पुष्प लगा रखे हैं, कनकके समान जिसकी द्युति है, ऐसा पीताम्बर सुन्दर शरीरपर फहरा रहा है, गलेमें वैजयन्तीमाला पड़ी हुई है। कुछ आँखोंकी भृकुटियोंको चढ़ाये हुए, टेढ़े होकर वंशीके छिद्रोंको अपने अधरामृतसे पूर्ण करनेमें तत्पर हैं। उन छिद्रोंमेंसे विश्वमोहिनी ध्वनि सुनायी पड़ रही है। पीछे-पीछे ग्वालबाल यशोदानन्दनका यशोगान करते हुए जा रहे हैं, इस प्रकारके मुरलीमनोहर अपनी पद-रजसे वृन्दावनकी भूमिको पावन बनाते हुए व्रजमें प्रवेश कर रहे हैं।'

जगत्‌को उन्मादी बनानेवाले इस भावको सुनकर जब अवधूतशिरोमणि शुकदेवजी भी प्रेममें पागल बन गये, तब फिर भला हमारे सहृदय अवधूत नित्यानन्द अपनी प्रकृतिमें कैसे रह सकते थे ? श्रीवास पण्डितके मुखसे इस श्लोकको सुनते ही वे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। इनके मूर्छित होते ही प्रभुने श्रीवाससे फिर श्लोक पढ़नेको कहा। श्रीवासके दुबारा श्लोक पढ़नेपर नित्यानन्द प्रभु जोरोंसे हुंकार देने लगे। उनके दोनों नेत्रोंसे अविरल अश्रु बह रहे थे, शरीरके सभी रोम बिलकुल खड़े हो गये। पसीनेसे शरीर भीग गया। वे प्रेममें उन्मादीकी भाँति नृत्य करने लगे। प्रभुने नित्यानन्दको गलेसे लगा लिया और दोनों महापुरुष परस्परमें एक दूसरेको आलिङ्गन करने लगे। नित्यानन्द प्रेममें बेसुध-से प्रतीत होते थे, उनके पैर कहीं-के-कहीं पड़ते थे, जोरसे 'हा कृष्ण ! हा कृष्ण !' कहकर वे रुदन कर रहे थे। रुदन करते-करते बीचमें जोरोंकी हुंकार करते। इनकी हुंकारको सुनकर उपस्थित भक्त

भी थर-थर काँपने लगे। सभी काठकी पुतलीकी भाँति स्थिरभावसे चुपचाप खड़े थे। इसी बीच बेहोश होकर निताई अपने भाई निमाईकी गोदमें गिर पड़े। प्रभुने नित्यानन्दके मस्तकपर अपना कोमल करकमल फिराया। उसके स्पर्शमात्रसे नित्यानन्दजीको परमानन्द प्रतीत हुआ, वे कुछ-कुछ प्रकृतिस्थ हुए। नित्यानन्द-प्रभुको प्रकृतिस्थ देखकर प्रभु दीनभावसे कहने लगे—'श्रीपाद! आज हम सभी लोग आपकी पद-धूलिको मस्तकपर चढ़ाकर कृतकृत्य हुए। आपने अपने दर्शनसे हमें बड़भागी बना दिया। प्रभो! आप-जैसे अवधूतोंके दर्शन भला, हमारे-जैसे संसारी पुरुषोंको हो ही कैसे सकते हैं? हम तो गृहरूपी कूपके मण्डूक हैं, इसे छोड़कर कहीं जा ही नहीं सकते। आप-जैसे महापुरुष हमारे ऊपर अहैतुकी कृपा करके स्वयं ही घर बैठे हमें दर्शन देने आ जाते हैं, इससे बढ़कर हमारा और क्या सौभाग्य हो सकता है?'

प्रभुकी इस प्रेममय वाणीको सुनकर अधीरताके साथ निताईने कहा—'हमने श्रीकृष्णके दर्शनके निमित्त देश-विदेशोंकी यात्रा की, सभी मुख्य-मुख्य पुण्यस्थानों और तीर्थोंमें गये। सभी बड़े-बड़े देवालयोंको देखा, जो-जो श्रेष्ठ और सात्त्विक देवस्थान समझे जाते हैं, उन सबके दर्शन किये; किन्तु वहाँ केवल स्थानोंके ही दर्शन हुए। उन स्थानोंके सिंहासनोंको हमने खाली ही पाया। भक्तोंसे हमने पूछा—इन स्थानोंसे भगवान् कहाँ चले गये? मेरे इस प्रश्नको सुनकर बहुत-से तो चकित रह गये, बहुत-से चुप हो गये, बहुतोंने मुझे पागल समझा। मेरे बहुत तलाश करनेपर एक भक्तने पता दिया कि भगवान् नवद्वीपमें प्रकट होकर श्रीकृष्ण-संकीर्तनका प्रचार कर रहे हैं। तुम उन्हींके शरणमें जाओ, तभी तुम्हें शान्तिकी प्राप्ति हो सकेगी। इसीलिये मैं नवद्वीप आया हूँ। दयालु श्रीकृष्णने कृपा करके स्वयं ही मुझे दर्शन दिये। अब वे मुझे अपनी शरणमें लेते हैं या नहीं इस बातको वे जानें।' इतना कहकर फिर नित्यानन्द प्रभु

गौराङ्गकी गोदीमें लुढ़क पड़े। मानो उन्होंने अपना सर्वस्व गौराङ्गको अर्पण कर दिया हो।

प्रभुने धीरे-धीरे इन्हें उठाया और नम्रताके साथ कहने लगे—'आप स्वयं ईश्वर हैं, आपके शरीरमें सभी ईश्वरताके चिह्न प्रकट होते हैं, मुझे भुलानेके लिये आप मेरी ऐसी स्तुति कर रहे हैं। ये सब गुण तो आपमें ही विद्यमान हैं, हम तो साधारण जीव हैं। आपकी कृपाके भिखारी हैं।'

इन बातोंको भक्त मन्त्रमुग्धकी भाँति चुपचाप पासमें बैठे हुए आश्चर्यके साथ सुन रहे थे। मुरारी गुप्तने धीरेसे श्रीवाससे पूछा—'इन दोनोंकी बातोंसे पता ही नहीं चलता इनमें कौन बड़ा है और कौन छोटा ?' धीरे-ही-धीरे श्रीवास पण्डितने कहा—'किसीने शिवजीसे जाकर पूछा कि आपके पिता कौन हैं ?' इसपर शिवजीने उत्तर दिया—'विष्णु भगवान्।' उसीने जाकर विष्णु भगवान्से पूछा कि—'आपके पिता कौन हैं ?' हँसते हुए विष्णुजीने कहा—'देवाधिदेव श्रीमहादेवजी ही हमारे पिता हैं।' इस प्रकार इनकी लीला ये ही समझ सकते हैं, दूसरा कोई क्या समझे ?

नन्दनाचार्य इन सभी लीलाओंको आश्चर्यके साथ देख रहे थे, उनका घर प्रेमका सागर बना हुआ था, जिसमें प्रेमकी हिलोरें मार रही थीं। करुणक्रन्दन और रुदनकी हृदयको पिघलानेवाली ध्वनियोंसे उनका घर गूँज रहा था। दोनों ही महापुरुष चुपचाप पश्यन्ती भाषामें न जाने क्या-क्या बातें कर रहे थे, इसका मर्म वे ही दोनों समझ सकते थे। वैखरी वाणीको बोलनेवाले अन्य साधारण लोगोंकी बुद्धिके बाहरकी ये बातें थीं।

व्यासपूजा

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥*

(गीता ४ । ११)

प्रेमका पथ कितना व्यापक है, उसमें सन्देह, छल, वञ्चना, बनावटके लिये तो स्थान ही नहीं। प्रेममें पात्रापात्रका भेदभाव नहीं। उसमें जाति, वर्ण, कुल, गोत्र तथा सजीव-निर्जीवका विचार नहीं किया जाता, इसीलिये प्रायः लोगोंके मुखोंसे सुना जाता है कि 'प्रेम अन्धा होता है।' ऐसा कहनेवाले स्वयं भ्रममें हैं। प्रेम अन्धा नहीं है, असलमें प्रेमके अतिरिक्त अन्य सभी अन्धे हैं। प्रेम ही एक ऐसा अमोघ बाण

---

* श्रीभगवान् अर्जुनके प्रति उपदेश करते हुए कहते हैं–'हे अर्जुन ! जो भक्त मुझे जिस भावसे भजता है, मैं भी उसका उसी भावसे भजन करता हूँ। किसी भी रास्ते क्यों न आओ, अन्तमें सब घूम-फिरकर मेरे ही पास आ जाते हैं (क्योंकि सभी प्राणियोंका एकमात्र प्राप्तिस्थान मैं ही हूँ)।'

है कि जिसका लक्ष्य कभी व्यर्थ नहीं होता, उसका निशान सदा ही ठीक ही लक्ष्यपर बैठता है। 'अपना' कहीं भी छिपा हो, प्रेम उसे वहींसे खोज निकालेगा। इसीलिये तो कहा है—

'तिनका तिनकेसे मिला, तिनका तिनके पास।'

विशाल हिन्दू-धर्मने प्रेमकी सर्वव्यापकताको ही लक्ष्य करके तो उपासनाकी कोई एक ही पद्धति निश्चय नहीं की है। तुम्हें जिससे प्रेम हो, तुम्हारा अन्तःकरण जिसे स्वीकार करता हो उसीकी भक्तिभावसे पूजा-अर्चा करो और उसीका निरन्तर ध्यान करते रहो, तुम अन्तमें प्रेमतक पहुँच जाओगे। अपना उपास्य कोई एक निश्चय कर लो। अपने हृदयमें किसी भी एक प्रियको बैठा लो। बस, तुम्हारा बेड़ा पार है। पत्नी पति में ही भगवत्-भावना करके उसका ध्यान करे, शिष्य गुरुको ही साक्षात् परब्रह्मका साकार स्वरूप मानकर उसकी वन्दना करे, इन सभीका फल अन्तमें एक ही होगा, सभी अपने अन्तिम अभीष्टतक पहुँच सकेंगे। सभीको अपनी-अपनी भावनाके अनुसार प्रभु-पद-प्राप्ति अथवा मुक्ति मिलेगी। सभीके दुःखोंका अत्यन्ताभाव हो जायगा। यह तो सचेतन साकार वस्तुके प्रति प्रेम करनेकी पद्धति है, हिन्दू-धर्ममें तो यहाँतक माना गया है कि पत्थर, मिट्टी, धातु अथवा किसी भी प्रकारकी मूर्ति बनाकर उसीमें ईश्वर-बुद्धिसे पूजन करोगे तो तुम्हें शुद्ध—विशुद्ध प्रेमकी ही प्राप्ति होगी। किन्तु इसमें दम्भ या बनावट न होनी चाहिये। अपने हृदयको टटोल लो कि इसके प्रति हमारा पूर्ण अनुराग है या नहीं, यदि किसीके भी प्रति तुम्हारा पूर्ण प्रेम हो चुका तो बस, तुम्हारा कल्याण ही है, तुम्हारा सर्वस्व तो वही है।

नित्यानन्द प्रभु बारह-तेरह वर्षकी अल्प वयसमें ही घर छोड़कर चले आये थे। लगभग बीस वर्षोंतक ये तीर्थोंमें भ्रमण करते रहे,

इनके साथी संन्यासीजी इन्हें छोड़कर कहाँ चले गये, इसका कुछ भी पता नहीं चलता, किन्तु इतना अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है कि उन महात्माके लिये इनके हृदयमें कोई विशेष स्थान न बन सका। उनमें इनका गुरुभाव नहीं हुआ। बीस वर्षोंतक इधर-उधर घूमते रहे, किन्तु जिस प्रेमीके लिये इनका हृदय छटपटा रहा था, वह प्रेमी इन्हें कहीं नहीं मिला। महाप्रभु गौराङ्गका नाम सुनते ही इनके हृदय-सागरमें हिलोरें-सी उठने लगीं। गौरके दर्शनोंके लिये मन व्याकुल हो उठा। इसीलिये ये नवद्वीपकी ओर चल पड़े। आज नन्दनाचार्यके घर गौरने स्वयं आकर इन्हें दर्शन दिये। इनके दर्शन-मात्रसे ही इनकी चिरकालकी मनःकामना पूर्ण हो गयी। जिसके लिये ये व्याकुल होकर देश-विदेशोंमें मारे-मारे फिर रहे थे, वह वस्तु आज स्वयं ही इन्हें प्राप्त हो गयी। ये स्वयं संन्यासी थे, गौराङ्ग अभीतक गृहस्थीमें ही थे। गौराङ्गसे ये अवस्थामें भी दस-ग्यारह वर्ष बड़े थे, किन्तु प्रेममें तो छोटे-बड़े या उच्च-नीचका विचार होता ही नहीं, इन्होंने सर्वतोभावेन गौराङ्गको आत्मसमर्पण कर दिया। गौराङ्गने भी इन्हें अपना बड़ा भाई समझकर स्वीकार किया।

नन्दनाचार्यके घरसे नित्यानन्दजीको साथ लेकर गौराङ्ग भक्तों-सहित श्रीवास पण्डितके घर पहुँचे। वहाँ पहुँचते ही संकीर्तन आरम्भ हो गया। सभी भक्त नित्यानन्दजीके आगमनके उल्लासमें नूतन उत्साह-के साथ भावावेशमें आकर जोरोंसे कीर्तन करने लगे। भक्त प्रेममें विह्वल होकर कभी तो नाचते, कभी गाते और कभी जोरोंसे 'हरि बोल' 'हरि बोल' की तुमुल ध्वनि करते। आजके कीर्तनमें बड़ा ही आनन्द आने लगा, मानो सभी भक्त प्रेममें बेसुध होकर अपने आपेको बिल-कुल भूल गये हों। अबतक गौराङ्ग शान्त थे, अब उनसे भी न रहा गया, वे भी भक्तोंके साथ मिलकर शरीरकी सुधि भुलाकर जोरोंसे हरि-

ध्वनि करने लगे। महाप्रभु नित्यानन्दजीके दोनों हाथोंको पकड़कर आनन्दसे नृत्य कर रहे थे। नित्यानन्दजी भी काठकी पुतलीकी भाँति महाप्रभुके इशारेके साथ नाच रहे थे। अहा! उस समयकी छविका वर्णन कौन कर सकता है? भक्तवृन्द मन्त्रमुग्धकी भाँति इन दोनों महापुरुषोंका नृत्य देख रहे थे। पखावजवाला पखावज न बजा सका। जो भक्त मजीरे बजा रहे थे उनके हाथोंमेंसे स्वतः ही मजीरे गिर पड़े। सभी वाद्योंका बजना बंद हो गया। भक्त जड-मूर्तिकी भाँति चुपचाप खड़े निमाई और निताईके नृत्यके माधुर्यका निरन्तर भावसे पान कर रहे थे। नृत्य करते-करते निमाईने निताईका आलिङ्गन किया। आलिङ्गन पाते ही निताई बेहोश होकर पृथ्वीपर गिर पड़े, साथ ही निमाई भी चेतनाशून्य-से बन गये।

क्षणभरके पश्चात् महाप्रभु जोरोंके साथ उठकर खड़े हो गये और जल्दीसे भगवान्‌के आसनपर जा बैठे। अब उनके शरीरमें बलरामजीका-सा आवेश प्रतीत होने लगा। उसी भावावेशमें वे 'वारुणी' 'वारुणी' कहकर जोरोंसे चिल्लाने लगे। हाथ जोड़े हुए श्रीवास पण्डितने कहा—'प्रभो! जिस 'वारुणी' की आप जिज्ञासा कर रहे हैं, वह तो आपके ही पास है। आप जिसके ऊपर कृपा करेंगे वही उस वारुणीका पान करके पागल बन सकेगा।'

प्रभुके भावावेशको कम करनेके निमित्त एक भक्तने शीशीमें गङ्गा-जल भरकर प्रभुको दिया। गङ्गाजल पान करके प्रभु कुछ-कुछ प्रकृतिस्थ हुए और फिर नित्यानन्दजीको भी अपने हाथोंसे उठाया।

इस प्रकार सभी भक्तोंने उस दिन संकीर्तनमें बड़े ही आनन्दका अनुभव किया। इन दोनों भाइयोंके नृत्यका सुख सभी भक्तोंने खूब ही लूटा। श्रीवास पण्डितके घर ही नित्यानन्द-प्रभुका निवास-स्थान स्थिर

किया गया। प्रभु अपने साथ ही निताईको अपने घर लिवा ले गये और शचीमातासे जाकर कहा—'अम्मा! देख, यह तेरा विश्वरूप लौट आया। तू उनके लिये बहुत रोया करती थी।' माताने उस दिन सच-मुच ही नित्यानन्द प्रभुमें विश्वरूपके ही रूपका अनुभव किया और उन्हें अन्ततक उसी भावसे प्यार करती रहीं। वे निताई और निमाई दोनों-को ही समान रूपसे पुत्रकी भाँति प्यार करती थीं।

एक दिन महाप्रभुने नित्यानन्दजीका प्रेमसे हाथ पकड़े हुए पूछा—'श्रीपाद! कल गुरुपूर्णिमा है, व्यासपूजनके निमित्त कौन-सा स्थान उपयुक्त होगा?'

नित्यानन्दप्रभुने श्रीवास पण्डितके पूजा-गृहकी ओर संकेत करते हुए कहा—'क्या इस स्थानमें व्यासपूजन नहीं हो सकता?'

हँसते हुए गौराङ्गने कहा—'हाँ, ठीक तो है, आचार्य तो श्रीवास पण्डित ही हैं, इन्हींका तो पूजन करना है। बस ठीक रहा, अब पण्डित-जी ही सब सामग्री जुटावेंगे। इन्हींपर पूजाके उत्सवका सम्पूर्ण भार रहा।'

प्रसन्नता प्रकट करते हुए पण्डित श्रीवासजीने कहा—'भारकी क्या बात है, पूजनकी सामग्री घरमें उपस्थित है। केला, आम्र, पल्लव, पुष्प, फल और समिधादि आवश्यकीय वस्तुएँ आज ही मँगवा ली जायँगी। इनके अतिरिक्त और जिन वस्तुओंकी आवश्यकता हो उन्हें आप बता दें।

प्रभुने कहा—'अब हम क्या बतावें, आप स्वयं आचार्य हैं, सब समझ-बूझकर जुटा लीजियेगा। चलिये, बहुत समय व्यतीत हो गया, अब गङ्गास्नान कर आवें।'

इतना सुनते ही श्रीवास, मुरारी, गदाधर आदि सभी भक्त निमाई और निताईके सहित गङ्गास्नान के निमित्त चल दिये। नित्यानन्दजीका

स्वभाव बिलकुल छोटे बालकोंका-सा था, वे कुदक-कुदककर रास्तेमें चलते। गङ्गाजीमें घुस गये तो फिर निकलना सीखे ही नहीं, घंटों जल-में ही गोते लगाते रहते। कभी उलटे होकर बहुत दूरतक प्रवाहमें ही बहते चले जाते। सब भक्तोंके सहित वे भी स्नान करने लगे। सहसा उसी समय एक नाक इन्हें जलमें दिखायी दिया। जल्दीसे आप उसे ही पकड़नेके लिये दौड़े। यह देखकर श्रीवास पण्डित हाय-हाय करके चिल्लाने लगे, किन्तु ये किसीकी कब सुननेवाले थे, आगे बढ़े ही चले जाते थे। जब श्रीवासके कहनेसे स्वयं गौराङ्गने इन्हें आवाज दी, तब कहीं जाकर ये लौटे। इनके सभी काम अजीब ही होते थे, इससे पहली ही रात्रिमें इन्होंने न जाने क्या सोचकर अपने दण्ड-कमण्डलु आदि सभीको तोड़-फोड़ डाला। प्रभुने इसका कारण पूछा तो ये चुप हो गये। तब प्रभुने उन्हें बड़े आदरसे बीन-बीनकर गङ्गाजीमें प्रवाहित कर दिया।

व्यासपूर्णिमाके दिन सभी भक्त स्नान, सन्ध्या-वन्दन करके श्रीवास पण्डितके घर आये। पण्डितजीने आज अपने पूजा-गृहको खूब सजा रखा था। स्थान-स्थानपर बन्दनवार बँधे हुए थे। द्वारपर कदली-स्तम्भ बड़े ही भले मालूम पड़ते थे। सम्पूर्ण घर गौके गोबरसे लिपा हुआ था, उसपर एक सुन्दर बिछौना बिछा था, सभी भक्त आकर व्यासपीठके सम्मुख बैठ गये। एक ऊँचे स्थानपर छोटी-सी चौकी रखकर उसपर व्यासपीठ बनायी हुई थी, व्यासजीकी सुन्दर मूर्ति उसपर विराजमान थी। सामने पूजाकी सभी सामग्री रखी थी, कई थालोंमें सुन्दर अमनिया किये हुए फल रखे थे, एक ओर घरकी बनी हुई मिठाइयाँ रखी थीं। एक थालीमें अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, पूगीफल, पुष्पमाला तथा अन्य सभी पूजनकी सामग्री सुशोभित हो रही थी। पीठके दायीं ओर आचार्यका आसन बिछा हुआ था। भक्तोंके आग्रह करनेपर पूजाकी पद्धतिको हाथमें लिये हुए श्रीवास

पण्डित आचार्यके आसनपर विराजमान हुए। भक्तोंने विधिवत् व्यासजीका पूजन किया। अब नित्यानन्दप्रभुकी बारी आयी। वे श्रीवासजीके कहनेसे पूजा करने लगे। श्रीवास पण्डितने एक सुन्दर-सी माला नित्यानन्दजीके हाथमें देते हुए कहा—'श्रीपाद! इसे व्यासजीको पहनाइये।' श्रीवासजीके इतना कहनेपर भी नित्यानन्दजीने माला व्यासदेवजीको नहीं पहनायी, वे उसे हाथमें ही लिये हुए चुपचाप खड़े रहे। इसपर फिर श्रीवास पण्डितने जरा जोरसे कहा—'श्रीपाद! आप खड़े क्यों हैं, माला पहनाते क्यों नहीं?' जिस प्रकार कोई पत्थरकी मूर्ति खड़ी रहती है उसी प्रकार माला हाथमें लिये नित्यानन्दजी ज्यों-के-त्यों ही खड़े रहे, मानो उन्होंने कुछ सुना ही नहीं। तब तो श्रीवास पण्डित घबड़ाये, उन्होंने समझा नित्यानन्दजी हमारी बात तो मानेंगे नहीं, यदि प्रभु आकर इन्हें समझावेंगे तो जरूर मान जायँगे। प्रभु उस समय दूसरी ओर बैठे हुए थे, श्रीवासजीने प्रभुको बुलाकर कहा—'प्रभो! नित्यानन्दजी व्यासदेवको माला नहीं पहनाते, आप इनसे कह दीजिये माला पहना दें, देरी हो रही है।'

यह सुनकर प्रभुने कुछ आज्ञाके-से स्वरमें नित्यानन्दजीसे कहा—'श्रीपाद! व्यासदेवजीको माला पहनाते क्यों नहीं? देखो, देर हो रही है, सभी भक्त तुम्हारी ही प्रतीक्षामें बैठे हैं, जल्दीसे पूजन समाप्त करो, फिर संकीर्तन होगा।'

प्रभुकी इस बातको सुनकर निताई नींदसे जागे हुए पुरुषकी भाँति अपने चारों ओर देखने लगे। मानो वे किसी विशेष वस्तुका अन्वेषण कर रहे हों। इधर-उधर देखकर उन्होंने अपने हाथकी माला व्यासदेवजीको तो पहनायी नहीं, जल्दीसे गौराङ्गके सिरपर चढ़ा दी। प्रभुके लम्बे-लम्बे घुँघराले बालोंमें उलझकर वह माला बड़ी ही भली मालूम पड़ने लगी। सभी भक्त आनन्दमें बेसुध-से हो गये। प्रभु कुछ लज्जित-

से हो गये। नित्यानन्दजी प्रेममें विभोर होनेके कारण मूर्छित होकर गिर पड़े। अहा, प्रेम हो तो ऐसा हो, अपने प्रियपात्रमें ही सभी देवी-देवता और विश्वका दर्शन हो जाय। गौराङ्गको ही सर्वस्व समझनेवाले निताईका उनके प्रति ऐसा ही भाव था। उनका मनोगत भाव था—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गौराङ्ग ही उनके सर्वस्व थे। उनकी भावनाके अनुसार उन्हें प्रत्यक्ष फल भी प्राप्त हो गया। उनके सामनेसे गौराङ्गकी यह नित्यकी मानुषिक मूर्ति विलुप्त हो गयी। अब उन्हें गौराङ्गकी षड्भुजी मूर्तिका दर्शन होने लगा। उन्होंने देखा, गौराङ्गके मुखकी कान्ति कोटि सूर्यों-की प्रभासे भी बढ़कर है। उनके चार हाथोंमें शंख, चक्र, गदा और पद्म विराजमान हैं, शेष दो हाथोंमें वे हल-मूसलको धारण किये हुए हैं। नित्यानन्दजी प्रभुके इस अद्भुत रूपके दर्शनोंसे अपनेको कृतकृत्य मानने लगे। उनके नेत्र उन दर्शनोंसे तृप्त ही नहीं होते थे। उनके दोनों नेत्र बिलकुल फटे-के-फटे ही रह गये, पलक गिरना एकदम बन्द हो गया। नेत्रोंकी दोनों कोरोंसे अश्रुओंकी धारा बह रही थी। शरीर चेतनाशून्य था। भक्तोंने देखा उनकी साँस चल नहीं रही है, उनका शरीर मृतक पुरुषकी भाँति अकड़ा हुआ पड़ा था, केवल मुखकी अपूर्व ज्योतिको देखकर और नेत्रोंसे निकलते हुए अश्रुओंसे ही यह अनुमान लगाया जा सकता था कि वे जीवित हैं। भक्तोंको इनकी ऐसी दशा देखकर बड़ा भय हुआ। श्रीवास आदि सभी भक्तोंने भाँति-भाँतिकी चेष्टाओं द्वारा उन्हें सचेत करना चाहा, किन्तु उन्हें बिलकुल भी होश नहीं हुआ। प्रभुने जब देखा कि नित्यानन्दजी किसी भी प्रकार नहीं उठते, तब उनके शरीरपर अपना कोमल कर फेरते हुए प्रभु अत्यन्त ही प्रेमके साथ कहने लगे—'श्रीपाद! अब उठिये। जिस कार्यके निमित्त

आपने इस शरीरको धारण किया है, अब उस कार्यके प्रचारका समय सन्निकट आ गया है। उठिये और अपनी अहैतुकी कृपाके द्वारा जीवोंका उद्धार कीजिये। सभी लोग आपकी कृपाके भिखारी बने बैठे हैं, जिसका आप उद्धार करना चाहें उसका उद्धार कीजिये। श्रीहरिके सुमधुर नामोंका वितरण कीजिये। यदि आप ही जीवोंके ऊपर कृपा करके भगवन्नामका वितरण न करेंगे तो पापियोंका उद्धार कैसे होगा?'

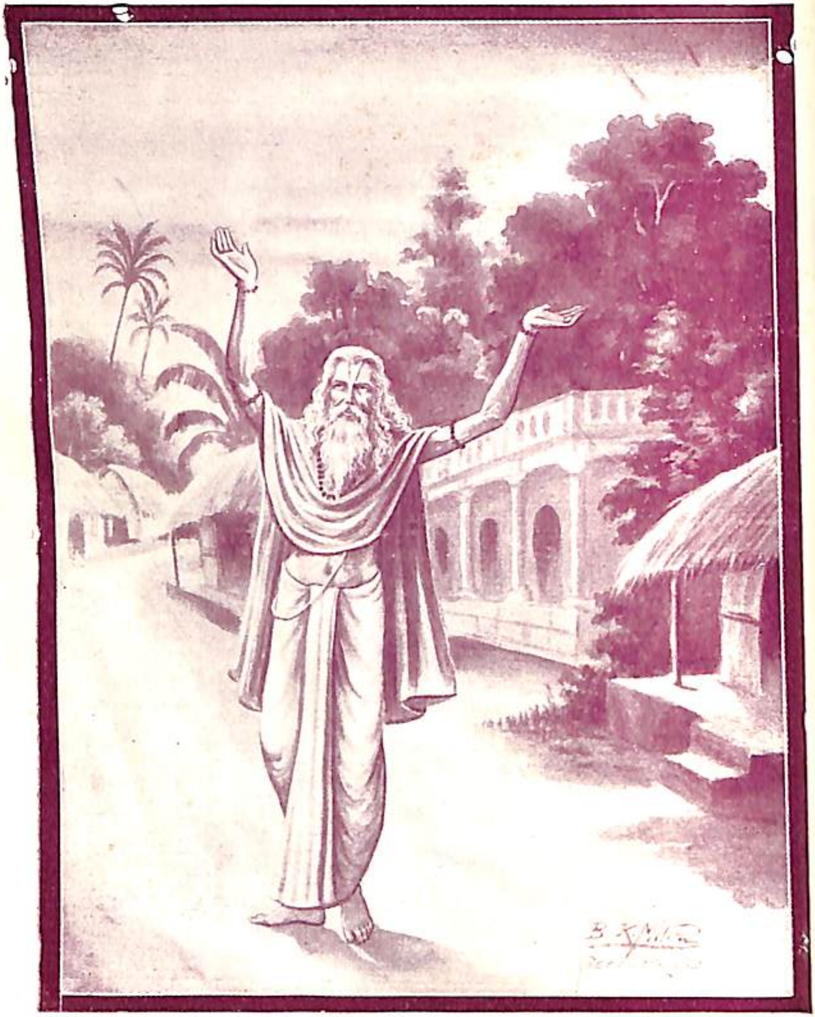
प्रभुके कोमल करस्पर्शसे निताईकी मूर्छा भङ्ग हुई, वे अब कुछ-कुछ प्रकृतिस्थ हुए। नित्यानन्दजीको होशमें देखकर प्रभु भक्तोंसे कहने लगे–'व्यासपूजा तो हो चुकी, अब सभी मिलकर एक बार सुमधुर स्वरसे श्रीकृष्ण-संकीर्तन और कर लो।' प्रभुकी आज्ञा पाते ही पखावज बजने लगी, सभी भक्त हाथोंमें मजीरा लेकर बड़े ही प्रेमसे कीर्तन करने लगे। सभी प्रेममें विह्वल होकर एक साथ—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस सुमधुर संकीर्तनको करने लगे। संकीर्तनकी सुमधुर ध्वनिसे श्रीवास पण्डितका घर गूँजने लगा। संकीर्तनकी आवाज सुनकर बहुत-से दर्शनार्थी द्वारपर आकर एकत्रित हो गये, किन्तु घरका दरवाजा तो बन्द था, वे बाहर खड़े-ही-खड़े संकीर्तनका आनन्द लूटने लगे। इस प्रकार संकीर्तनके आनन्दमें किसीको समयका ज्ञान ही न रहा। दिन डूब गया। तब प्रभुने संकीर्तनको बन्द कर देनेकी आज्ञा दी और श्रीवास पण्डितसे कहा–'प्रसादके सम्पूर्ण सामानको यहाँ ले आओ।' प्रभुकी आज्ञा पाकर श्रीवास पण्डित प्रसादके सम्पूर्ण थालोंको प्रभुके समीप उठा लाये। प्रभुने अपने हाथोंसे सभी उपस्थित भक्तोंको प्रसाद वितरण किया। उस महाप्रसादको पाते हुए सभी भक्त अपने-अपने घरोंको चले गये।

इस प्रकार नित्यानन्दजी श्रीवास पण्डितके ही घरमें रहने लगे। श्रीवास पण्डित और उनकी धर्मपत्नी मालिनीदेवी उन्हें अपने सगे पुत्रकी भाँति प्यार करते थे। नित्यानन्दजीको अपने माता-पिताको छोड़े आज लगभग बीस वर्ष हो गये। बीस वर्षोंसे ये इसी प्रकार देश-विदेशोंमें घूमते रहे। बीस वर्षोंके बाद अब फिरसे मातृ-पितृ-सुखको पाकर ये परम प्रसन्न हुए। गौराङ्ग भी इनका हृदयसे बड़ा आदर करते थे, वे इन्हें अपने बड़े भाईसे भी बढ़कर मानते थे, तभी तो यथार्थमें प्रेम होता है। दोनों ही ओरसे सत्कारके भाव हों तभी अभिन्नता होती है। शिष्य अपने गुरुको सर्वस्व समझे और गुरु शिष्यको चाकर न समझकर अपना अन्तरङ्ग सखा समझे तभी दृढ़ प्रेम हो सकता है। गुरु अपने गुरुपनेमें ही बने रहें और शिष्यको अपना सेवक अथवा दास ही समझते रहें, इधर शिष्य अनिच्छापूर्वक कर्तव्य-सा समझकर उनकी सेवा-शुश्रूषा करता रहे, तो उन दोनोंमें यथार्थ प्रेम नहीं होता। गुरु-शिष्यका वर्ताव तो ऐसा ही होना चाहिये जैसा भगवान् श्रीकृष्ण और अर्जुनका था अथवा जनक और शुकदेवजीका जैसा शास्त्रोंमें सुना जाता है। नित्यानन्दजी गौराङ्गको अपना सर्वस्व ही समझते थे, किन्तु गौराङ्ग उनका सदा पूज्यकी ही भाँति आदर-सत्कार करते थे, यही तो इन महापुरुषोंकी विशेषता थी।

नित्यानन्दजीका स्वभाव बड़ा चञ्चल था। वे कभी-कभी स्वयं अपने हाथोंसे भोजन ही नहीं करते, तब मालिनीदेवी उन्हें अपने हाथोंसे छोटे बच्चोंकी तरह खिलातीं। कभी-कभी ये उनके सूखे स्तनोंको अपने मुखमें देकर उन्हें बालकोंकी भाँति पीने लगते। कभी उनकी गोदमें शिशुओंकी तरह क्रीड़ा करते। इस प्रकार ये श्रीवास और उनकी पत्नी मालिनी-देवीको वात्सल्य-सुखका आनन्द देते हुए उनके घरमें सुखपूर्वक रहने लगे।



अद्वैताचार्य

अद्वैताचार्यके ऊपर कृपा

सखि साहजिकं प्रेम दूरादपि विराजते ।
चकोरीनयनद्वन्द्वमानन्दयति चन्द्रमाः ॥*

(सु० र० भां० ९२ । २)

यदि प्रेम सचमुचमें स्वाभाविक है, यदि वास्तवमें उसमें किसी भी प्रकारका संसारी स्वार्थ नहीं है, तो दोनों ही ओरसे हृदयमें एक प्रकारकी हिलोरें-सी उठा करती हैं । उर्दू के किसी कविने प्रेमकी डरते-डरते और संशयके साथ बड़ी ही सुन्दर परिभाषा की है । वे कहते हैं—

'इश्क' इसको ही कहते होंगे शायद ?
सीनेमें जैसे कोई दिलको मला करे ।

सीनेमें दिलको खिंचता हुआ-सा देखकर ही वे अनुमान करते हैं कि हो-न-हो, यह प्रेमकी ही बला है । तो भी निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते । निश्चयात्मक क्रिया देनेमें डरते हैं । धन्य है ! यथार्थमें इससे बढ़िया प्रेमकी परिभाषा हो ही नहीं सकती ।

---

* किसी प्रेममें अधीर हुई नायिकासे सखी कह रही है—'हे सखि ! जो स्वाभाविक सहज स्नेह होता है, वह कभी कम नहीं होनेका, फिर चाहे प्रेमपात्र कितनी भी दूरीपर क्यों न रहता हो ! आकाशमें विराजमान होते हुए भी चन्द्रदेव चकोरीके दोनों नेत्रोंको आनन्द प्रदान करते ही रहते हैं ।'

शान्तिपुरमें बैठे हुए अद्वैताचार्य गौराङ्गकी सभी लीलाओंकी खबर सुनते और मन-ही-मन प्रसन्न होते। अपने प्यारेकी प्रशंसा सुनकर हृदयमें स्वाभाविक ही एक प्रकारकी गुदगुदी-सी होने लगती है। महाप्रभुका यशःसौरभ अब धीरे-धीरे सम्पूर्ण गौड़देशमें व्याप्त हो चुका था। आचार्य प्रभुके भक्तिभावकी बातें सुनकर आनन्दमें विभोर होकर नृत्य करने लगते और अपने-आप ही कभी-कभी कह उठते—'गङ्गाजल और तुलसीदलोंसे जो मैंने चिरकालतक भक्तभयभञ्जन भगवान्‌का अर्चन-पूजन किया था, ऐसा प्रतीत होता है, मेरा वह पूजन अब सफल हो गया। गौरहरि भगवान् विश्वम्भरके रूपमें प्रकट होकर भक्तोंके दुःखोंको दूर करेंगे।' उनका हृदय बार-बार कहता—'प्रभुकी छत्रछायामें रहकर अनेकों भक्त पावन बन रहे हैं, वे अपनेको गौरहरिके संसर्ग और सम्पर्कसे कृतकृत्य बना रहे हैं, तू भी चलकर अपने इस नीरस जीवनको सार्थक क्यों नहीं बना लेता?' किन्तु प्रेममें भी एक प्रकारका मीठा-मीठा मान होता है। अपने प्रियकी कृपाकी प्रतीक्षामें भी एक प्रकारका अनिर्वचनीय सुख मिलता है। इसलिये थोड़ी ही देर बाद वे फिर सोचते—'मैं स्वयं क्यों चलूँ, जब वे ही मेरे इष्टदेव होंगे, तो मुझे स्वयं ही बुलावेंगे, बिना बुलाये मैं क्यों जाऊँ?' इन्हीं सब कारणोंसे इच्छा होनेपर भी अद्वैताचार्य शान्तिपुर नहीं आते थे।

इधर महाप्रभुको जब भावावेश होता तभी जोरोंसे चिल्ला उठते—"नाड़ा कहाँ है! हमें बुलाकर 'नाड़ा' स्वयं शान्तिपुरमें जा छिपा। उसीकी हुंकारसे तो हम आये हैं।" पहले-पहल तो भक्तगण समझ ही न सके कि 'नाड़ा' कहनेसे प्रभुका अभिप्राय किससे है? जब श्रीवास पण्डितने दीनताके साथ जानना चाहा कि 'नाड़ा' कौन है, तब प्रभुने स्वयं ही बताया कि 'अद्वैताचार्यकी प्रार्थनापर ही हम जगदुद्धारके निमित्त अवनितलपर अवतीर्ण हुए हैं। 'नाड़ा' कहनेसे हमारा अभिप्राय उन्हींसे है।'

अब तो नित्यानन्द प्रभुके नवद्वीपमें आ जानेसे गौराङ्गका आनन्द अत्यधिक बढ़ गया था। अब वे अद्वैतके बिना कैसे रह सकते थे? अद्वैत और नित्यानन्द ये तो इनके परिकरके प्रधान स्तम्भ थे। इसलिये एक दिन एकान्तमें प्रभुने श्रीवास पण्डितके छोटे भाई रामसे शान्तिपुर जानेके लिये सङ्केत किया। प्रभुका इङ्गित पाकर रमाई पण्डितको परम प्रसन्नता हुई। वे उसी समय अद्वैताचार्यको लिवानेके लिये शान्तिपुर चल दिये।

शान्तिपुरमें पहुँचनेपर रमाई पण्डित आचार्यके घर गये। उस समय आचार्य अपने घरके सामने बैठे हुए थे, दूरसे ही श्रीवास पण्डितके अनुजको आते देखकर वे गद्गद हो उठे, उनकी प्रसन्नताका पारावार नहीं रहा। आचार्य समझ गये कि 'अब हमारे शुभ दिन आ गये। कृपा करके प्रभुने हमें स्व ;ानेके लये रमाई पण्डितको भेजा है, भगवान् भक्तकी प्रतिज्ञाकी इतनी अधिक परवा करते हैं कि उसके सामने वे अपना सब ऐश्वर्य भूल जाते हैं।' इसी बीच रमाईने आकर आचार्यको प्रणाम किया। आचार्यने भी उनका प्रेमालिङ्गन किया। आचार्यसे प्रेमालिङ्गन पाकर रमाई पण्डित एक ओर खड़े हो गये और आचार्यकी ओर देखकर कुछ मुसकराने लगे। उन्हें मुसकराते देखकर आचार्य कहने लगे—'मालूम होता है, प्रभुने मुझे स्मरण किया है, किन्तु मुझे कैसे पता च ले कि यथार्थमें वे ही मेरे प्रभु हैं? जिन प्रभुको पृथ्वीपर संकीर्तनका प्रचार करनेके निमित्त मैं प्रकट करना चाहता था, वे मेरे आराध्यदेव प्रभु ये ही हैं, इसका तुमलोगोंके पास कुछ प्रमाण है?

कुछ मुसकराते हुए रमाई पण्डितने कहा 'आचार्य महाशय! हमलोग तो उतने पण्डित नहीं हैं। प्रमाण और हेतु तो आप-जैसे विद्वान् ही समझ सकते हैं। किन्तु हम इतना अवश्य समझते हैं कि प्रभु बार-बार आपका स्मरण करते हुए कहते हैं—'अद्वैताचार्यने ही हमें

बुलाया है, उसीकी हुंकारके वशीभूत होकर हम भूतलपर आये हैं। लोकोद्धारकी सबसे अधिक चिन्ता अद्वैताचार्यको ही थी, इसीलिये उसकी चिन्ताको दूर करनेके निमित्त श्रीकृष्ण-संकीर्तनद्वारा लोकोद्धार करनेके निमित्त ही हम अवतीर्ण हुए हैं।'

अद्वैताचार्य मन-ही-मन प्रसन्न हो रहे थे, प्रभुकी दयालुता, भक्त-वत्सलता और कृपालुताका स्मरण करके उनका हृदय द्रवीभूत हो रहा था, प्रेमके कारण उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। इच्छा करनेपर भी वे कोई बात मुखसे नहीं कह सकते थे, प्रेममें गद्गद होकर वे रुदन करने लगे। पासमें ही बैठी हुई उनकी धर्मपत्नी सीतादेवी भी, आचार्यकी ऐसी दशा देखकर प्रेमके कारण अश्रु बहाने लगी। आचार्यका पुत्र भी माता-पिताको प्रेममें विह्वल देखकर रुदन करने लगा।

कुछ कालके अनन्तर अद्वैताचार्यके प्रेमका वेग कुछ कम हुआ। उन्होंने जल्दीसे सभी पूजाकी सामग्री इकट्ठी की और अपनी स्त्री तथा बच्चेको साथ लेकर वे रमाईके साथ नवद्वीपकी ओर चल पड़े। नव-द्वीपमें पहुँचनेपर आचार्यने रमाई पण्डितसे कहा—'देखो, हम इस प्रकार प्रभुके पास नहीं जायँगे, हम यहीं नन्दनाचार्यके घरमें ठहरते हैं, तुम सीधे घर चले जाओ। यदि प्रभु हमारे आनेके सम्बन्धमें कुछ पूछें तो तुम कह देना, 'वे नहीं आये।' यदि उनकी हमारे प्रति यथार्थ प्रीति होगी, तो वे हमें यहाँसे स्वयं ही बुला लेंगे। वे हमारे मस्तकके ऊपर अपना चरण रखेंगे, तभी हम समझेंगे कि उनकी हमारे ऊपर कृपा है और हमारी ही प्रार्थनापर वे जगत्-उद्धारके निमित्त अवतीर्ण हुए हैं।'

आचार्यकी ऐसी बात सुनकर रमाई पण्डित अपने घर चले गये। शामके समय सभी भक्त आ-आकर श्रीवास पण्डितके घर एकत्रित होने लगे। कुछ कालके अनन्तर प्रभु भी पधारे। आज प्रभु घरमें प्रवेश करते ही

भाववेशमें आ गये। भगवदावेशमें वे जल्दीसे भगवान्‌के आसनपर विराजमान हो गये और जोरोंके साथ कहने लगे—"नाड़ा शान्तिपुरसे तो आ गया है, किन्तु हमारी परीक्षाके निमित्त नन्दनाचार्यके घर छिपा बैठा है। वह अब भी हमारी परीक्षा करना चाहता है। उसीने तो हमें बुलाया है और अब वही परीक्षा करना चाहता है।' प्रभुकी इस बातको सुनकर भक्त आपसमें एक-दूसरेका मुख देखने लगे। नित्यानन्द मन-ही-मन मुसकराने लगे। मुरारी गुप्तने उसी समय प्रभुकी पूजा की; धूप, दीप, नैवेद्य चढ़ाकर सुगन्धित पुष्पोंकी माला प्रभुके गलेमें पहनायी और खानेके लिये सुन्दर सुवासित ताम्बूल दिया। इसी समय रमाई पण्डितने सभी वृत्तान्त जाकर अद्वैताचार्यसे कहा। सब वृत्तान्त सुनकर आचार्य चकित-से हो गये और प्रेममें बेसुध-से हुए गिरते-पड़ते श्रीवास पण्डितके घर आये। जिस घरमें प्रभु विराजमान थे, उस घरमें प्रवेश करते ही अद्वैताचार्यको प्रतीत हुआ कि सम्पूर्ण घर आलोकमय हो रहा है। कोटि सूर्योंके सदृश प्रकाश उस घरमें विराजमान है, उन्हें प्रभुकी तेजोमय मूर्तिके स्पष्ट दर्शन न हो सके। उस असह्य तेजके प्रभावको आचार्य सहन न कर सके। उनकी आँखोंके सामने चकाचौंध-सी छा गयी, वे मूर्छित होकर भूमिपर गिर पड़े और देहलीसे आगे पैर न बढ़ा सके। भक्तोंने वृद्ध आचार्यको उठाकर प्रभुके सम्मुख किया। प्रभुके सम्मुख पहुँचनेपर भी वे संज्ञाशून्य ही पड़े रहे और बेहोशीकी ही हालतमें लम्बी-लम्बी साँसें भरकर जोरोंके साथ रुदन करने लगे। उन वृद्ध तपस्वी विद्वान् पण्डितकी ऐसी अवस्था देखकर सभी उपस्थित भक्त आनन्दसागरमें गोते खाने लगे और अपनी भक्तिको तुच्छ समझकर रुदन करने लगे।

थोड़ी देरके अनन्तर प्रभुने कहा—'आचार्य! उठो, अब देर करनेका क्या काम है, तुम्हारी मनःकामना पूर्ण हुई। चिरकालकी तुम्हारी

अभिलाषाके सफल होनेका समय अब सन्निकट आ गया। अब उठकर हमारी विधिवत् पूजा करो।'

प्रभुकी ऐसी प्रेममय वाणी सुनकर वे कुछ प्रकृतिस्थ हुए। भोले बालकके समान सत्तर वर्षके श्वेत केशवाले विद्वान् ब्राह्मण सरलताके साथ प्रभुका पूजन करनेके लिये उद्यत हुए। जगन्नाथ मिश्र जिन्हें पूज्य और श्रेष्ठ मानते थे, विश्वरूपके जो विद्यागुरु थे और निमाईको जिन्होंने गोदमें खिलाया था, वे ही भक्तोंके मुकुटमणि महामान्य अद्वैताचार्य एक तेईस वर्षके युवकके आदेशसे सेवककी भाँति अपने भाग्यकी सराहना करते हुए उसकी पूजा करनेको तैयार हो गये। इसे ही तो विभूतिमत्ता कहते हैं, यही तो भगवत्ता है, जिसके सामने सभी प्राणी छोटे हैं। जिसके प्रभावसे जाति, कुल, रूप तथा अवस्थामें छोटा होनेपर भी पुरुष सर्वपूज्य समझा जाता है।

अद्वैताचार्यने सुवासित जलसे पहले तो प्रभुके पादपद्मोंको पखारा, फिर पाद्य, अर्घ्य देकर सुगन्धित चन्दन प्रभुके श्रीअङ्गोंमें लेपन किया, अनन्तर अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्यादि चढ़ाकर सुन्दर माला प्रभुके गलेमें पहनायी और ताम्बूल देकर वे हाथ जोड़कर गद्गदकण्ठसे स्तुति करने लगे। वे रोते-रोते बार-बार इस श्लोकको पढ़ते थे—

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः॥*

(श्रीविष्णु० १। १९। ६५)

---

* ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाले प्रभुके पादपद्मोंमें प्रणाम है। गौ और ब्राह्मणोंका प्रतिपालन करनेवाले भगवान्के प्रति नमस्कार है। सम्पूर्ण जगत्का उद्धार करनेवाले श्रीकृष्णचन्द्रको प्रणाम है, भगवान् गोविन्दके चरणोंमें कोटि-कोटि नमस्कार है।

श्लोक पढ़ते-पढ़ते वे और भी गौराङ्गको लक्ष्य करके भाँति-भाँतिकी स्तुति करने लगे। स्तुति करते-करते वे बेसुध-से हो गये। इसी बीच अद्वैताचार्यकी पत्नी सीतादेवीने प्रभुकी पूजा की। प्रभुने भावावेशमें आकर उन दोनोंके मस्तकोंपर अपने श्रीचरण रखे। प्रभुके पादपद्मोंके स्पर्शमात्रसे आचार्यपत्नी और आचार्य आनन्दमें विभोर होकर रुदन करने लगे। प्रभुने आचार्यको आश्वासन देते हुए कहा—'आचार्य! अब जल्दीसे उठो, अब देर करनेका काम नहीं है। अपने संकीर्तन-द्वारा मुझे आनन्दित करो।'

प्रभुका आदेश पाते ही, आचार्य दोनों हाथोंको ऊपर उठाकर प्रेमके साथ संकीर्तन करने लगे। सभी भक्त अपने-अपने वाद्योंको बजा-बजाकर आचार्यके साथ संकीर्तन करनेमें निमग्न हो गये। आचार्य प्रेमके आवेशमें जोरोंसे नृत्य कर रहे थे, उन्हें शरीरकी तनिक भी सुध-बुध नहीं थी। वे प्रेममें इतने मतवाले बने हुए थे, कि कहीं पैर रखते थे और कहीं जाकर पैर पड़ते थे। धीरे-धीरे स्वेद, कम्प, अश्रु, स्वरभङ्ग तथा विकृति आदि सभी संकीर्तनके सात्त्विक भावोंका अद्वैताचार्यके शरीरमें उदय होने लगा। भक्त भी अपने आपको भूलकर अद्वैताचार्यकी तालके साथ अपना ताल-स्वर मिला रहे थे, इस प्रकार उस दिनके संकीर्तनमें सभीको अपूर्व आनन्द आया। आजतक कभी भी इतना आनन्द संकीर्तनमें नहीं आया था। सभी भक्त इस बातका अनुभव करने लगे कि आजका संकीर्तन सर्वश्रेष्ठ रहा। क्यों न हो, जहाँ अद्वैत तथा निमाई, निताई ये तीनों ही प्रेमके मतवाले एकत्रित हो गये हों, वहाँ अद्वितीय तथा अलौकिक आनन्द आना ही चाहिये। बहुत रात्रि बीतनेपर संकीर्तन समाप्त हुआ और सभी भक्त प्रेममें छके हुए-से अपने-अपने घरोंको चले गये।

अद्वैताचार्यको श्यामसुन्दररूपके दर्शन

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति ।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥*

(सु० र० भां० १६६ । ३०६)

प्रेममें छोटेपनका भाव ही नहीं रहता । प्रेमी अपने प्रियको सदा बड़ा ही समझता है । भगवान् भक्तप्रिय हैं । जहाँ भक्त उन्हें अपना सर्वस्व समझते हैं, वहाँ वे भी भक्तको अपना सर्वस्व समझते हैं। भक्तके प्रति श्रद्धाका भाव प्रदर्शित करते हुए भगवान् स्वयं कहते हैं— 'मैं भक्तोंके पीछे-पीछे इस कारण फिरा करता हूँ कि उनकी पदधूलि उड़कर मेरे ऊपर पड़ जाय और उससे मैं पावन हो जाऊँ ।' जगत्को पावन बनानेवाले प्रभुके ये भाव हैं। भक्त उनका दिन-रात्रि भजन करते हैं, वे भी कहते हैं—'जो मेरा जिस रूपसे भजन करता है, मैं भी उसका उसी रूपसे भजन करता हूँ ।' विश्वके एकमात्र भजनीय भगवान्की लीला तो देखिये । प्रेमका कैसा अनोखा दृष्टान्त है । जो विश्वम्भर है, चर-अचर सभी प्राणियोंका जो सदा पालन-पोषण करते हैं, जिनके संकल्पमात्रसे सम्पूर्ण विश्व तृप्त हो सकता है, वे कहते हैं जो कोई मुझे भक्तिसे कुछ दे देता है उसे ही मैं प्रसन्न होकर खा लेता हूँ। पत्ता खानेकी चीज नहीं है, फूल सूँघनेकी वस्तु है और

---

* अपने प्रेमीको मान-सम्मान तथा जो वस्तु अपनेको अत्यन्त प्रिय प्रतीत होती हो उसे प्रदान करना, उसकी दी हुई वस्तुओंको प्रेमसे ग्रहण करना, अपनी गोप्यसे भी गोप्य बातोंको उसके सम्मुख प्रकट करना तथा उससे उसके हृदयकी आन्तरिक बातोंको पूछना, स्वयं उसके यहां भोजन करना और उसे खूब प्रेमके साथ अपने हाथोंसे भोजन कराना—ये छः प्रीतिके लक्षण बताये गये हैं ।

जल पीनेकी, केवल अन्न या फल ही खाये जाते हैं। प्रेममें पागल हुए भगवान् कहते हैं—'यदि मुझे कोई भक्ति-भावसे पत्र, पुष्प, फल अथवा जल ही दे देता है तो उसे मैं बहुत ही अमूल्य वस्तु समझकर सन्तुष्ट-मनसे खा जाता हूँ। पत्ते और फूलोंको भी खा जाते हैं, सबके लिये 'अश्नामि' इसी क्रियाका प्रयाग करते हैं। धन्य है, ऐसे खानेको! क्यों न हो, प्रेममें ये पार्थिव पदार्थ ही थोड़े खाये जाते हैं, असली तृप्तिका कारण तो उन पदार्थोंमें ओतप्रोतभावसे भरा हुआ प्रेम है, उस प्रेमको ही खाकर प्रभु परम प्रसन्न होते हैं। प्रेम है ही ऐसी वस्तु! उसका जहाँ भी समावेश हो जायगा वही पदार्थ सुखमय, मधुमय, आनन्दमय और तृप्तिकारक बन जायगा।

उस दिन संकीर्तनके अनन्तर दूसरे-तीसरे दिन फिर अद्वैताचार्य शान्तिपुरको ही चले गये। उनके मनमें अब भी प्रभुके प्रति सन्देहके भाव बने हुए थे। उनका मन अब भी दुविधामें था कि ये हमारे इष्टदेव ही हैं या और कोई। इसीलिये एक दिन संशयबुद्धिसे वे फिर नवद्वीप पधारे। वैसे उनका हृदय प्रभुकी ओर स्वतः ही आकर्षित हो गया था, उन्हें महाप्रभुकी स्तुतिमात्रसे परमानन्द प्रतीत होता था, भीतरसे बिना विश्वासके ऐसे भाव हो ही नहीं सकते, किन्तु प्रकटमें वे अपना अविश्वास ही जताते। उस समय प्रभु श्रीवास पण्डितके यहाँ भक्तोंके साथ श्रीकृष्णकथा कर रहे थे। आचार्यको आया देखकर प्रभु भक्तोंके सहित उनके सम्मानके निमित्त उठ पड़े। प्रभुने बड़ी श्रद्धा-भक्तिके सहित आचार्यके लिये प्रणाम किया तथा आचार्यने भी लजाते हुए अपने श्वेत बालोंसे प्रभुके पादपद्मोंकी परागको पोंछा। उपस्थित सभी भक्तोंको आचार्यने प्रेमालिङ्गन दान दिया और प्रभुके साथ वे सुखपूर्वक बैठ गये।

सबके बैठ जानेपर प्रभुने मुसकराते हुए कहा—'यहाँपर सीतापति विराजमान हैं, किसीको भय भले हो, हमें तो कुछ भय नहीं। वे हमारा

शमन न कर सकेंगे।' (अद्वैताचार्यकी पत्नीका नाम सीतादेवी था, प्रभुका लक्ष्य उन्हींकी ओर था।)

कुछ बनावटी गम्भीरता धारण करते हुए तथा अपने चारों ओर देखते हुए आचार्यने कहा—'यहाँ रघुनाथ तो दृष्टिगोचर होते नहीं, हाँ, यदुनाथ अवश्य विराजमान हैं।' प्रभु इस उत्तरको सुनकर कुछ लज्जित-से हुए। बातको उड़ानेके निमित्त कहने लगे—'देखिये, हम तो चिर-कालसे आशा लगाये बैठे थे कि हम सभी लोग आपकी छत्रछायामें रहकर श्रीकृष्ण-कीर्तन करते, किन्तु आप शान्तिपुर जा विराजे, ऐसा हमलोगोंसे क्या अपराध बन गया है?'

अद्वैताचार्य इसका कुछ उत्तर देने नहीं पाये थे कि बीचमें ही श्रीवास पण्डित बोल उठे—'अद्वैताचार्यका तो नाम ही अद्वैत है। इसीलिये वे शान्तिपुरमें निवास कर रहे हैं। अब आपका आविर्भाव नवद्वीपरूपी नवधाभक्तिके पीठमें हुआ है। उसमें विराजमान होकर नित्यानन्द उसका रसास्वादन कर रहे हैं। अद्वैत भी शान्तिपुर छोड़कर इस नित्यानन्दपूर्ण पीठमें आकर गौरगुणगानद्वारा अपनेको नित्यानन्दमय बनाना चाहते हैं। अभी ये द्वैत-अद्वैतके दुविधामें हैं।'

इस गूढ़ उत्तरका मर्म समझकर हँसते हुए आचार्य कहने लगे—'जहाँपर 'श्रीवास' हैं, वहाँपर लोगोंकी क्या कमी? श्रीके वासमें आकर्षण ही ऐसा है कि हम-जैसे सैकड़ों मनुष्य उनके प्रभावसे खिंचे चले आवेंगे।'

श्रीवास पण्डित इस गूढ़ोक्तिसे बड़े प्रसन्न हुए, उसे प्रभुके ऊपर घटाते हुए कहने लगे—'जब लक्ष्मीदेवी थीं, तब थीं, अब तो वे यहाँ वास नहीं करतीं, अब तो वे नवद्वीपसे अन्तर्धान हो गयीं। (गौराङ्ग महाप्रभुकी पहली पत्नीका नाम 'लक्ष्मी' था। 'श्री'के माने लक्ष्मी लगाकर श्रीवास पण्डितने कहा अब यहाँ श्रीका वास नहीं है।)

प्रभुने जब देखा श्रीवास हमारे ऊपर घटाने लगे हैं तब आपने जल्दीसे कहा—'पण्डितजो! यह आप कैसी बात कह रहे हैं? श्रीके माने हैं 'भक्त'। जहाँपर आप-जैसे भक्त विराजमान हैं वहाँ श्रीका वास अवश्य ही होना चाहिये, भला ऐसे स्थानको छोड़कर 'भक्ति' या 'श्री' कहीं जा सकती है?'

इसपर आचार्य कहने लगे—'हाँ, ठीक तो है। श्रीके बिना हरि रह ही कैसे सकते हैं? 'श्री' विष्णुप्रिया नाम रखकर नवद्वीपमें अवस्थित हैं अथवा उन्होंने श्रीके साथ विष्णुप्रिया अपने नाममें और जोड़ लिया है, अब वे केवल श्री न होकर 'श्रीविष्णुप्रिया' बन गयी हैं।' (गौरकी द्वितीय पत्नीका नाम श्रीविष्णुप्रिया था। उसीको लक्ष्य करके अद्वैताचार्यने यह बात कही।)

बातको दूसरी ओर घटाते हुए प्रभुने कहा—'श्री' तो सदासे ही विष्णुप्रिया ही हैं, '*भक्तिप्रियो माधवः*' भगवान्‌को तो सदासे ही भक्ति प्यारी है। इसलिये श्री अथवा भक्तिका नाम पहलेसे ही विष्णुप्रिया है।'

यह सुनकर आचार्य जल्दीसे प्रभुको प्रणाम करते हुए बोले—'तभी प्रभुने एक विग्रहसे लक्ष्मीरूपसे उन्हें ग्रहण किया और फिर अब श्रीविष्णुप्रियाके रूपसे उनके दूसरे विग्रहको अपनी अर्धाङ्गिनी बनाया है।'

इस प्रकार आपसमें श्लेषात्मक बातें हो ही रही थीं कि प्रभुके घरसे एक आदमी आया और उसने नम्रतापूर्वक प्रभुसे निवेदन किया—'शचीमाताने कहलाया है कि आज आचार्य घरमें ही भोजन करें। कृपा करके वे हमारे आजके निमन्त्रणको अवश्य ही स्वीकार करें।'

उस आदमीकी बातें सुनकर प्रभुने उसे कुछ भी उत्तर नहीं दिया। जिज्ञासाके भावसे वे आचार्यके मुखकी ओर देखने लगे। प्रभुके भावको

समझकर आचार्य कहने लगे—'हमारा अहोभाग्य, जो जगन्माताने हमें भोजनके लिये निमन्त्रित किया है, इसे हम अपना सौभाग्य ही समझते हैं।'

बीचमें ही बातको काटते हुए श्रीवास पण्डित बोल उठे—'इस सौभाग्यसुखको अकेले ही लूटोगे या दूसरोंको भी साझी बनाओगे? हम तो तुम्हें अकेले कभी भी इस आनन्दका उपभोग न करने देंगे, यदि गौराङ्ग हमें निमन्त्रित न भी करेंगे, तो हम शचीमाताके समीप जाकर याचना करेंगे। वे तो साक्षात् अन्नपूर्णा ही ठहरीं, उनके दरबारसे कोई निराश होकर थोड़े ही लौट सकता है? आचार्य महाशय! तुम्हारी अकेले ही दाल नहीं गलनेकी, हमें भी साथ ले चलना पड़ेगा।'

आचार्य अद्वैत और महाप्रभु वैसे तो दोनों ही सिलहटनिवासी ब्राह्मण थे, किन्तु दोनोंका परस्परमें खान-पान एक नहीं था, इसी बातको जाननेके निमित्त कुछ संकोचके साथ प्रभुने कहा—'भोजनकी क्या बात है, सर्वत्र आपका ही है, किन्तु आचार्यको दो आदमियोंके लिये भात बनानेमें कष्ट होगा।'

इसपर आचार्य बीचमें ही बोल उठे—'मुझे क्यों कष्ट होनेका? कष्ट होगा तो शचीमाताको होगा। सो, वे तो जगन्माता ठहरीं, वे कष्टको कष्ट मानती ही नहीं। यदि वे बनानेमें असमर्थ होंगी तो फिर हमको बनाना ही होगा।' इस उत्तरसे प्रभु समझ गये कि आचार्यको अब हमारे घरका भात खानेमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं। असलमें प्रेममें किसी प्रकारका निश्चित नियम है ही नहीं। यह नहीं कह सकते कि सभी प्रेमी सामाजिक नियमोंको भंग ही कर दें या सभी प्रेमी अन्य लोगोंकी भाँति सामाजिक नियमों का पालन ही करें। इनके लिये कोई निश्चित नियम नहीं। भगवान् राम-जैसे सर्वश्रेष्ठ प्रेमीने 'सीता-परीक्षा', 'सीता-परित्याग' और 'लक्ष्मण-परित्याग'-जैसे असह्य और वेदनापूर्ण

कार्योंको इसीलिये किया कि जिससे लोक-संग्रहका धर्म अक्षुण्ण बना रहे। इसके विपरीत भगवान् श्रीकृष्णने प्रेमके पीछे सामाजिक नियमोंकी कोई परवा ही नहीं की। अब भी देखा जाता है, बहुत-से अत्यन्त प्रेमी सामाजिक और धार्मिक नियमोंमें दृढ़ रहकर बर्ताव करते हैं। बहुत-से इन सबकी उपेक्षा भी करते देखे गये हैं। इसलिये प्रेम-पन्थके लिये कोई निश्चित नियम निर्धारित नहीं किया जा सकता। यह तो नियमोंसे रहित अलौकिक पंथ है। आचार्यके लिये अब प्रभुके घरमें क्या संकोच होना था, जब उन्होंने अपना सर्वस्व प्रभुके पाद-पद्मोंमें समर्पित कर दिया।

स्वीकृति लेकर वह मनुष्य मातासे कहने चला गया। इधर आचार्यने धीरेसे कोई बात श्रीवास पण्डितके कानमें कही। आपसमें दोनोंको धीरे-धीरे बातें करते देखकर प्रभु हँसते हुए कहने लगे—'दोनों पण्डितोंमें क्या गुपचुप बातें हो रही हैं, हम उन बातोंको सुननेके अधिकारी नहीं हैं क्या ?'

प्रभुकी बात सुनकर आचार्य तो कुछ लज्जित-से होकर चुप हो गये, किन्तु श्रीवास पण्डित थोड़ी देर ठहरकर कहने लगे—'प्रभो ! आचार्य अपने मनमें अत्यन्त दुखी हैं। वे कहते हैं—प्रभुने नित्यानन्दजीके ऊपर तो कृपा करके उनको अपना असली रूप दिखा दिया, किन्तु न जाने क्यों, हमारे ऊपर कृपा नहीं करते ? हमें पहले आश्वासन भी दिलाया था कि तुम्हें अपना असली रूप दिखावेंगे, किन्तु अभीतक हमारे ऊपर कृपा नहीं हुई।'

कुछ विस्मय-सा प्रकट करते हुए प्रभुने कहा—'मैं नहीं समझता, असली रूप कहनेसे आचार्यका क्या अभिप्राय है ? मेरा असली रूप तो यही है, जिसे आप सब लोग सदा देखते हैं और अब भी देख रहे हैं।'

अपनी बातका प्रभुको भिन्न रीतिसे अर्थ लगाते हुए देखकर श्रीवास पण्डितने कहा—'हाँ प्रभो ! यह ठीक है, आपका असली रूप तो यही

है, हम सब भी इसी गौररूपकी श्रद्धा-भक्तिके साथ वन्दना करते हैं, किन्तु आपने आचार्यको अन्य रूपके दर्शनोंका आश्वासन दिलाया था, वे उसी आश्वासनका स्मरणमात्र करा रहे हैं।'

श्रीवासजीके ऐसे उत्तरसे सन्तुष्ट होकर प्रभु कहने लगे—'पण्डितजी ! आप तो सब कुछ जानते हैं, मनुष्यकी प्रकृति सदा एक-सी नहीं रहती। वह कभी कुछ सोचता है और कभी कुछ। जब मेरी उन्मादकी-सी अवस्था हो जाती है, तब उसमें न जाने मैं क्या-क्या बक जाता हूँ, उसका स्मरण मुझे स्वयं ही नहीं रहता। मैंने अपनी उन्मादावस्थामें आचार्यसे कुछ कह दिया होगा, उसका स्मरण मुझे अब बिल्कुल नहीं है।'

यह सुनकर कुछ दीनताके भावसे श्रीवास पण्डितने कहा—'प्रभो ! आप हमारी हर समय क्यों वञ्चना किया करते हैं, लोगोंको जब उन्माद होता है, तो उनसे अन्य लोगोंको बड़ा भय होता है। लोग उनके समीप जानेतकमें डरते हैं, किन्तु आपका उन्माद तो लोगोंके हृदयोंमें अमृत-सिञ्चन-सा करता है। भक्तोंको उससे बढ़कर कोई दूसरा आनन्द ही प्रतीत नहीं होता। क्या आपका उन्माद सचमुचमें उन्माद ही होता है ? यदि ऐसा हो तो फिर भक्तोंको इतना अपूर्व आनन्द क्या होता है ? आपमें सर्वसामर्थ्य है। आप जिस समय जैसा चाहें रूप दिखा सकते हैं।'

प्रभुने कहा—'पण्डितजी ! सचमुचमें आप विश्वास कीजिये, किसी-को कोई रूप दिखाना मेरे बिलकुल अधीन नहीं है। किस समय कैसा रूप बन जाता है, इसका मुझे स्वयं पता नहीं चलता। आप कहते हैं, आचार्य श्यामसुन्दररूपके दर्शन करना चाहते हैं। यह मेरे हाथकी बात थोड़ी ही है। यह तो उनकी दृढ़ भावनाके ही ऊपर निर्भर है। उनकी जैसे रूपमें प्रीति होगी, उसी भावके अनुसार उन्हें दर्शन होंगे। यदि उनकी उत्कट इच्छा है, यदि यथार्थमें वे श्यामसुन्दररूपका

ही दर्शन करना चाहते हैं तो आँखें बंद करके ध्यान करें, बहुत सम्भव है, वे अपनी भावनाके अनुसार श्यामसुन्दरकी मनोहर मूर्तिके दर्शन कर सकें।'

प्रभुकी ऐसी बात सुनकर आचार्यने कुछ सन्देह और कुछ परीक्षाके भावसे आँखें बंद कर लीं। थोड़ी ही देरमें भक्तोंने देखा कि आचार्य मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े हैं। लोगोंने उनके शरीरको स्पर्श करके देखा तो उसमें चेतना मालूम ही न पड़ी। श्रीवास पण्डितने उनकी नासिकाके छिद्रोंपर हाथ रखा, उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ, मानो उनकी साँस चल ही नहीं रही है। इन सब लक्षणोंसे तो यही प्रतीत होता था कि उनके शरीरमें प्राण नहीं है, किन्तु चेहरेकी कान्ति समीपके लोगोंको चकित बनाये हुए थी। उनके चेहरेपर प्रत्यक्ष तेज चमकता था। सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो रहा था। सभी भक्त उनकी ऐसी अवस्था देखकर आश्चर्य करने लगे। श्रीवास पण्डितने घबड़ाहटके साथ प्रभुसे पूछा—'प्रभो! आचार्यकी यह कैसी दशा हो गयी? न जाने क्यों वे इस प्रकार मूर्छित और संज्ञाशून्य-से हो गये?'

प्रभुने कहा—'आपलोग किसी प्रकारका भी भय न करें। मालूम होता है, आचार्यको हृदयमें अपने इष्टदेवके दर्शन हो गये हैं, उसीके प्रेममें ये मूर्छित हो गये हैं। मुझे तो ऐसा ही अनुमान होता है।'

गद्गद कण्ठसे श्रीवास पण्डितने कहा—'प्रभो! अनुमान और प्रत्यक्ष दोनों ही आपके अधीन हैं। आचार्य सौभाग्यशाली हैं जो इच्छा करते ही उन्हें आपके श्यामसुन्दररूपके दर्शन हो गये। हतभाग्य तो हमीं हैं जो हमें इस प्रकारका कभी भी सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। अस्तु, अपना-अपना भाग्य ही तो है, न हो हमें किसी और रूपका दर्शन,

हमारे लिये तो यह गौररूप ही यथेष्ट है। अब ऐसा अनुग्रह कीजिये जिससे आचार्यको होश आये।'

श्रीवासजीकी बात सुनकर प्रभुने कहा—'आप भी कैसी बात कहते हैं, मैं उन्हें कैसे चेतन कर सकता हूँ? वे स्वयं ही चैतन्य होंगे। यह देखो, आचार्य अब कुछ-कुछ आँखें खोलने लगे हैं।' प्रभुका इतना कहना था कि आचार्यकी मूर्छा धीरे-धीरे भंग होने लगी। जब वे स्वस्थ हुए तो श्रीवास पण्डितने पूछा—'आचार्य! क्या देखा?' श्रीवासके पूछनेपर गद्‌गद कण्ठसे आचार्य कहने लगे—'ओहो! अद्‌भुतरूपके दर्शन हुए। वे ही श्यामसुन्दर बनवारी, पीतपटधारी, मुरलीमनोहर मेरे सामने प्रत्यक्ष प्रकट हुए। मैंने प्रत्यक्ष देखा, स्वयं गौरने ही ऐसा रूप धारण करके मेरे हृदयमें प्रवेश किया और अपनी मन्द-मन्द मुसकानसे मुझे बेसुध-सा बना लिया। मेरा मन अपने अधीन नहीं रहा। वह उस माधुरीको पान करनेमें ऐसा तल्लीन हुआ कि अपने आपेको ही खो बैठा। थोड़ी ही देरके पश्चात् वह मूर्ति गौररूप धारण करके मेरे सामने आ बैठी, तभी मुझे चेत हुआ।' यह कहते-कहते आचार्य प्रेमके कारण गद्‌गद कण्ठसे रुदन करने लगे। उनकी आँखोंकी कोरोंमेंसे ठंडे अश्रुओंकी दो धारा-सी बह रही थीं। प्रभुने हँसते हुए कुछ बनावटी उपेक्षाके साथ कहा—'मालूम पड़ता है, आचार्यने गत रात्रिमें जागरण किया है। इसीलिये आँखें बंद करते ही नींद आ गयी और उसी नींदमें इन्होंने स्वप्न देखा है, उसी स्वप्नकी बातें ये कह रहे हैं।'

प्रभुकी ऐसी बात सुनकर आचार्य अधीर होकर प्रभुके चरणोंमें गिर पड़े और गद्‌गद कण्ठसे कहने लगे—'प्रभो! मेरी अब

अधिक वञ्चना न कीजिये । अब तो आपके श्रीचरणोंमें विश्वास उत्पन्न हो जाय, ऐसा ही आशीर्वाद दीजिये ।' प्रभुने वृद्ध आचार्यको उठाकर गलेसे लगाया और प्रेमके साथ कहने लगे—'आप परम भागवत हैं, आपकी निष्ठा बहुत ऊँची है, आपके निरन्तर ध्यानका ही यह प्रत्यक्ष फल है, कि नेत्र बंद करते ही आपको भगवान्‌के दर्शन होने लगे हैं। चलिये, अब बहुत देर हो गयी, माता भोजन बनाकर हमलोगोंकी प्रतीक्षा कर रही होंगी । आज हम सब साथ-ही-साथ भोजन करेंगे ।'

प्रभुकी आज्ञा पाकर श्रीवासके सहित आचार्य महाप्रभुके घर चलनेको तैयार हो गये । घर पहुँचकर प्रभुने देखा, माता सब सामान बनाकर चौकेमें बैठी सब लोगोंके आनेकी प्रतीक्षा कर रही है । प्रभुने जल्दीसे हाथ-पैर धोकर आचार्य और श्रीवास पण्डितके स्वयं पैर धुलाये और उन्हें बैठनेको सुन्दर आसन दिये । दोनोंके बहुत आग्रह करनेपर प्रभु भी आचार्य और श्रीवासके बीचमें भोजन करनेके लिये बैठ गये । शचीमाताने आज बड़े ही प्रेमसे अनेक प्रकारके व्यञ्जन बनाये थे । भोजन परोस जानेपर दोनोंने भगवान्‌के अर्पण करके तुलसीमञ्जरी पड़े हुए उन सभी व्यञ्जनोंको प्रेमके साथ पाया । प्रभु बार-बार आग्रह कर-करके आचार्यको और अधिक परसवा देते और आचार्य भी प्रेमके वशीभूत होकर उसे पा लेते । इस प्रकार उस दिन तीनोंने ही अन्य दिनोंकी अपेक्षा बहुत अधिक भोजन किया । किन्तु उस भोजनमें चारों ओरसे प्रेम-ही-प्रेम भरा था । भोजनोपरान्त प्रभुने श्रीविष्णुप्रियासे लेकर आचार्य तथा श्रीवास पण्डितको मुख-शुद्धिके लिये ताम्बूल दिया । कुछ आराम करनेके अनन्तर प्रभुको आज्ञा लेकर अद्वैत तो शान्तिपुर चले गये और श्रीवास अपने घरको चले गये ।

प्रच्छन्न भक्त पुण्डरीक विद्यानिधि

तदश्मसारं हृदयं बतेदं
यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ।
न विक्रियेताथ यदा विकारो
नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥*

(श्रीमद्भा० २ । ३ । २४)

जिनके हृदयमें भगवान्‌के प्रति भक्ति उत्पन्न हो गयी है, जिनका हृदय श्याम-रंगमें रँग गया है, जिनकी भगवान्‌के सुमधुर नामों तथा उनकी जगत्-पावनी लीलाओंमें रति है, उन बड़भागी भक्तोंने ही यथार्थमें मनुष्य-शरीरको सार्थक बनाया है। प्रायः देखा गया है कि जिनके ऊपर भगवत्कृपा होती है, जो प्रभुके प्रेममें पागल बन जाते हैं, उनका बाह्य जीवन भी त्यागमय बन जाता है, क्योंकि जिसने उस अद्भुत प्रेमासवका एक बार भी पान कर लिया, उसे फिर त्रिलोकीके जो भी संसारी सुख हैं, सभी फीके-फीके-से प्रतीत होने लगते हैं। संसारी सुखोंमें तो मनुष्य तभीतक सुखानुभव करता है, जबतक उसे असली सुख-का पता नहीं चलता। जिसने एक क्षणको भी सुखस्वरूप प्रेमदेवके दर्शन कर लिये फिर उसके लिये सभी संसारी पदार्थ तुच्छ-से दिखायी देने लगेंगे। इसीलिये प्रायः देखा गया है कि परमार्थके पथिक भगवद्भक्तों तथा ज्ञान-निष्ठ साधकोंका जीवन सदा त्यागमय ही होता है। वे संसारी भोगोंसे

---

* श्रीहरि भगवान्‌के मधुर नामोंके श्रवणमात्रसे जिनके हृदयमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न न हो, अथवा जिनके शरीरमें स्वेद, कम्प, अश्रु तथा रोमाञ्च आदि सात्त्विक भावोंका उदय न होता हो तो समझना चाहिये कि उन पुरुषोंका हृदय फौलादका बना हुआ है।

स्वरूपतः भी दूर ह 'ी रहते हैं, किन्तु कुछ ऐसे भी भक्त देखनेमें आते हैं कि जिनका जीवन ऊपरसे तो संसारी लोगोंका-सा प्रतीत होता है, किन्तु हृदयमें अगाध भक्ति-रस भरा हुआ होता है। जो जरा-सी ठेस लगते ही छलककर आँखोंके द्वारा बाहर बहने लगता है। असलमें भक्तिका सम्बन्ध तो हृदयसे है, यदि मन विषयवासनाओंमें रत नहीं है, तो कैसी भी परिस्थितिमें क्यों न रहें, हृदय सदा प्रभुके पादपद्मोंका ही चिन्तन करता रहेगा। यही सोचकर महाकवि केशव कहते हैं—

कहैं 'केशव' भीतर जोग जगै इत बाहिर भोगमयी तन है।
मन हाथ भयो जिनके तिनके बन ही घर है घर ही बन है॥

प्रायः देखा गया है कि त्यागमय जीवन बितानेसे साधकके मनमें ऐसी धारणा-सी हो जाती है कि बिना स्वरूपतः बाह्य त्यागमय जीवन बिताये भगवद्भक्ति प्राप्त ही नहीं होती। भक्तिमार्गमें यह बड़ा भारी विघ्न है, त्यागमय जीवन जितना भी बिताया जाय उतना ही श्रेष्ठ है, किन्तु यह आग्रह करना कि स्वरूपतः त्याग किये बिना कोई भक्त बन ही नहीं सकता, यह त्यागजन्य एक प्रकारका अभिमान ही है। भक्तको तो तृणसे भी नीचा बनकर कुत्ते, चाण्डाल, गौ और गधेतकको भी मनसे नहीं, किन्तु शरीरसे दण्डकी तरह पृथ्वीपर लेटकर प्रणाम करना चाहिये, तभी अभिमान दूर होगा। भक्तोंके विषयमें कोई क्या कह सकता है कि वे किस रूपमें रहते हैं? नाना परिस्थितियोंमें रहकर भक्तोंको जीवन बिताते देखा गया है, इसलिये जिसके जीवनमें बाह्य त्यागके लक्षण प्रतीत न हों, वह भक्त ही नहीं, ऐसा कभी भी न सोचना चाहिये।

पुण्डरीक विद्यानिधि एक ऐसे ही प्रच्छन्न भक्त थे। उनके आचार-व्यवहारको देखकर कोई नहीं समझ सकता था कि ये भक्त हैं, सब लोग उन्हें विषयी ही समझते थे। लोग समझते रहें, किन्तु पुण्डरीक महाशय तो सदा प्रभुप्रेममें छके-से रहते थे, लोगोंको दिखानेके लिये वे कोई

काम थोड़े ही करते थे, उन्हें तो अपने प्यारेसे काम था। वैसे उनका बाह्य व्यवहार संसारी विषयी लोगोंका-सा ही था। उनका जन्म एक कुलीन वंशमें हुआ था, वे देखनेमें बहुत ही सुन्दर थे, शरीर राजपुत्रों-की भाँति सुकुमार था, अत्यन्त ही चिकने और कोमल उनके काले-काले घुँघराले बाल थे, वे उनमें सदा बहुमूल्य सुगन्धित तैल डालते, शरीरको उबटन और तैल-फुलेलसे खूब साफ रखते। बहुत ही महीन रेशमी वस्त्र पहिनते। कभी गङ्गास्नान करने नहीं जाते थे। लोग तो समझते थे कि इनकी गङ्गाजीमें भक्ति नहीं है, किन्तु उनके हृदयमें गङ्गामाताके प्रति अनन्य श्रद्धा थी, वे इस भयसे स्नान करने नहीं जाते थे कि माताके जलसे पादस्पर्श हो जायगा। लोगोंको गङ्गाजीमें मल-मूत्र तथा अस्थि फेंकते, तैल-फुलेल लगाते और बाल फेंकते देखकर उन्हें बड़ा ही मार्मिक दुःख होता था। देवार्चनसे पूर्व ही वे गङ्गाजल पान करते, इस प्रकार उनकी सभी बातें लोकबाह्य ही थीं। इसीलिये लोग उन्हें घोर संसारी कहकर उनकी सदा उपेक्षा ही करते रहते।

एक दिन प्रभु भावावेशमें आकर जोरोंसे 'हा पुण्डरीक विद्यानिधि', 'ओ मेरे बाप विद्यानिधि' कहकर जोरोंसे रुदन करने लगे। 'पुण्डरीक', 'पुण्डरीक' कहते-कहते वे अधीर हो उठे और बेहोश होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। भक्त आपसमें एक-दूसरेकी ओर देखने लगे। सभीको विस्मय हुआ। पहिले तो भक्तोंने समझा 'पुण्डरीक' कहनेसे प्रभुका अभिप्राय श्रीकृष्णसे ही है, फिर जब पुण्डरीकके साथ विद्यानिधि पदपर ध्यान दिया, तब उन्होंने अनुमान लगाया, हो-न-हो इस नामके कोई भक्त हैं। बहुत सोचनेपर भी नवद्वीपमें 'पुण्डरीक विद्यानिधि' नामके किसी वैष्णव भक्तका स्मरण उन लोगोंको नहीं आया। थोड़ी देरके अनन्तर जब प्रभुकी मूर्छा भंग हुई तो भक्तोंने नम्रतापूर्वक पूछा—'प्रभु जिनका नाम ले-लेकर जोरोंसे रुदन कर रहे थे, वे भाग्यवान् पुण्डरीक विद्यानिधि कौन परम भागवत महाशय हैं?'

प्रभुने गम्भीरताके साथ कहा—'वे एक परम प्रच्छन्न वैष्णव भक्त हैं, आपलोग उन्हें देखकर नहीं जान सकते कि ये वैष्णव हैं, उनके बाह्य आचार-विचार प्रायः सांसारिक विषयी पुरुषोंके-से हैं। वे चटगाँव-निवासी एक परम कुलीन ब्राह्मण हैं, उनका एक घर शान्तिपुरमें भी है, गङ्गासेवनके निमित्त वे कभी-कभी चटगाँवसे शान्तिपुर भी आ जाते हैं, वे मेरे अत्यन्त ही प्रिय भक्त हैं। वे मेरे आन्तरिक सुहृद् हैं, उनके दर्शनके बिना मैं अधीर हूँ। वह कौन-सा सुदिवस होगा जब मैं उन्हें प्रेमसे आलिङ्गन करके रुदन करूँगा ?' प्रभुकी ऐसी बात सुनकर सभीको परम प्रसन्नता हुई और सब-के-सब पुण्डरीक विद्यानिधिके दर्शनके लिये परम उत्सुकता प्रकट करने लगे। सबने अनुमान लगा लिया कि जब प्रभु उनके लिये इस प्रकार रुदन करते हैं, तो वे शीघ्र ही नवद्वीपमें आनेवाले हैं। प्रभुके स्मरण करनेपर अपने घरमें ठहर ही कौन सकता है, इसीलिये सब भक्त विद्यानिधिके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे।

एक दिन चुपचाप पुण्डरीक महाशय नवद्वीप पधारे। किसीको भी उनके आनेका पता नहीं चला। बहुत-से भक्तोंने उन्हें देखा भी, किन्तु उन्हें देखकर कौन अनुमान लगा सकता था कि ये परम भागवत वैष्णव हैं ? भक्तोंने उन्हें कोई सांसारिक धनी-मानी पुरुष ही समझा, इसीलिये भक्त उनके आगमनसे अपरिचित ही रहे।

पाठकोंको मुकुन्द दत्तका नाम स्मरण ही होगा। ये चटगाँवनिवासी एक परम भागवत वैष्णव विद्यार्थी थे, इनका कण्ठ बड़ा ही सुमधुर था। अद्वैताचार्यके समीप ये अध्ययन करते थे और उनकी सत्सङ्ग-सभामें अपने मनोहर गायनसे भक्तोंको आनन्दित किया करते थे। जबसे प्रभुका प्रकाश हुआ है, तबसे वे इन्हींकी शरणमें आ गये हैं और प्रभुके साथ मिलकर श्रीकृष्ण-कथा और संकीर्तनमें ही सदा संलग्न रहते हैं। विद्या-

निधि इनके गाँवके ही थे ? दोनों ही समवयस्क तथा परस्परमें एक-दूसरे-से भलीभाँति परिचित थे। मुकुन्द दत्त और वासुदेव पण्डित ही विद्यानिधिके भक्तिभावको जानते थे। प्रभुके परम अन्तरङ्ग भक्त गदाधरसे मुकुन्द बड़ा ही स्नेह करते थे। इसलिये एक दिन एकान्तमें उनसे बोले—'गदाधर ! आजकल नवद्वीपमें एक परम भागवत वैष्णव ठहरे हुए हैं, चलो, उनके दर्शन कर आवें।'

प्रसन्नता प्रकट करते हुए गदाधरने कहा—'वाह ! इससे बढ़कर और अच्छी बात क्या हो सकती है ? भगवत्-भक्तोंके दर्शन तो भगवान्‌के समान ही हैं। अवश्य चलिये, जिनकी आप प्रशंसा करते हैं, वे कोई महान् ही भागवत वैष्णव होंगे !' यह कहकर दोनों मित्र विद्यानिधिके समीप चल दिये। विद्यानिधि नवद्वीपके एक सुन्दर भवनमें ठहरे हुए थे। उनका रहनेका स्थान खूब साफ था। उसमें एक बहुत ही बढ़िया शय्या पड़ी हुई थी, उसके चारों पाये व्याघ्र-मुखकी भाँति कई मूल्यवान् धातुओंके बने हुए थे, उसके ऊपर बड़ा ही सुकोमल बिस्तर बिछा था। पुण्डरीक महाशय स्नान-ध्यानसे निवृत्त होकर उस शय्यापर आधे लेटे हुए थे। उनके विस्तृत ललाटपर सुन्दर सुगन्धित चन्दन लगा हुआ था, बीचमें एक बड़ी ही बढ़िया लाल बिंदी लगी हुई थी। सिरके घुँघराले बाल बढ़िया-बढ़िया सुगन्धित तैल डालकर विचित्र ही भाँतिसे सजाये हुए थे, कई प्रकारके मसालेदार पानको वे धीरे-धीरे चबा रहे थे, पानकी लालीसे उनके कोमल पल्लवोंके समान दोनों अरुण अधर और भी अधिक लाल हो गये थे। सामने दो पीकदान रखे थे। और भी बहुत-से बहुमूल्य सुन्दर बर्तन इधर-उधर रखे थे। दो नौकर मयूरपिच्छके कोमल पंखोंसे उनको हवा कर रहे थे। देखनेमें बिलकुल राजकुमार-से ही मालूम पड़ते थे। गदाधरको साथ लिये हुए मुकुन्द दत्त उनके समीप पहुँचे और दोनों ही प्रणाम करके उनके बताये हुए सुन्दर आसनपर बैठ गये। मुकुन्द

दत्तके आगमनसे प्रसन्नता प्रकट करते हुए पुण्डरीक महाशय कहने लगे—'आज तो बड़ा ही शुभ दिन है, जो आपके दर्शन हुए। आप नवद्वीपमें ही हैं, इसका मुझे पता तो था, किन्तु आपसे अभीतक भेंट नहीं कर सका। आपसे भेंट करनेकी बात सोच ही रहा था, सो आपने स्वयं ही दर्शन दिये। आपके जो ये साथी हैं, उनका परिचय दीजिये।'

मुकुन्द दत्तने शिष्टाचार प्रदर्शित करते हुए गदाधरका परिचय दिया—'ये परम भागवत वैष्णव हैं। बाल्यकालसे ही संसारी विषयोंसे एकदम विरक्त हैं, आप मिश्रवंशावतंस पं० माधवजीके सुपुत्र हैं और महाप्रभुके परम कृपापात्र भक्तोंमेंसे प्रधान अन्तरङ्ग भक्त हैं।'

गदाधरजीकी प्रशंसा सुनकर पुण्डरीक महाशयने परम प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहा—'आपके कारण इनके भी दर्शन हो गये।' इतना कहकर विद्यानिधि महाशय मुस्कुराने लगे। गदाधर तो जन्मसे ही विरक्त थे। वे पुण्डरीक महाशयके रहन-सहन और ठाट-बाटको देखकर विस्मित-से हो गये। उन्हें सन्देह होने लगा कि ऐसा विषयी मनुष्य किस प्रकार भगवत्भक्त हो सकता है? जो सदा विषय-सेवनमें ही निमग्न रहता है, वह भगवद्भक्ति कर ही कैसे सकता है?

मुकुन्द दत्त श्रीगदाधरके मनोभावको ताड़ गये, इसीलिये उन्होंने पुण्डरीक महाशयके भीतरी भावोंको प्रकट करानेके निमित्त श्रीमद्भागवतके दो बड़े ही मार्मिक श्लोकोंका अपने सुकोमल कण्ठसे स्वर और लयके साथ धीरे-धीरे गायन किया। उनमें परमकृपालु श्रीकृष्णकी अहैतुकी कृपाका बड़ा ही मार्मिक वर्णन है। वे श्लोक सम्पूर्ण भागवतके दो परम उज्ज्वल रत्न समझे जाते हैं—वे श्लोक ये थे—

अहो बकी यं स्तनकालकूटं
जिघांसयापाययदप्यसाध्वी।

लेभे गतिं धात्र्युचितां ततोऽन्यं
कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥*

(३ । २ । २३)

पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना ।
जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाप सद्‌गतिम् ॥†

(१० । ६ । ३५)

मुकुन्द दत्तके मुखसे इन श्लोकोंको सुनते ही विद्यानिधि महाशय मूर्छित होकर शय्यासे नीचे गिर पड़े। एक क्षण पहले जो खूब सजे-बजे बैठे हँस रहे थे, दूसरे ही क्षण श्लोक सुननेसे उनकी विचित्र हालत हो गयी। उनके शरीरमें स्वेद, कम्प, अश्रु, विकृति आदि सभी सात्त्विक विकार एक साथ उदय हो उठे। वे जोरोंके साथ रुदन करने लगे। उनके दोनों नेत्रोंमेंसे निरन्तर दो जल-धारा-सी बह रही थी। घुँघराले कढ़े हुए केश इधर-उधर बिखर गये। सम्पूर्ण शरीर धूलि-धूसरित-सा हो गया। दोनों हाथोंसे वे अपने रेशमी वस्त्रोंको चीरते हुए जोर-जोरसे मुकुन्दसे कहने लगे—'भैया! फिर पढ़ो, फिर पढ़ो। इस अपने सुमधुर गायनसे मेरे कर्णरन्ध्रोंमें फिरसे अमृत-सिञ्चन कर दो।' मुकुन्द फिर उसी लयसे स्वरके साथ श्लोक-

---

* अहो कितने आश्चर्यकी बात है, दुष्ट स्वभाववाली पूतना अपने स्तनोंमें कालकूट विष लगाकर, उन्हें मारनेकी इच्छासे आयी थी और इसी असद्विचारसे उसने भगवान्‌को स्तन-पान कराया था। उस ऐसे क्रूर-कर्मवालीको भी प्रभुने अपनी पालन-पोषण करनेवाली माताके समान सद्‌गति प्रदान की। ऐसे परम कृपालु भगवान्‌को छोड़कर और किसकी शरणमें हमलोग जायँ?

† पूतना लोगोंके बालकोंको मारनेवाली, रुधिरको पीनेवाली नीच योनिकी राक्षसी थी। वह मारनेकी इच्छा रखकर स्तन पिलानेसे भी सद्‌गतिको प्राप्त हो गयी। (अर्थात् दुष्टबुद्धिसे भगवत्-संसर्गका इतना माहात्म्य है, फिर जो श्रद्धा-बुद्धिसे उनका स्मरण-पूजन करते हैं उनका तो कहना ही क्या!)

पाठ करने लगे, वे ज्यों-ज्यों श्लोक-पाठ करते, त्यों-ही-त्यों पुण्डरीक महाशयकी बेकली और बढ़ती जाती थी। वे पुनः-पुनः श्लोक पढ़नेके लिये आग्रह करने लगे, किन्तु उनके साथियोंने उन्हें श्लोक-पाठ करनेसे रोक दिया। पुण्डरीक विद्यानिधि बेहोश पड़े हुए अश्रु बहा रहे थे।

इनकी ऐसी दशा देखकर गदाधरके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा। क्षणभर पहले जिन्हें वे संसारी विषयी समझ रहे थे, उन्हें अब इस प्रकार प्रेममें पागलोंकी भाँति प्रलाप करते देखकर वे भौंचक्के-से रह गये। उनके त्याग, वैराग्य और उपरतिके भाव न जाने कहाँ विलीन हो गये, अपनेको बार-बार धिक्कार देने लगे कि ऐसे परम वैष्णवके प्रति मैंने ऐसे कलुषित विचार रखकर घोर पाप किया है। वे मन-ही-मन अपने पाप-का प्रायश्चित्त सोचने लगे। अन्तमें उन्होंने निश्चय किया कि वैसे तो हमारा यह अपराध अक्षम्य है। भगवदपराध तो क्षम्य हो भी सकता है, किन्तु वैष्णवापराध तो सर्वदा अक्षम्य है। इसके प्रायश्चित्तका एक ही उपाय है। हम इनसे मन्त्रदीक्षा ले लें, इनके शिष्य बन जायँ, तो गुरु-भावसे ये स्वयं ही क्षमा कर देंगे। ऐसा निश्चय करके इन्होंने अपना भाव मुकुन्द दत्तके सम्मुख प्रकट किया। इनके ऐसे विशुद्ध भावको समझकर मुकुन्द दत्तको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने इनके विमल भावकी सराहना की।

बहुत देरके अनन्तर पुण्डरीक महाशय प्रकृतिस्थ हुए। सेवकोंने उनके शरीरको झाड़-पोंछकर ठीक किया। शीतल जलसे हाथ-मुँह धोकर वे चुपचाप बैठ गये। तब विनीत भावसे मुकुन्दने कहा— 'महाशय! ये गदाधर पण्डित कुलीन ब्राह्मण हैं, सत्पात्र हैं, परम भागवत वैष्णव हैं। इनकी हार्दिक इच्छा है कि ये आपके द्वारा मन्त्र ग्रहण करें। इनके लिये क्या आज्ञा होती है?

कुछ संकोच और नम्रताके साथ विद्यानिधि महाशयने कहा—'ये तो स्वयं ही वैष्णव हैं, हममें इतनी योग्यता कहाँ है, जो इन्हें मन्त्र-दीक्षा दे सकें? ये तो स्वयं ही हमारे पूज्य हैं।'

मुकुन्द दत्तने अत्यन्त ही दीनताके साथ कहा—'इनकी ऐसी ही इच्छा है। यदि आप इनकी इस प्रार्थनाको स्वीकार न करेंगे तो इन्हें बड़ा भारी हार्दिक दुःख होगा। आप तो कृपालु हैं, दूसरेको दुखी देखना ही नहीं चाहते। अतः इनकी यह प्रार्थना अवश्य स्वीकार कीजिये।'

मुकुन्द दत्तके अत्यधिक आग्रह करनेपर इन्होंने मन्त्र-दीक्षा देना स्वीकार कर लिया और दीक्षाके लिये उसी दिन एक शुभ मुहूर्त भी बता दिया। इस बातसे दोनों मित्रोंको बड़ी प्रसन्नता हुई और वे बहुत रात्रि बीतनेपर प्रेममें निमग्न हुए अपने-अपने स्थानोंके लिये लौट आये।

इसके दूसरे-तीसरे दिन गुप्तभावसे पुण्डरीक महाशय अकेले ही एकान्तमें प्रभुके दर्शनोंके लिये गये। प्रभुको देखते ही ये उनके चरणोंमें लिपटकर फूट-फूटकर रुदन करने लगे। विद्यानिधिको अपने चरणोंमें पड़े हुए देखकर प्रभु मारे प्रेमके बेसुध-से हो गये। उन्होंने पुण्डरीक विद्यानिधिका जोरोंके साथ आलिङ्गन किया। पुण्डरीकके मिलनेसे उनके आनन्दका पारावार नहीं रहा। उस समय उनकी आँखोंसे अविरल अश्रु प्रवाहित हो रहे थे। सम्पूर्ण शरीर पुलकित हो रहा था। वे पुण्डरीककी गोदीमें अपना सिर रखकर रुदन कर रहे थे, इस प्रकार दो प्रहरतक विद्यानिधिके वक्षःस्थलपर सिर रखे निरन्तर रुदन करते रहे। पुण्डरीक महाशयके सभी वस्त्र प्रभुके अश्रुओंसे भीग गये थे। पुण्डरीक भी प्रेममें बेसुध हुए चुपचाप प्रभुके मुखकमलकी ओर एकटक दृष्टिसे देख रहे थे। उन्हें समयका कुछ ज्ञान ही नहीं रहा कि कितना समय बीत गया है। दोपहरके अनन्तर प्रभुको ही कुछ-कुछ होश हुआ। उन्होंने उसी समय भक्तोंको बुलाया और

सभीसे पुण्डरीक महाशयका परिचय कराया। पुण्डरीक महाशयका परिचय पाकर सभी भक्त परम संतुष्ट हुए और अपने भाग्यकी सराहना करने लगे। विद्यानिधिने अद्वैत आदि सभी भक्तोंकी पदधूलि लेकर अपने मस्तकपर चढ़ायी और सभीको श्रद्धा-भक्तिके साथ प्रणाम किया। इसके अनन्तर पुण्डरीकको बीचमें करके सभी भक्त चारों ओरसे संकीर्तन करने लगे। श्रीकृष्ण-संकीर्तनको सुनकर पुण्डरीक महाशय फिर बेहोश हो गये। भक्तोंने संकीर्तन बंद कर दिया और भाँति-भाँतिके उपचारोंद्वारा पुण्डरीकको होशमें किया। कुछ सावधान होनेपर प्रभुकी आज्ञा लेकर पुण्डरीक अपने स्थानके लिये चले गये।

शामको आकर गदाधरने पुण्डरीकके समीपसे मन्त्र-दीक्षा लेनेकी अपनी इच्छा प्रभुके सम्मुख प्रकट की। इस बातको सुनकर प्रभु अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और गदाधरसे कहने लगे—'गदाधर! ऐसा सुयोग तुम्हें फिर कभी नहीं मिलेगा। पुण्डरीक-जैसा भगवद्भक्तका मिलना अत्यन्त ही दुर्लभ है। तुम इस काममें अब अधिक देरी मत करो। यह शुभ काम जितना ही शीघ्र हो जाय उतना ही ठीक है।'

प्रभुकी आज्ञा पाकर नियत शुभ तिथिके दिन गदाधरजीने विद्यानिधिसे मन्त्र-दीक्षा ले ली।

जिनके लिये महाप्रभु गौराङ्ग स्वयं रुदन करते हों, जिनकी प्रशंसा करते-करते प्रभु अधीर हो जाते हों, गदाधर-जैसे परम त्यागी और महान् भक्त जिनके शिष्य बननेमें अपना सौभाग्य समझते हों ऐसे भक्ताग्रगण्य श्रीपुण्डरीक विद्यानिधिकी विशद विरुदावलीका बखान कौन कर सकता है? सचमुच विद्यानिधिकी भक्ति परम शुद्ध और सात्त्विक कही जा सकती है, जिसमें देखावट या बनावटीपनका लेश भी नहीं था। ऐसे प्रच्छन्न भक्तोंकी पदधूलिसे पापी-से-पापी पुरुष भी परम पावन बन सकता है।

निमाई और निताईकी प्रेम-लीला

अवतीर्णौ सकारुण्यौ परिच्छिन्नौ सदीश्वरौ।
श्रीकृष्णचैतन्यनित्यानन्दौ द्वौ भ्रातरौ भजे ॥*

(श्रीमुरारिगुप्तस्य)

आनन्दका मुख्य कारण है आत्मसमर्पण। जबतक मनुष्य किसीके प्रति सर्वतोभावेन आत्मसमर्पण नहीं कर देता, तबतक उसे पूर्ण प्रेमकी प्राप्ति हो ही नहीं सकती। प्रभु विश्वम्भर तो चराचरमें व्याप्त हैं। अपूर्णभावसे नहीं, सभी स्थानोंमें वे अपनी पूर्ण शक्तिसहित ही स्थित हैं, जहाँ तुम्हारा चित्त चाहे, जिस रूपमें मन रमे, उसीके प्रति आत्मसमर्पण कर दो। अपनेपनको एकदम मिटा दो। अपनी इच्छा, अपनी भावना और अपनी सभी चेष्टाएँ प्यारेके ही निमित्त हों। सब तरहसे किसीके होकर रहो, तभी प्रेमका यथार्थ मर्म सीख सकोगे। किसी कविने क्या ही बढ़िया बात कही है—

न हम कुछ हँसके सीखे हैं, न हम कुछ रोके सीखे हैं।
जो कुछ थोड़ा-सा सीखे हैं, किसीके होके सीखे हैं॥

अहा, किसीके होकर रहनेमें कितना मजा है, अपनी सभी बातोंका भार किसीके ऊपर छोड़ देनेमें कैसा निश्चिन्तताजन्य सुख है, उसे अपनेको ही कर्ता माननेवाला पुरुष कैसे अनुभव कर सकता है? जिसे अपने हाथपैरोंसे कमाकर खानेका अभिमान है, वह उस छोटे शिशुके सुखको क्या समझ सकता है, जिसे भूख-प्यास तथा सुख-दुःखमें एकमात्र माताकी क्रोडका ही सहारा है और जो आवश्यकता पड़नेपर रोनेके अतिरिक्त और

---

* प्राणियोंके प्रति अपनी अहैतुकी कृपाको ही प्रकट करनेके निमित्त ईश्वर होनेपर भी जो दोनों भिन्न भावसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए हैं, उन निमाई और निताई दोनों भाइयोंकी हम चरण वन्दना करते हैं।

कुछ जानता ही नहीं? माता चाहे कहीं भी रहे, उसे अपने उस मुनमुनासे बच्चेका हर समय ध्यान ही बना रहता है, उसके सुख-दुःखका अनुभव माता स्वयं अपने शरीरमें करती है। नित्यानन्दजीने भी प्रभुके प्रति आत्मसमर्पण कर दिया और महाप्रभु श्रीवासके भी सर्वस्व थे। प्रभु दोनोंके ही उपास्यदेव थे, किन्तु नित्यानन्द तो उनके बाहरी प्राण ही थे।

नित्यानन्दजी श्रीवास पण्डितके ही घर रहते। उनकी पत्नी मालिनीदेवी तथा वे स्वयं इन्हें पुत्रसे भी बढ़कर प्यार करते। नित्यानन्दजी सदा बाल्यभावमें ही रहते। वे अपने हाथसे भोजन नहीं करते, तब मालिनीदेवी अपने हाथोंसे इन्हें भात खिलातीं। कभी खाते-खाते ही बीचमेंसे भाग जाते और दालभातको सम्पूर्ण शरीरपर लपेट लेते। भोजन करके बालकोंकी भाँति घूमते रहना ही इनका काम था। कभी मुरारी गुप्तके घर जाते, कभी गङ्गादासजीकी पाठशालामें ही जा बैठते। कभी किसीके यहाँसे कोई चीज ही लेकर खाने लगते। कभी महाप्रभुके ही घर जाते और बाल्यभावसे शचीमाताके पैरोंको पकड़ लेते। माता इनकी चञ्चलतासे डरकर कभी-कभी भीतर घरमें भाग जातीं। इस प्रकार ये भक्तोंके घरोंमें नाना भाँतिकी बाल्यलीलाओंका अभिनय करने लगे।

एक दिन प्रभुने श्रीवास पण्डितकी परीक्षा करनेके निमित्त तथा यह जाननेके लिये कि श्रीवासका नित्यानन्दजीके प्रति कितना हार्दिक स्नेह है, उन्हें एकान्तमें ले जाकर पूछने लगे—'पण्डितजी! इन अवधूत नित्यानन्दजीके कुल, गोत्र तथा जाति आदिका कुछ भी पता नहीं। इस अज्ञातकुलशील अवधूतको आपने अपने घरमें स्थान देकर कुछ उचित काम नहीं किया। आप इन्हें पुत्रकी तरह प्यार करते हैं। कौन जाने ये कैसे हैं? इसलिये आपको इन्हें अपने घरमें पुत्रकी तरह

नहीं रखना चाहिये। ये साधुओंकी तरह गङ्गा-किनारे या कहीं घाटपर रहें और माँगें खायँ। साधुको किसीके घर रहनेसे क्या काम? इस विषयमें आपके क्या विचार हैं? क्या आप मुझसे सहमत हैं?'

प्रभुकी ऐसी बात सुनकर गद्गद-कण्ठसे श्रीवास पण्डितने अत्यन्त ही दीनताके साथ कहा—'प्रभो! आपको हमारी इस प्रकारसे परीक्षा करना ठीक नहीं। हम संसारी वासनाओंमें आबद्ध पामर प्राणी भला प्रभुकी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण ही कैसे हो सकते हैं? जबतक प्रभु स्वयं कृपा न करें तबतक तो हम सदा अनुत्तीर्ण ही होते रहेंगे। मैं यह खूब जानता हूँ कि नित्यानन्दजी प्रभुके बाह्य प्राण ही नहीं, किन्तु अभिन्न विग्रह भी हैं। प्रभु उन्हें भिन्न-से प्रतीत होनेपर भी भिन्न नहीं समझते। जो प्रभुके इतने प्रिय हैं वे नित्यानन्दजी यदि शराब पीकर अगम्यागमन भी करें और मुझे धर्म-भ्रष्ट भी कर दें तब भी मुझे उनके प्रति घृणा नहीं होगी। नित्यानन्दजीको मैं प्रभुका ही स्वरूप समझता हूँ।' इतना कहकर श्रीवास पण्डित प्रभुके पादपद्मोंको पकड़कर फूट-फूटकर रोने लगे। प्रभुने उन्हें अपने कोमल करोंसे उठाया और प्रेमालिङ्गन करते हुए कहने लगे—'श्रीवास! तुमने ऐसा उत्तर देकर सचमुचमें मुझे खरीद लिया। इस उत्तरसे मैं तुम्हारा क्रीतदास बन गया। मैं तुमसे अत्यन्त ही सन्तुष्ट हुआ। मेरा यह आशीर्वाद है कि किसी भी दशामें तुम्हें किसी आवश्यकीय वस्तुका घाटा नहीं होगा और तुम्हारे घरके कुत्तेतकको श्रीकृष्ण-प्रेमकी प्राप्ति हो सकेगी। तुम्हारा मेरे प्रति ऐसा अनन्य अनुराग है, इसका पता मुझे आज ही चला।' इतना कहकर प्रभु अपने घरको चले गये।

एक दिन प्रभुने शचीमातासे कहा—'माँ! मेरी इच्छा है आज नित्यानन्दजीको अपने घर भोजन करावें। तू आज अपने हाथोंसे बढ़िया-बढ़िया भोजन बनावें और हम दोनों भाइयोंको चौकेमें बिठाकर स्वयं परोसकर खिलावे, यही मेरी इच्छा है।'

प्रभुकी ऐसी बात सुनकर शचीमाताको परम प्रसन्नता हुई और वे जल्दीसे भोजन बनानेके लिये उद्यत हो गयीं। इधर प्रभु श्रीवास पण्डितके घर निताईको लिवानेके लिये चले। श्रीवासके घर पहुँचकर प्रभुने नित्यानन्दजीसे कहा—'श्रीपाद! आज आपका हमारे घर निमन्त्रण है। चलो, आज हम-आप साथ-ही-साथ भोजन करेंगे।' इतना सुनते ही नित्यानन्दजी बालकोंकी भाँति आनन्दमें उछल-उछलकर नृत्य करने लगे और नृत्य करते-करते कहते जाते थे—'अहा रे, लालके, खूब बनेगी, शचीमाताके हाथका भात खायँगे, मौज उड़ायँगे, प्रभुको खूब छकायँगे, कुछ खायँगे कुछ शरीरमें लगायँगे।'

प्रभुने इन्हें ऐसी चञ्चलता करते देखकर मीठी-सी डाँट देते हुए प्रेमपूर्वक कहा—'देखना खबरदार, वहाँ ऐसी चञ्चलता मत करना। माता आपकी चञ्चलतासे बहुत घबड़ाती है, वह डर जायगी। वहाँ चुपचाप ठीक तरहसे भोजन करना।'

प्रभुकी प्रेममिश्रित मीठी डाँटको सुनकर बालकोंकी भाँति चौंककर और बनावटी गम्भीरता धारण करके कानोंपर हाथ रखते हुए नित्यानन्दजी कहने लगे—'बाप रे! चञ्चलता! चञ्चलता कैसी? हम तो चञ्चलता जानतेतक नहीं। चञ्चलता तो पागललोग किया करते हैं, हम क्या पागल हैं जो चञ्चलता करेंगे?'

इन्हें इस प्रकार स्वाँग करते देखकर प्रभुने इनकी पीठपर एक हलकी-सी धाप जमाते हुए कहा—'अच्छा चलिये, देर करनेका काम नहीं। यह तो हम जानते हैं कि आप अपनी आदतको कहीं छोड़ थोड़े ही देंगे, किन्तु देखना वहाँ जरा सम्हलकर रहना।' यह कहते-कहते दोनों भाई आपसमें प्रेमकी बातें करते हुए घर पहुँचे। माता भोजन बना ही रही थीं कि ये दोनों पहुँच गये। पहुँचते ही नित्यानन्दजीने बालकोंकी

भाँति बड़े जोरसे कहा—'अम्मा ! बड़ी भूख लग रही है। पेटमें चूहे-से कूद रहे हैं। अभी कितनी देर है, मेरे तो भूखके कारण प्राण निकले जा रहे हैं।' प्रभुने इन्हें संकेतसे ऐसा न करनेको कहा। तब आप फिर उसी तरह जोरोंसे कहने लगे—'देख अम्मा ! गौर मुझे रोक रहे हैं, भला भूख लगनेपर भोजन भी न माँगूँ ?' माता इनकी ऐसी भोली-भाली बातें सुनकर हँसने लगीं। उन्होंने जल्दीसे दो थालियोंमें भोजन परोसा। विष्णुप्रियाजीने दोनोंके हाथ-पैर धुलाये। हाथ-पैर धोकर दोनों भोजन करने बैठे। माता प्रेमसे अपने दोनों पुत्रोंको परोसने लगीं। प्रभुके साथमें और भी उनके दो-चार अन्तरङ्ग भक्त आ गये थे। वे उन दोनों भाइयोंको इस प्रकार प्रेमपूर्वक भोजन करते देख प्रेमसागरमें आनन्दके साथ गोते लगाने लगे। दोनों भाइयोंको भोजन कराते हुए माता ऐसी प्रतीत होने लगी मानो श्रीकौशल्याजी अपने श्रीराम और लक्ष्मण दोनों प्रिय पुत्रोंको भोजन करा रही हों अथवा यशोदा मैया श्रीकृष्ण-बलराम-को साथ ही बिठाकर छाक खिला रही हों। माताका अन्तःकरण उस समय प्रसन्नताके कारण अत्यन्त ही आनन्दित हो रहा था। उनका अगाध मातृ-प्रेम उमड़ा ही पड़ता था। दोनों भाई भोजन करते-करते भाँति-भाँतिकी विनोदपूर्ण बातें कहते जाते थे। भोजन करके प्रभु चुप-चाप बैठ गये, नित्यानन्दजी भोजन करते ही रहे। प्रभुकी थालीमें बहुत-सा भात बचा हुआ देखकर नित्यानन्दजी बोले—'यह क्यों छोड़ दिया है, इसे भी खाना होगा।' प्रभुने असमर्थता प्रकट करते हुए कहा—'बस, अब नहीं। अब तो बहुत पेट भर गया है।' प्रभुकी थालीमेंसे भातकी मुट्ठी भरते हुए नित्यानन्दजी कहने लगे—'अच्छा तुम मत खाओ मैं ही खाऊँगा।' यह कहकर प्रभुके उच्छिष्ट भात नित्यानन्दजी खाने लगे। प्रभुने जल्दीसे उनका हाथ पकड़ लिया। नित्यानन्दजी खाते-खाते ही चौकेसे उठकर भागने लगे। प्रभु भी उनका हाथ

पकड़े हुए उनके पीछे-पीछे दौड़ने लगे। इस प्रकार आँगनमें दोनोंमें ही गुत्थम-गुत्था होने लगी। नित्यानन्दजी उस भातको खा ही गये। शचीमाता इन दोनोंके ऐसे स्नेहको देखकर प्रेमके कारण बेहोश-सी हो गयीं, उन्हें प्रेमावेशमें मूर्छा-सी आ गयी। माताकी ऐसी दशा देखकर प्रभु जल्दीसे हाथ-पैर धोकर चौकेमें गये और माताको अपने हाथोंसे वायु करने लगे। कुछ देरके पश्चात् माताको होश आया। माताने प्रेमके आँसू बहाते हुए अपने दोनों पुत्रोंको आशीर्वाद दिया। माताका शुभाशीर्वाद पाकर दोनों ही परम प्रसन्न हुए और दोनोंने माताकी चरण-वन्दना की। नित्यानन्दजीको पहुँचानेके निमित्त प्रभु उनके साथ श्रीवासके घरतक गये।

इस प्रकार नित्यानन्दजी महाप्रभुकी सन्निधिमें रहकर अनिर्वचनीय सुखका रसास्वादन करने लगे। वे प्रभुके सदा साथ-ही-साथ लगे रहते। प्रभु जहाँ भी जाते, जिस भक्तके घर भी पधारते, नित्यानन्दजी उनके पीछे जरूर होते। महाप्रभुको भी नित्यानन्दजीके बिना कहीं जाना अच्छा नहीं लगता। सभी भक्त प्रभुको अपने-अपने घरोंपर बुलाते और अपनी-अपनी भावनाके अनुसार प्रभुके शरीरमें भाँति-भाँतिके अवतारोंके दर्शनोंका अनुभव करते। प्रभु भी भाँति-भाँतिकी लीला करते। कभी तो आप नृसिंहजीके आवेशमें आकर जोरोंसे हुंकार करने लगते। कभी प्रह्लादके भावमें दीन-हीन भक्तकी भाँति गद्गदकण्ठसे प्रभुकी स्तुति करने लगते। कभी आप श्रीकृष्णभावसे मथुरा जानेका अभिनय रचते और कभी अक्रूरके भावमें जोरोंसे रुदन करने लगते। कभी व्रजके ग्वालबालोंकी तरह क्रीड़ा करने लगते और कभी उद्धवकी भाँति प्रेममें अधीर होकर रोने लगते। इस प्रकार नित्यानन्दजी तथा अन्य भक्तोंके साथ नवद्वीपचन्द्र श्रीगौराङ्ग भाँति-भाँतिकी लीलाओंके सुप्रकाशद्वारा सम्पूर्ण नवद्वीपको अपने अमृतमय शीतल प्रकाशसे प्रकाशित करने लगे।

द्विविध-भाव

भगवद्भावेन यः शश्वद्भक्तभावेन चैव तत्।
भक्तानानन्दयते नित्यं तं चैतन्यं नमाम्यहम् ॥*

(प्र० द० ब्र०)

प्रत्येक प्राणीकी भावना भिन्न प्रकारकी होती है। अरण्यमें खिले हुए जिस मालतीके पुष्पको देखकर सहृदय कवि आनन्दमें विभोर होकर उछलने और नृत्य करने लगता है, जिस पुष्पमें वह विश्वके सम्पूर्ण सौन्दर्यका अनुभव करने लगता है, उसको ग्रामके चरवाहे रोज देखते हैं, उस ओर उनकी दृष्टितक नहीं जाती। उनके लिये उस पुष्पका अस्तित्व उतना ही है, जितना कि रास्तेमें पड़ी हुई काठ, पत्थर तथा अन्य सामान्य वस्तुओंका। उस पुष्पमें किसी भी प्रकारकी विशेष भावनाका आरोप नहीं करते। असलमें यह प्राणी भावमय है। जिसमें जैसे भाव होंगे उसे उस वस्तुमें वे ही भाव दृष्टिगोचर होंगे। इसी भावको लेकर तो गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी॥

महाप्रभुके शरीरमें भी भक्त अपनी-अपनी भावनाके अनुसार नाना रूपोंके दर्शन करने लगे। कोई तो प्रभुको वराहके रूपमें देखता, कोई उनके शरीरमें नृसिंहरूपके दर्शन करता, कोई वामन भावका अध्यारोप करता। किसीको प्रभुकी मूर्ति श्यामसुन्दररूपमें दिखायी देती, किसीको षड्भुजी मूर्तिके दर्शन होते। कोई प्रभुके इस शरीरको न देखकर उन्हें चतुर्भुजरूपसे देखता और उनके चारों

---

* जो निरन्तर भक्त-भाव और भगवत्-भाव इन दोनों भावोंसे भक्तोंको आनन्दित बनाते रहते हैं, उन श्रीचैतन्य महाप्रभुके लिये हम नमस्कार करते हैं।

हस्तोंमें उसे प्रत्यक्ष शंख, चक्र, गदा और पद्म दिखायी देते। इस प्रकार एक ही प्रभुके श्रीविग्रहको भक्त भिन्न-भिन्न प्रकारसे देखने लगे। जिसे प्रभुके चतुर्भुज रूपके दर्शन होते, उसे ही प्रभुकी चारों भुजाएँ दीखतीं, अन्य लोगोंको वही उनका सामान्य रूप दिखायी देता। जिसे प्रभुका शरीर ज्योतिर्मय दिखायी देता और प्रकाशके अतिरिक्त उसे प्रभुकी और मूर्ति दिखायी ही नहीं देती, उसीकी आँखोंमें वह प्रकाश छा जाता, साधारणतः सामान्य लोगोंको वह प्रकाश नहीं दीखता, उन लोगोंको प्रभुके उसी गौररूपके दर्शन होते रहते।

सामान्यतया प्रभुके शरीरमें भगवत्-भाव और भक्त-भाव ये दो ही भाव भक्तोंको दृष्टिगोचर होते। जब इन्हें भगवत्-भाव होता, तब ये अपने आपको बिलकुल भूल जाते, निःसङ्कोच-भावसे देवमूर्तियोंको हटाकर स्वयं भगवान्के सिंहासनपर विराजमान हो जाते और अपनेको भगवान् कहने लगते। उस अवस्थामें भक्तवृन्द उनकी भगवान्की तरह विधिवत् पूजा करते, इनके चरणोंको गङ्गा-जलसे धोते, पैरोंपर पुष्प-चन्दन तथा तुलसीपत्र चढ़ाते। भाँति-भाँतिके उपहार इनके सामने रखते। उस समय ये इन कामोंमें कुछ भी आपत्ति नहीं करते, यही नहीं किन्तु बड़ी ही प्रसन्नतापूर्वक भक्तोंकी की हुई पूजाको ग्रहण करते और उनसे आशीर्वाद माँगनेका भी आग्रह करते और उन्हें इच्छानुसार वरदान भी देते। यही बात नहीं कि ऐसा भाव इन्हें भगवान्का ही आवे, नाना देवी-देवताओंका भाव भी आ जाता था। कभी तो बलदेवके भावमें लाल-लाल आँखें करके जोरोंसे हुंकार करते और 'मदिरा-मदिरा' कहकर शराब माँगते, कभी इन्द्रके आवेशमें आकर वज्रको घुमाने लगते। कभी सुदर्शन-चक्रका आह्वान करने लगते।

एक दिन एक जोगी बड़े ही सुमधुर स्वरसे डमरू बजाकर शिवजीके गीत गा-गाकर भिक्षा माँग रहा था। भीख माँगते-माँगते वह इनके

भी घर आया। शिवजीके गीतोंको सुनकर इन्हें महादेवजीका भाव आ गया और अपनी लटोंको बखेरकर शिवजीके भावमें उस गानेवालेके कन्धेपर चढ़ गये और जोरोंके साथ कहने लगे—'मैं ही शिव हूँ, मैं ही शिव हूँ। तुम वरदान माँगो, मैं तुम्हारी स्तुतिसे बहुत प्रसन्न हूँ।' थोड़ी देरके अनन्तर जब इनका वह भाव समाप्त हो गया तो कुछ अचेतन-से होकर उसके कन्धेपरसे उतर पड़े और उसे यथेच्छ भिक्षा देकर विदा किया।

इस प्रकार भक्तोंको अपनी-अपनी भावनाके अनुसार नाना रूपोंके दर्शन होने लगे और इन्हें भी विभिन्न देवी-देवताओं तथा परम भक्तोंके भाव आने लगे। जब वह भाव शान्त हो जाता, तब ये उस भावमें कही हुई सभी बातोंको एकदम भूल जाते और एकदम दीन-हीन विनम्र भक्तकी भाँति आचरण करने लगते। तब इनका दीन-भाव पत्थर-से-पत्थर हृदयको भी पिघलानेवाला होता। उस समय ये अपनेको अत्यन्त ही दीन, अधम और तुच्छ बताकर जोरोंके साथ रुदन करते। भक्तोंका आलिङ्गन करके फूट-फूटकर रोने लगते और रोते-रोते कहते—'श्रीकृष्ण कहाँ चले गये? भैयाओ! मुझे श्रीकृष्णसे मिलाकर मेरे प्राणोंको शीतल कर दो। मेरी विरह-वेदनाको श्रीकृष्णका पता बताकर शान्ति प्रदान करो। मेरा मोहन मुझे बिलखता छोड़कर कहाँ चला गया?' इसी प्रकार प्रेममें विह्वल होकर अद्वैताचार्य आदि वृद्ध भक्तोंके पैरोंको पकड़ लेते और उनके पैरोंमें अपना माथा रगड़ने लगते। सबको बार-बार प्रणाम करते। यदि उस समय इनकी कोई पूजा करनेका प्रयत्न करता अथवा इन्हें भगवान् कह देता तो ये दुःखी होकर गङ्गाजीमें कूदनेके लिये दौड़ते। इसीलिये इनकी साधारण दशामें न तो इनकी कोई पूजा ही करता और न इन्हें भगवान् ही कहता। वैसे भक्तोंके मनमें सदा एक ही भाव रहता।

जब ये साधारण भावमें रहते, तब एक अमानी भक्तके समान श्रद्धा-भक्तिके सहित गङ्गाजीको साष्टाङ्ग प्रणाम करते, गङ्गाजलका आचमन करते, ठाकुरजीका विधिवत् पूजन करते तथा तुलसीजीको जल चढ़ाते और उनकी भक्तिभावसे प्रदक्षिणा करते। भगवत्-भावमें इन सभी बातोंको भुलाकर स्वयं ईश्वरीय आचरण करने लगते। भावावेशके अनन्तर यदि इनसे कोई कुछ पूछता तो बड़ी ही दीनताके साथ उत्तर देते—'भैया! हमें कुछ पता नहीं कि हम अचेतनावस्थामें न जाने क्या-क्या बक गये। आपलोग इन बातोंका कुछ बुरा न मानें। हमारे अपराधोंको क्षमा ही करते रहें, ऐसा आशीर्वाद दें, जिससे अचेतनावस्थामें भी हमारे मुखसे कोई ऐसी बात न निकलने पावे जिसके कारण हम आपके तथा श्रीकृष्णके सम्मुख अपराधी बनें।

संकीर्तनमें भी ये दो भावोंसे नृत्य करते। कभी तो भक्त-भावसे बड़ी ही सरलताके साथ नृत्य करते। उस समयका इनका नृत्य बड़ा ही मधुर होता। भक्तभावमें ये संकीर्तन करते-करते भक्तोंकी चरण-धूलि सिरपर चढ़ाते और उन्हें बार-बार प्रणाम करते। बीच-बीचमें पछाड़ें खा-खाकर गिर पड़ते। कभी-कभी तो इतने जोरोंके साथ गिरते कि सभी भक्त इनकी दशा देखकर घबड़ा जाते थे। शचीमाता तो कभी इन्हें इस प्रकार पछाड़ खाकर गिरते देख परम अधीर हो जातीं और रोते-रोते भगवान्‌से प्रार्थना करतीं कि 'हे अशरण-शरण! मेरे निमाई को इतना दुःख मत दो।' इसीलिये सभी भक्त संकीर्तनके समय इनकी बड़ी देख-रेख रखते और इन्हें चारों ओरसे पकड़े रहते कि कहीं मूर्छित होकर गिर न पड़ें।

कभी-कभी ये भावावेशमें आकर भी संकीर्तन करने लगते। तब इनका नृत्य बड़ा ही अद्भुत और अलौकिक होता था, उस समय इन्हें

स्पर्श करनेकी भक्तोंको हिम्मत नहीं होती थी, ये नृत्यके समयमें जोरोंसे हुंकार करने लगते। इनकी हुंकारसे दिशाएँ गूँजने लगतीं और पदाघातसे पृथ्वी हिलने-सी लगती। उस समय सभी कीर्तन करनेवाले भक्त विस्मित होकर एक प्रकारके आकर्षणमें खिंचे हुए-से मन्त्र-मुग्धकी भाँति सभी क्रियाओंको करते रहते। उन्हें बाह्यज्ञान बिलकुल रहता ही नहीं था। उस नृत्यसे सभीको बड़ा ही आनन्द प्राप्त होता था। इस प्रकार कभी-कभी तो नृत्य-संकीर्तन करते-करते पूरी रात्रि बीत जाती और खूब दिन भी निकल आता तो भी संकीर्तन समाप्त नहीं होता था।

एक-एक करके बहुत-से भावुक भक्त नवद्वीपमें आ-आकर वास करने लगे और श्रीवासके घर संकीर्तनमें आकर सम्मिलित होने लगे। धीरे-धीरे भक्तोंका एक अच्छा खासा परिकर बन गया। इनमें अद्वैताचार्य, नित्यानन्द प्रभु और हरिदास—ये तीन प्रधान भक्त समझे जाते थे। वैसे तो सभी प्रधान थे, भक्तोंमें प्रधान-अप्रधान भी क्या? किन्तु ये तीनों सर्वस्वत्यागी, परम विरक्त और महाप्रभुके बहुत ही अन्तरङ्ग भक्त थे। श्रीवासको छोड़कर इन्हीं तीनोंपर प्रभुकी अत्यन्त कृपा थी। इनके ही द्वारा वे अपना सब काम कराना चाहते थे। इनमेंसे श्रीअद्वैताचार्य और अवधूत नित्यानन्दजीका सामान्य परिचय तो पाठकोंको प्राप्त हो ही चुका है। अब भक्ताग्रगण्य श्रीहरिदासका संक्षिप्त परिचय तो पाठकोंको अगले अध्यायोंमें मिलेगा। इन महाभागवत वैष्णवशिरोमणि भक्तने नाम-जपका जितना माहात्म्य प्रकट किया है, उतना भगवन्नामका माहात्म्य किसीने प्रकट नहीं किया। इन्हें भगवन्नाम-माहात्म्यका सजीव अवतार ही समझना चाहिये।

भक्त हरिदास

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्
यज्जिह्वाग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ।
तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या
ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ये ते ॥*

(श्रीमद्भा० ३ । ३३ । ७)

जिनकी तनिक-सी कृपाकी कोरके ही कारण यह नाम-रूपात्मक सम्पूर्ण संसार स्थित है, जिनके भ्रूभङ्गमात्रसे ही त्रिगुणात्मिका प्रकृति

---

* अहा हा ! हे प्रभो ! जिसकी जिह्वापर तुम्हारा सुमधुर नाम सदा बना रहता है, वह यदि जातिका श्वपच भी हो तो उन ब्राह्मणोंसे भी अत्यन्त पवित्र है, जो तुम्हारे नामकी अवहेलना करके निरन्तर यज्ञ-यागादि कर्मोंमें ही लगे रहते हैं। हे भगवन् ! जो तुम्हारे त्रैलोक्य-पावन नामका संकीर्तन करते हैं, उन्होंने ही यथार्थमें सम्पूर्ण तपोंका, सस्वर वेदका, विधिवत् हवनका और सभी तीर्थोंका फल प्राप्त किया है, क्योंकि तुम्हारे पुण्य-नामोंमें सभी पुण्य-कर्मोंका फल निहित है।

अपना सभी कार्य बंद कर देती है, उन अखिलकोटि-ब्रह्माण्डनायक भगवान्‌के नाम-माहात्म्यका वर्णन बेचारी अपूर्ण भाषा कर ही क्या सकती है? हरि-नाम-स्मरणसे क्या नहीं हो सकता? भगवन्नाम-जपसे कौन-सा कार्य सिद्ध नहीं हो सकता? जिसकी जिह्वाको सुमधुर श्रीहरिके नामरूपी रसका चस्का लग गया है, उसके लिये फिर संसारमें प्राप्य वस्तु ही क्या रह जाती है? यज्ञ, याग, जप, तप, ध्यान, पूजा, निष्ठा, योग, समाधि सभीका फल भगवन्नाममें प्रीति होना ही है, यदि इन कर्मोंके करनेसे भगवन्नाममें प्रीति नहीं हुई, तो इन कर्मोंको व्यर्थ ही समझना चाहिये। इन सभी क्रियाओंका अन्तिम और सर्वश्रेष्ठ फल यही है कि भगवन्नाममें निष्ठा हो। साध्य तो भगवन्नाम ही है, और सभी कर्म तो उसके साधनमात्र हैं। नाम-जपमें देश, काल, पात्र, जाति, वर्ण, समय-असमय, शुचि-अशुचि इन सभी बातोंका विचार नहीं होता। तुम जैसी हालतमें हो, जहाँ हो, जैसे हो, जिस-किसी भी वर्णके हो, जैसी भी स्थितिमें हो, हर समय और हर कालमें श्रीहरिके सुमधुर नामोंका संकीर्तन कर सकते हो। नाम-जपसे पापी-से-पापी मनुष्य भी परम पावन बन जाता है, अत्यन्त नीच-से-नीच भी सर्वपूज्य समझा जाता है, छोटे-से-छोटा भी सर्वश्रेष्ठ हो जाता है और बुरे-से-बुरा भी महान् भगवद्भक्त बन जाता है। कबीरदासजी कहते हैं—

नाम जपत कुष्ठी भलो, चुइ-चुइ गिरै जो चाम।
कंचन देह किस कामकी, जिहि मुख नाहीं राम॥

भक्ताग्रगण्य महात्मा हरिदासजी यवन-कुलमें उत्पन्न होनेपर भी भगवन्नामके प्रभावसे भगवद्भक्त वैष्णवोंके प्रातःस्मरणीय बन गये। इन महात्माकी भगवन्नाममें अलौकिक निष्ठा थी।

महात्मा हरिदासजीका जन्म बंगालके यशोहर जिलेके अन्तर्गत 'बुड़न' नामके एक ग्राममें हुआ था। ये जातिके मुसलमान थे। मालूम

होता है, बाल्य-कालमें ही इनके माता-पिता इन्हें मातृ-पितृहीन बनाकर परलोकगामी बन गये थे, इसीलिये ये छोटेपनसे ही घर-द्वार छोड़कर निरन्तर हरि-नामका संकीर्तन करते हुए विचरने लगे। पूर्व-जन्मके कोई शुभ संस्कार ही थे, भगवान्‌की अनन्य कृपा थी, इसीलिये मुसलमान-वंशमें उत्पन्न होकर भी इनकी भगवन्नाममें स्वाभाविक ही निष्ठा जम गयी। भगवान्‌ने अनेकों बार कहा है—*'यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः'* अर्थात् जिसे मैं कृपा करके अपनी शरणमें लेता हूँ, सबसे पहले धीरेसे उसका सर्वस्व अपहरण कर लेता हूँ। उसके पास अपना कहनेके लिये किसी भी प्रकारका धन नहीं रहने देता। सबसे पहले भगवान्‌की इनके ऊपर यही एक बड़ी भारी कृपा हुई। अपना कहनेके लिये इनके पास एक काठका कमण्डलु भी नहीं था। भूख लगनेपर ये गाँवोंसे भिक्षा माँग लाते और भिक्षामें जो भी कुछ मिल जाता, उसे चौबीस घण्टेमें एक ही बार खाकर निरन्तर भगवन्नामका जप करते रहते। घर छोड़कर ये वनग्रामके समीप वेनापोल नामके घोर निर्जन वनमें फूँसकी कुटी बनाकर अकेले ही रहते थे। इनके तेज और प्रभावसे वहाँके सभी प्राणी एक प्रकारकी अलौकिक शान्तिका अनुभव करते। जो भी जीव इनके सम्मुख आता वही इनके प्रभावसे प्रभावान्वित हो जाता। ये दिन-रात्रिमें तीन लाख भगवन्नामोंका जप करते थे, सो भी धीरे-धीरे नहीं, किन्तु खूब उच्च स्वरसे। भगवन्नामका ये उच्च स्वरसे जप इसलिये करते थे कि सभी चर-अचर प्राणी प्रभुके पवित्र नामोंके श्रवणसे पावन हो जायँ। प्राणीमात्रकी निष्कृतिका ये भगवन्नामको ही एकमात्र साधन समझते थे। इससे थोड़े ही दिनोंमें इनका यशःसौरभ दूर-दूरतक फैल गया। बड़ी-बड़ी दूरसे लोग इनके दर्शनको आने लगे। दुष्ट बुद्धिके ईर्ष्यालु लोगोंको इनका इतना यश असह्य हो गया। वे इनसे अकारण ही द्वेष मानने

लगे। उन ईर्ष्यालुओंमें वहाँका एक रामचन्द्रख़ाँ नामका बड़ा भारी जमींदार भी था। वह इन्हें किसी प्रकार नीचा दिखाना चाहता था। इनके बढ़े हुए यशको धूलिमें मिलानेकी बात वह सोचने लगा। साधकों-को पतित करनेके कामिनी और काञ्चन ये ही दो भारी प्रलोभन हैं, इनमें कामिनीका प्रलोभन तो सर्वश्रेष्ठ ही समझा जाता है। रामचन्द्रखाँ-ने उसी प्रलोभनके द्वारा हरिदासको नीचा दिखानेका निश्चय किया। किन्तु उनकी रक्षा तो उनके साईं ही सदा करते थे। फिर चाहे सम्पूर्ण संसार ही उनका वैरी क्यों न हो जाता, उनका कभी बाल बाँका कैसे हो सकता था ? किन्तु नीच पुरुष अपनी नीचतासे बाज थोड़े ही आते हैं। रामचन्द्रखाँने एक अत्यन्त ही सुन्दरी षोडशवर्षीया वेष्याको इनके भजनमें भंग करनेके लिये भेजा। वह रूपगर्विता वेश्या भी इन्हें पतित करनेकी प्रतिज्ञा करके खूब सज-धजके साथ हरिदासजीके आश्रमपर पहुँची। उसे अपने रूपका अभिमान था, उसकी समझ थी कि कोई भी पुरुष मेरे रूप-लावण्यको देखकर बिना रीझे नहीं रह सकता। किन्तु जो हरिनामपर रीझे हुए हैं, उनके लिये यह बाहरी सांसारिक रूप-लावण्य परम तुच्छ है, ऐसे हरिजन इस रूप-लावण्यकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते।

अहो ! कितना भारी महान् त्याग है, कैसा अपूर्व वैराग्य है, कितना अद्‌भुत इन्द्रियनिग्रह है ! पाठक अपने-अपने हृदयोंपर हाथ रखकर अनुमान तो करें। सुन-सान जंगल, हरिदासकी युवावस्था, एकान्त शान्त स्थान, परम रूप-लावण्ययुक्त सुन्दरी और वह भी हरिदाससे स्वयं ही प्रणयकी भीख माँगे और उस विरक्त महापुरुषके हृदयमें किञ्चिन्मात्र भी विकार उत्पन्न न हो, वे अविचल भावसे उसी प्रकार बराबर श्रीकृष्णकीर्तनमें ही निमग्न बने रहे। मनुष्यकी बुद्धिके परेकी बात है। वाराङ्गना वहाँ जाकर चुपचाप बैठी रही। हरिदासजी धाराप्रवाह-रूपसे इस महामन्त्रका जप करते रहे—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

दिन बीता, शाम हुई। रात्रि बीती, प्रातःकाल हुआ। इसी प्रकार चार दिन व्यतीत हो गये। वाराङ्गना रोज आती और रोज ज्यों-की-त्यों ही लौट जाती। कभी-कभी बीचमें साहस करके हरिदासजीसे कुछ बातें करनेकी इच्छा प्रकट करती, तो हरिदासजी बड़ी ही नम्रताके साथ उत्तर देते—'आप बैठें, मेरे नाम-जपकी संख्या पूरी हो जाने दीजिये, तब मैं आपकी बातें सुन सकूँगा।' किन्तु नाम-जपकी संख्या दस-बीस या हजार-दो हजार तो थी ही नहीं, पूरे तीन लाख नामोंका जप करना था, सो भी उच्च स्वरसे गायनके साथ। इसलिये चारों दिन उसे निराश ही होना पड़ा। सुबहसे आती, दोपहरतक बैठती, हरिदासजी लयसे गायन करते रहते—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

बेचारी बैठे-बैठे स्वयं भी इसी मन्त्रको कहती रहती। शामको आती तो आधी रात्रितक बैठी रहती। हरिदासजीका जप अखण्डरूपसे चलता रहता—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

चार दिन निरन्तर हरिनामस्मरणसे उसके सभी पापोंका क्षय हो गया। पापोंके क्षय हो जानेसे उसकी बुद्धि एकदम बदल गयी, अब तो उसका हृदय उसे बार-बार धिक्कार देने लगा। ऐसे महापुरुषके निकट मैं किस बुरे भावसे आयी थी, इसका स्मरण करके वह मन-ही-मन अत्यन्त ही दुखी होने लगी। अन्तमें उससे नहीं रहा गया। वह

अत्यन्त ही दीन-भावसे हरिदासजीके चरणोंमें गिर पड़ी और आँखोंसे आँसू बहाते हुए गद्गदकण्ठसे कहने लगी—'महाभाग ! सचमुच ही आप पतितपावन हैं। आप जीवोंपर अहैतुकी कृपा ही करते हैं। आप परम दयालु हैं, अपनी कृपाके लिये आप पात्र-अपात्रका विचार न करके प्राणीमात्रके प्रति समान-भावसे ही दया करते हैं। मुझ-जैसी पतिता, लोकनिन्दिता और खोटी बुद्धिवाली अधम नारीके ऊपर भी आपने अपनी असीम अनुकम्पा प्रदर्शित की। भगवन् ! मैं खोटी बुद्धिसे आपके पास आयी थी, किन्तु आपके सत्सङ्गके प्रभावसे मेरे वे भाव एकदम बदल गये। श्रीहरिके सुमधुर नामोंके श्रवणमात्रसे ही मेरे कलुषित विचार भस्मीभूत हो गये। अब मैं आपके चरणोंकी शरण हूँ, मुझ पतिता अबलाका उद्धार कीजिये। मेरे घोर पापोंका प्रायश्चित्त बताइये, क्या मेरी भी निष्कृतिका कोई उपाय हो सकता है ?' इतना कहते-कहते वह हरिदासके चरणोंमें लोटने लगी।

हरिदासजीने उसे आश्वासन देते हुए कहा—'देवि ! उठो, घबड़ानेकी कोई बात नहीं। श्रीहरि बड़े दयालु हैं, वे नीच, पामर, पतित—सभी प्रकारके प्राणियोंका उद्धार करते हैं। उनके दरबारमें भेद-भाव नहीं। भगवन्नामके सम्मुख भारी-से-भारी पाप नहीं रह सकते। भगवन्नाममें पापोंको क्षय करनेकी इतनी भारी शक्ति है कि चाहे कोई कितना भी घोर पापी-से-पापी क्यों न हो, उतने पाप वह कर ही नहीं सकता, जितने पापोंको मेटनेकी हरिनाममें शक्ति है। तुमने पाप-कर्मसे जो पैसा पैदा किया है, उसे अभ्यागतोंको बाँट दो और निरन्तर हरिनामका कीर्तन करो। इसीसे तुम्हारे सब पाप दूर हो जायँगे और श्रीभगवान्‌के चरणोंमें तुम्हारी प्रगाढ़ प्रीति हो जायगी। बस—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इस महामन्त्रमें ही सब सामर्थ्य विराजमान है। इसीका निरन्तर जप करती रहो। अब इस कुटियामें हम नहीं रहेंगे, तुम्हीं इसमें रहो।' उस वेश्याको ऐसा उपदेश करके महाभागवत हरिदासजी सीधे शान्तिपुर चले गये और वहाँ जाकर अद्वैताचार्यजीके समीप अध्ययन और श्रीकृष्ण-संकीर्तनमें सदा संलग्न रहने लगे।

इस वारवनिताने भी हरिदासजीके आदेशानुसार अपना सर्वस्व दान करके अकिञ्चनोंका-सा वेश धारण कर लिया। वह फटे-पुराने चिथड़ोंको शरीरपर लपेटकर और भिक्षान्नसे उदरनिर्वाह करके अपने गुरुदेवके चरणचिह्नोंका अनुसरण करने लगी। थोड़े ही समयमें उसकी भक्तिकी ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी। बहुत-से लोग उसके दर्शनके लिये आने लगे। वह हरिदासीके नामसे सर्वत्र प्रसिद्ध हो गयी। लोग उसका बहुत अधिक आदर करने लगे। महापुरुषोंने सत्य ही कहा है कि महात्माओंका खोटी बुद्धिसे किया हुआ सत्सङ्ग भी व्यर्थ नहीं जाता। सत्सङ्गकी महिमा ही ऐसी है।

इधर रामचन्द्रखाँने अपने कुकृत्यका फल यहींपर प्रत्यक्ष पा लिया। नियत समयपर बादशाहको पूरा लगान न देनेके अपराधमें उसे भारी दण्ड दिया गया। बादशाहके आदमियोंने उसके घरमें आकर अखाद्य पदार्थोंको खाया और उसे स्त्री-बच्चेसहित बाँधकर वे राजाके पास ले गये, उसे और भी भाँति-भाँतिकी यातनाएँ सहनी पड़ीं। सच है, जो जैसा करता है उसे उसका फल अवश्य ही मिलता है।

—:०:—

हरिदासकी नाम-निष्ठा

रामनाम जपतां कुतो भयं
सर्वतापशमनैकभेषजम् ।
पश्य तात मम गात्रसन्निधौ
पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना ॥*

(अनर्घराघव ना०)

जप, तप, भजन, पूजन तथा लौकिक, पारलौकिक सभी प्रकारके कार्योंमें विश्वास ही प्रधान है। जिसे जिसपर जैसा विश्वास जम गया उसे उसके द्वारा वैसा ही फल प्राप्त हो सकेगा। फलका प्रधान हेतु विश्वास ही है। विश्वासके सम्मुख कोई बात असम्भव नहीं। असम्भव तो अविश्वासका पर्यायवाची शब्द है। विश्वासके सामने सभी कुछ सम्भव है। विश्वासके ही सहारे चरणामृत मानकर मीरा विष पान कर गयी, नामदेवने पत्थरकी मूर्तिको भोजन कराया, धन्ना भगतका बिना

---

* अग्निमें जलाये जानेपर भी जब प्रह्लादजी न जले तब वे अपने पिता हिरण्यकशिपुसे निर्भीक भावसे कहने लगे—श्रीरामनामके जपनेवालेको भला भय कहां हो सकता है; क्योंकि सभी प्रकारके आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तापोंको शमन करनेवाली राम-नामरूपी महारसायन है, उसके पान करनेवाले के पास भला ताप आ ही कैसे सकते हैं? हे पिताजी! प्रत्यक्षके लिये प्रमाण क्या, आप देखते नहीं मेरे शरीरके अंगोंके समीप आते ही उष्ण-स्वभावकी अग्नि भी जलके समान शीतल हो गयी। अर्थात् वह मेरे शरीरको जला ही न सकी। राम-नामका ऐसा ही माहात्म्य है।

बोया ही खेत उपज आया और रैदासजीने भगवान्‌की मूर्तिको सजीव करके दिखला दिया। ये सब भक्तोंके दृढ़ विश्वासके ही चमत्कार हैं। जिनकी भगवन्नामपर दृढ़ निष्ठा है, उन्हें भारी-से-भारी विपत्ति भी साधारण-सी घटना ही मालूम पड़ने लगती है। वे भयङ्कर-से-भयङ्कर विपत्तिमें भी अपने विश्वाससे विचलित नहीं होते। ध्रुव तथा प्रह्लादके लोकप्रसिद्ध चरित्र इसके प्रमाण हैं, ये चरित्र तो बहुत प्राचीन हैं, कुछ लोग इनमें अर्थवादका भी आरोप करते हैं, किन्तु महात्मा हरिदासजी-की नाम-निष्ठाका ज्वलन्त प्रमाण तो अभी कल-ही-परसोंका है। जिन लोगोंने प्रत्यक्षमें उनका संसर्ग और सहवास किया था तथा जिन्होंने अपनी आँखोंसे उनकी भयङ्कर यातनाओंका दृश्य देखा था, उन्होंने स्वयं इनका चरित्र लिखा है। ऐसी भयङ्कर यातनाओंको क्या कोई साधारण मनुष्य सह सकता है? बिना भगवन्नाममें दृढ़ निष्ठा हुए क्या कोई इस प्रकार अपने निश्चयपर अटल भावसे अड़ा रह सकता है? कभी नहीं, जबतक हृदयमें दृढ़ विश्वासजन्य भारी बल न हो, तबतक ऐसी दृढ़ता सम्भव ही नहीं हो सकती।

बेनापोलकी निर्जन कुटियामें वारवनिताका उद्धार करके और उसे अपनी कुटियामें रखकर महात्मा हरिदास शान्तिपुरमें आकर अद्वैताचार्यजीके सत्सङ्गमें रहने लगे। शान्तिपुरके समीप ही फुलिया नामके ग्राममें एकान्त समझकर वहीं इन्होंने अपनी एक छोटी-सी कुटिया बना ली और उसीमें भगवन्नामका अहर्निश कीर्तन करते हुए निवास करने लगे। यह तो हम पहले ही बता चुके हैं कि उस समय सम्पूर्ण देशमें मुसलमानोंका प्राबल्य था। विशेषकर बङ्गालमें तो मुसलमानी सत्ताका और मुसलमानी धर्मका अत्यधिक जोर था। इस्लामधर्मके विरुद्ध कोई चूँतक नहीं कर सकता था। स्थान-स्थानपर इस्लामधर्मके प्रचारके निमित्त काजी नियुक्त थे, वे जिसे भी इस्लामधर्मके प्रचारमें विघ्न समझते, उसे ही बादशाहसे भारी दण्ड दिलाते, जिससे फिर किसी

दूसरेको इस्लाम-धर्मके प्रचारमें रोड़ा अटकानेका साहस न हो। एक प्रकारसे उस समयके कर्ता, धर्ता तथा विधाता धर्मके ठेकेदार काजी ही थे। शासन-सत्तापर पूरा प्रभाव होनेके कारण काजी उस समयके बादशाह ही समझे जाते थे। फुलियाके आसपासमें गोराई नामका एक काजी भी इसी कामके लिये नियुक्त था। उसने जब हरिदासजीका इतना प्रभाव देखा तब तो उसकी ईर्ष्याका ठिकाना नहीं रहा। वह सोचने लगा—'हरिदासके इतने बढ़ते प्रभावको यदि रोका न जायगा तो इस्लामधर्मको बड़ा भारी धक्का पहुँचेगा। हरिदास जातिका मुसलमान है। मुसलमान होकर वह हिन्दुओंके धर्मका प्रचार करता है। सरहकी रूसे वह कुफ्र करता है। वह काफिर है, इसलिये काफिरको कत्ल करनेसे भी सबाब होता है। दूसरे लोग भी इसकी देखा-देखी ऐसा ही काम करेंगे। इसलिये इसे दरबारसे सजा दिलानी चाहिये।' यह सोचकर गोराई काजीने इनके विरुद्ध राजदरबारमें अभियोग चलाया। राजाज्ञासे हरिदासजी गिरफ्तार कर लिये गये और मुलुकपतिके यहाँ इनका मुकद्दमा पेश हुआ। मुलुकपति इनके तेज और प्रभावको देखकर चकित रह गया। उसने इन्हें बैठनेके लिये आसन दिया। हरिदासजीके बैठ जानेपर मुलुकपतिने दयाका भाव दर्शाते हुए अपने स्वाभाविक धार्मिक विश्वासके अनुसार कहा—'भाई! तुम्हारा जन्म मुसलमानके घर हुआ है। यह भगवान्‌की तुम्हारे ऊपर अत्यन्त ही कृपा है। मुसलमानके यहाँ जन्म लेकर भी तुम काफिरोंकेसे आचरण क्यों करते हो? इससे तुमको मुक्ति नहीं मिलेगी। मुक्तिका तो साधन वही है जो इस्लाम-धर्मकी पुस्तक कुरानमें बताया गया है। हमें तुम्हारे ऊपर बड़ी दया आ रही है, हम तुम्हें दण्ड देना नहीं चाहते। तुम अब भी तोबा (अपने पापका प्रायश्चित्त) कर लो और कलमा पढ़कर मुहम्मदसाहबकी शरणमें आ जाओ! भगवान् तुम्हारे सभी अपराधोंको क्षमा कर देंगे और तुम भी मोक्षके अधिकारी बन जाओगे।'

मुलुकपतिकी ऐसी सरल और सुन्दर बातें सुनकर हरिदासजीने कहा—'महाशय ! आपने जो भी कुछ कहा है, अपने विश्वासके अनुसार ठीक ही कहा है। हरेक मनुष्यका विश्वास अलग-अलग तरहका होता है। जिसे जिस तरहका दृढ़ विश्वास होता है, उसके लिये उसी प्रकारका विश्वास फलदायी होता है। दूसरोंके धमकानेसे अथवा लोभसे जो अपने स्वाभाविक विश्वासको छोड़ देते हैं, वे भीरु होते हैं। ऐसे भीरु पुरुषोंको परमात्माकी प्राप्ति कभी नहीं होती। आप अपने विश्वासके अनुसार उचित ही कह रहे हैं, किन्तु मैं दण्डके भयसे यदि भगवन्नाम-कीर्तनको छोड़ दूँ, तो इससे मुझे पुण्यके स्थानमें पाप ही होगा। ऐसा करनेसे मैं नरकका भागी बनूँगा। मेरी भगवन्नाममें स्वाभाविक ही निष्ठा है, इसे मैं छोड़ नहीं सकता। फिर चाहे इसके पीछे मेरे प्राण ही क्यों न ले लिये जायँ।'

इनकी ऐसी युक्तियुक्त बातें सुनकर मुलुकपतिका हृदय भी पसीज उठा। इनकी सरल और मीठी वाणीमें आकर्षण था। उसीसे आकर्षित होकर मुलुकपतिने कहा—'तुम्हारी बातें तो मेरी भी समझमें कुछ-कुछ आती हैं, किन्तु ये बातें तो हिन्दुओंके लिये ठीक हो सकती हैं। तुम तो मुसलमान हो, तुम्हें मुसलमानोंकी ही तरह विश्वास रखना चाहिये।'

हरिदासजीने कहा—'महाशय ! आपका यह कहना ठीक है, किन्तु विश्वास तो अपने अधीनकी बात नहीं है। जैसे पूर्वके संस्कार होंगे, वैसा ही विश्वास होगा। मेरा भगवन्नामपर ही विश्वास है। कोई हिन्दू जब अपना विश्वास छोड़कर मुसलमान हो जाता है, तब आप उसे दण्ड क्यों नहीं देते? क्यों नहीं उसे हिन्दू ही बना रहनेको मजबूर करते? जब हिन्दुओंको अपना धर्म छोड़कर मुसलमान होनेमें आप स्वतन्त्र मानते हैं तब यह स्वतन्त्रता मुसलमानोंको भी मिलनी चाहिये। फिर आप मुझे कलमा पढ़नेको क्यों मजबूर करते हैं?' इनकी इस बातसे समझदार न्यायाधीश चुप हो गया। जब गोराई

काजीने देखा कि यहाँ तो मामला ही बिलकुल उलटा हुआ जाता है तब उसने जोरोंके साथ कहा—'हम ये सब बात नहीं सुनना चाहते। इस्लाम-धर्ममें लिखा है, जो इस्लाम-धर्मके अनुसार आचरण करता है उसे ही मोक्षकी प्राप्ति होती है, उसके विरुद्ध करनेवाले काफिरोंको नहीं। तुम कुफ्र (अधर्म) करते हो। अधर्म करनेवालोंको दण्ड देना हमारा काम है। इसलिये तुम कलमा पढ़ना स्वीकार करते हो या दण्ड भोगना? दोनोंमेंसे एकको पसंद कर लो।'

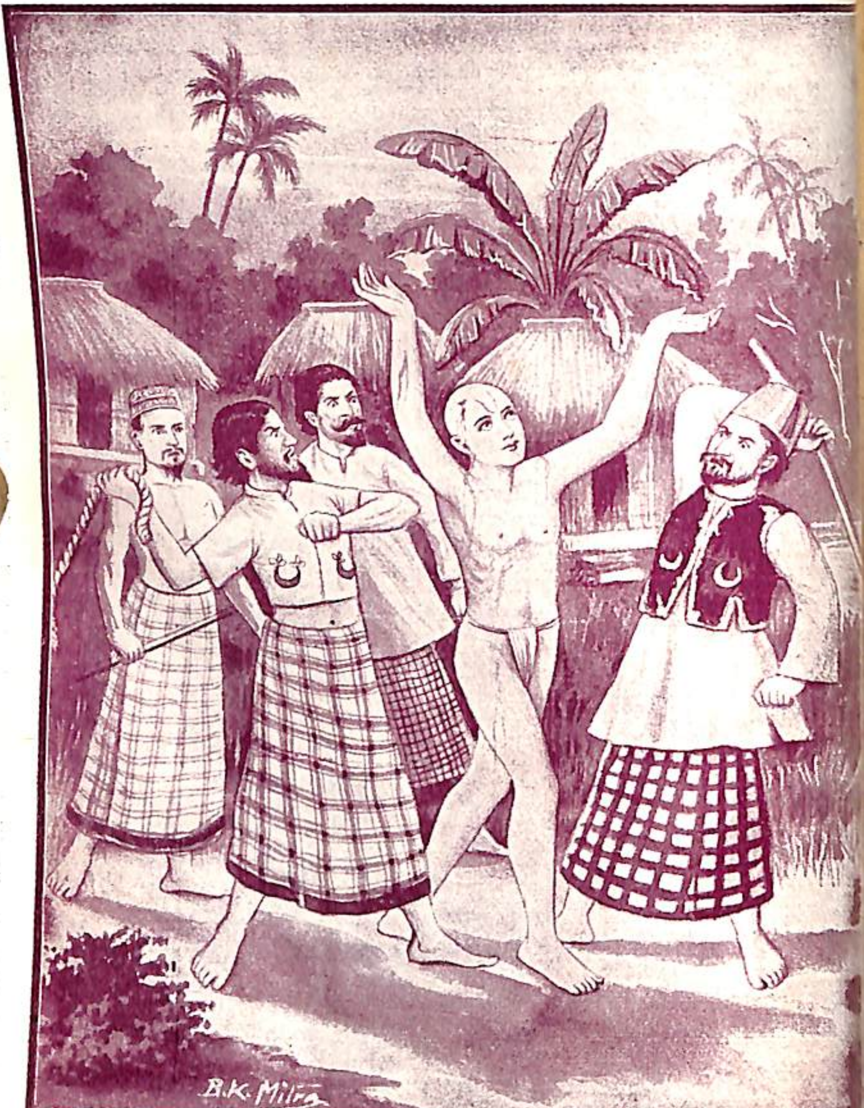
बेचारा मुलुकपति भी मजबूर था। इस्लाम-धर्मके विरुद्ध वह भी कुछ नहीं कह सकता था। काजियोंके विरुद्ध न्याय करनेकी उसकी हिम्मत नहीं थी। उसने भी गोराई काजीकी बातका समर्थन करते हुए कहा—'हाँ ठीक है, बताओ तुम कलमा पढ़नेको राजी हो?'

हरिदासजीने निर्भीक भावसे कहा—'महाशय! मुझे जो कहना था सो एक बार कह चुका। भारी-से-भारी दण्ड भी मुझे मेरे विश्वाससे विचलित नहीं कर सकता। चाहे आप मेरी देहके टुकड़े-टुकड़े करके फेंकवा दें तो भी जबतक मेरे शरीरमें प्राण हैं, तबतक मैं हरिनामको नहीं छोड़ सकता। आप जैसा चाहें, वैसा दण्ड मुझे दें।

हरिदासजीके ऐसे निर्भीक उत्तरको सुनकर मुलुकपति किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गया। वह कुछ सोच ही न सका कि हरिदासको क्या दण्ड दें? वह जिज्ञासाके भावसे गोराई काजीके मुखकी ओर देखने लगा।

मुलुकपतिके भावको समझकर गोराई काजीने कहा—'हुजूर! जरूर दण्ड देना चाहिये। यदि इसे दण्ड न दिया गया तो सभी मनमानी करने लगेंगे, फिर तो इस्लाम-धर्मका अस्तित्व ही न रहेगा।

मुलुकपतिने कहा—'मुझे तो कुछ सूझता नहीं, तुम्हीं बताओ इसे क्या दण्ड दिया जाय?'



हरिदासका नाम-प्रेम

गोराई काजीने जोर देते हुए कहा—'हुजूर ! यह पहला ही मामला है। इसे ऐसा दण्ड देना चाहिये कि सबके कान खड़े हो जायँ। आगे किसीको ऐसा काम करनेकी हिम्मत ही न पड़े। इस्लाम-धर्मके अनुसार तो इसकी सजा प्राणदण्ड ही है। किन्तु सीधे-सादे प्राणदण्ड देना ठीक नहीं। इसकी पीठपर बेंत मारते हुए इसे बाईस बाजारोंमें होकर घुमाया जाय और बेंत मारते-मारते ही इसके प्राण लिये जायँ। तभी सब लोगोंको आगे ऐसा करनेकी हिम्मत न होगी।'

मुलुकपतिने विवश होकर यही आज्ञा लिख दी। बेंत मारनेवाले नौकरोंने महात्मा हरिदासजीको बाँध लिया और उनकी पीठपर बेंत मारते हुए उन्हें बाजारोंमें घुमाने लगे। निरन्तर बेंतोंके आघातसे हरिदासके सुकुमार शरीरकी खाल उधड़ गयी। पीठमेंसे रक्तकी धारा बहने लगी। निर्दयी जल्लाद उन घावोंपर ही और भी बेंत मारते जाते थे, किन्तु हरिदासके मुखमेंसे वही पूर्ववत् हरिध्वनि ही हो रही थी। उन्हें बेंतोंकी वेदना प्रतीत ही नहीं होती थी। बाजारमें देखनेवाले उनके दुःखको न सह सकनेके कारण आँखें बंद कर लेते थे, कोई-कोई रोने भी लगते थे, किन्तु हरिदासजीके मुखसे 'उफ्' भी नहीं निकलती थी। वे आनन्दके साथ श्रीकृष्णकीर्तन करते हुए नौकरोंके साथ चले जा रहे थे।

उन्हें सभी बाजारोंमें घुमाया गया। शरीर रक्तसे लथपथ हो गया, किन्तु हरिदासजीके प्राण नहीं निकले। नौकरोंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'महाशय ! ऐसा कठोर आदमी तो हमने आजतक एक भी नहीं देखा। प्रायः दस-बीस ही बेंतोंमें मनुष्य मर जाते हैं, कोई-कोई तो दस-पाँच लगनेसे ही बेहोश हो जाते हैं। आपकी पीठपर तो असंख्यों बेंत पड़े तो भी आपने 'आह' तक नहीं की। यदि आपके प्राण न निकले तो हमें दण्ड दिया जायगा। हमें मालूम पड़ता है, आप जिस नामका

उच्चारण कर रहे हैं, उसीका ऐसा प्रभाव है कि इतने भारी दुःखसे आपको तनिक-सी भी वेदना प्रतीत नहीं होती। अब हमलोग क्या करें।

दयालु-हृदय महात्मा हरिदासजी उस समय अपने दण्ड देने-दिलानेवालों तथा पीटनेवालोंके कल्याणके निमित्त प्रभुसे प्रार्थना कर रहे थे। वे उन भूले-भटकोंके अपराधको भगवान्‌से क्षमा कर देनेको कह रहे थे। इतनेमें ही सबको प्रतीत हुआ कि महात्मा हरिदासजी अचेतन होकर भूमिपर गिर पड़े। सेवकोंने उन्हे सचमुचमें मुर्दा समझ लिया और उसी दशामें उन्हें मुलुकपतिके यहाँ ले गये। गोराई काजीकी सम्मतिसे मुलुकपतिने उन्हें गङ्गाजीमें फेंक देनेकी आज्ञा दी। गोराई काजीने कहा—'कब्रमें गड़वा देनेसे तो इसे मुसलमानी-धर्मके अनुसार बहिश्त (स्वर्ग) की प्राप्ति हो जायगी। इसने तो मुसलमानी धर्म छोड़ दिया था इसलिये इसे वैसे ही गङ्गामें फेंक देना ठीक है।' सेवकोंने मुलुकपतिकी आज्ञासे हरिदासजीके शरीरको पतितपावनी श्रीभागीरथीके प्रवाहमें प्रवाहित कर दिया। माताके सुखद, शीतल जल-स्पर्शसे हरिदासको चेतना हुई और वे प्रवाहमें बहते-बहते फुलियाके समीप घाटपर आ लगे। इनके दर्शनसे फुलियानिवासी सभी लोगोंको परम प्रसन्नता हुई। चारों ओर यह समाचार फैल गया। लोग हरिदासके दर्शनके लिये बड़ी उत्सुकतासे आने लगे। जो भी जहाँ सुनता वहींसे इनके पास दौड़ा आता। दूर-दूरसे बहुत-से लोग आने लगे। मुलुकपति तथा गोराई काजीने भी यह बात सुनी। उनका भी हृदय पसीज उठा और इस दृढ़प्रतिज्ञ महापुरुषके प्रति उनके हृदयमें भी श्रद्धाके भाव उत्पन्न हुए। वे भी हरिदासजीके दर्शनके लिये फुलिया आये। मुलुकपतिने नम्रताके साथ इनसे प्रार्थना की—'महाशय! मैं आपको दण्ड देनेके लिये मजबूर था। इसीलिये मैंने आपको दण्ड दिया। मैं आपके प्रभावको जानता नहीं था। मेरे अपराधको क्षमा कीजिये। अब आप प्रसन्नतापूर्वक हरि-नाम-संकीर्तन करें। आपके काममें कोई विघ्न न करेगा।'

हरिदासजीने नम्रतापूर्वक कहा—'महाशय! इसमें आपका अपराध ही क्या है? मनुष्य अपने कर्मोंके ही अनुसार दुःख-सुख भोगता है। दूसरे मनुष्य तो इसके निमित्त बन जाते हैं। मेरे कर्म ही ऐसे होंगे। आप किसी बातकी चिन्ता न करें, मेरे मनमें आपके प्रति तनिक भी रोष नहीं है।' हरिदासकी ऐसी सरल और निष्कपट बात सुनकर मुलुकपतिको बड़ा आनन्द हुआ, वह इनके चरणोंमें प्रणाम करके चला गया। फुलियाग्रामके और भी वैष्णव ब्राह्मण आ-आकर हरिदासजीकी ऐसी अवस्था देखकर दुःख प्रकाशित करने लगे। कोई-कोई तो उनके घावोंको देखकर फूट-फूटकर रोने लगे। इसपर हरिदासजीने उन ब्राह्मणोंको समझाते हुए कहा—'विप्रगण! आपलोग सभी धर्मात्मा हैं। शास्त्रोंके मर्मको भलीभाँति जानते हैं। बिना पूर्व-कर्मोंके दुःख-सुखकी प्राप्ति नहीं होती। मैंने इन कानोंसे भगवन्नामकी निन्दा सुनी थी, उसीका भगवान्‌ने मुझे फल दिया है। आपलोग किसी प्रकारकी चिन्ता न करें। यह दुःख तो शरीरको हुआ है, मुझे तो इसका तनिक भी क्लेश प्रतीत नहीं होता। बस, भगवन्नामका स्मरण बना रहे यही सब सुखोंका सुख है। जिस क्षण भगवन्नामका स्मरण न हो, वही सबसे बड़ा दुःख है और भगवन्नामका स्मरण होता रहे तो शरीरको चाहे कितना भी क्लेश हो उसे परम सुख ही समझना चाहिये।' इनके ऐसे उत्तरसे सभी ब्राह्मण परम सन्तुष्ट हुए और इनकी आज्ञा लेकर अपने-अपने घरोंको चले गये।

इस प्रकार हरिदासजी भगवती भागीरथीके तटपर फुलियाग्रामके ही समीप रहने लगे। वहाँ उन्हें सब प्रकारकी सुविधाएँ थीं। शान्तिपुरमें अद्वैताचार्यजीके समीप वे प्रायः नित्य ही जाते। आचार्य इन्हें पुत्रकी भाँति प्यार करते और ये भी उन्हें पितासे बढ़कर मानते। फुलियाके सभी ब्राह्मण, वैष्णव तथा धनी-मानी पुरुष इनका आदर-सत्कार करते थे। ये मुखसे सदा श्रीहरिके मधुर नामोंका कीर्तन करते

रहते। निरन्तरके कीर्तनके प्रभावसे इनके रोम-रोमसे हरि-ध्वनि-सी सुनायी देने लगी। भगवान्‌की लीलाओंको सुनते ही ये मूर्छित हो जाते और एक साथ ही इनके शरीरमें सभी सात्त्विक भाव उदय हो उठते।

एक दिनकी बात है कि ये अपनी कुटियासे कहीं जा रहे थे, रास्तेमें इन्हें मजीरा, मृदङ्गकी आवाज सुनायी दी। श्रीकृष्णकीर्तन समझकर ये उसी ओर चल पड़े। उस समय 'डंक' नामकी जातिके लोग मृदङ्ग, मजीरा बजाकर नृत्य किया करते थे और नृत्यके साथमें हरिलीलाओंका कीर्तन किया करते थे। उस समय भी कोई डंक नृत्य कर रहा था। जब हरिदासजी पहुँचे तब डंक भगवान्‌की कालियदमनकी लीलाके सम्बन्धके पद गा रहा था। डंकका स्वर कोमल था, नृत्यमें वह प्रवीण था और गानेका उसे अच्छा अभ्यास था। वह बड़े ही लयसे यशोदा और नन्दके विलापका वर्णन कर रहा था। 'भगवान् गेंदके बहानेसे कालियदहमें कूद पड़े हैं, इस बातको सुनकर नन्द-यशोदा तथा सभी व्रजवासी वहाँ आ गये हैं। बालकृष्ण अपने कोमल चरणकमलोंको कालियनागके फणों-के ऊपर रखे हुए उसी अपनी ललित त्रिभङ्गी गतिसे खड़े हुए मुरली बजा रहे हैं। नाग जोरोंसे फुंकार मारता है, उसकी फुंकारके साथ मुरारी धीरे-धीरे नृत्य करते हैं। यशोदा ऐसी दशा देखकर बिलबिला रही है। वह चारों ओर लोगोंकी ओर कातर दृष्टिसे देख रही है कि मेरे बनवारीको कोई कालियके मुखसे छुड़ा ले। नन्दबाबा अलग आँसू बहा रहे हैं।' इस भावको सुनते-सुनते हरिदासजी मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। डंक इनके सात्त्विक भावोंको देखकर समझ गया कि ये कोई महापुरुष हैं, उसने नृत्य बंद कर दिया और इनकी पद-धूलिको मस्तकपर चढ़ाकर इनकी स्तुति करने लगा। बहुत-से उपस्थित भक्तोंने हरिदासजीके पैरोंके नीचेकी धूलिको लेकर सिरपर चढ़ाया और उसे बाँधकर अपने घरको ले गये।

वहींपर एक मानलोलुप ब्राह्मण भी बैठा था, जब उसने देखा कि मूर्छित होकर गिरनेसे ही लोग इतना आदर करते हैं, तब मैं इस अवसरको हाथसे क्यों जाने दूँ? यह सोचकर जब वह डंक फिर नाचने लगा, तब यह भी झूठ-मूठ बहाना बनाकर पृथ्वीपर अचेत होकर गिर पड़ा। डंक तो सब जानता था। इसके गिरते ही वह इसे जोरोंसे पीटने लगा। मारके सामने तो भूत भी भागते हैं, फिर यह तो दम्भी था, जल्दी ही मार न सह सकनेके कारण वहांसे भाग गया। उस धनी पुरुषने तथा अन्य उपस्थित लोगोंने इसका कारण पूछा कि 'हरिदासकी तुमने इतनी स्तुति क्यों की और वैसा ही भाव आनेपर इस ब्राह्मणको तुमने क्यों मारा?'

सबके पूछनेपर डंकने कहा—'हरिदास परम भगवद्भक्त हैं। उनके शरीरमें सचमुच सात्त्विक भावोंका उदय हुआ था, यह दम्भी था, केवल अपनी प्रशंसाके निमित्त इसने ऐसा ढोंग बनाया था, इसीलिये मैंने उनकी स्तुति की और इसे पीटा। ढोंग सब जगह थोड़े ही चलता है, कभी-कभी मूर्खोंमें ही काम दे जाता है, पर कलई खुलनेपर वहाँ भी उसका भण्डाफोड़ हो जाता है। हरिदास सचमुचमें रत्न हैं। उनके रहनेसे यह सम्पूर्ण देश पवित्र हो रहा है। आपलोग बड़े भाग्यवान् हैं, जो ऐसे महापुरुषके नित्यप्रति दर्शन पाते हैं।' डंककी बात सुनकर सभीको परम प्रसन्नता हुई और वे सभी लोग हरिदासजीके भक्ति-भावकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। वह ब्राह्मण तो इतना लज्जित हुआ कि लोगोंको मुँह दिखानेमें भी उसे लज्जा होने लगी। सच है, बनावटीकी ऐसी ही दुर्दशा होती है। किसीने ठीक ही कहा है—

देखा देखी साधे जोग। छीजै काया बाढ़ै रोग॥

हरिदासजीकी निष्ठा अलौकिक है। उसका विचार करना मनुष्य-बुद्धिके बाहरकी बात है।

हरिदासजीद्वारा नाम-माहात्म्य

हरिकीर्तनशीलो वा तद्भक्तानां प्रियोऽपि वा।
शुश्रूषुर्वापि महतां स वन्द्योऽस्माभिरुत्तमः ॥*

शोक और मोहका कारण है प्राणियोंमें विभिन्न भावोंका अध्यारोप। जब मनुष्य एकको तो अपना सुख देनेवाला प्यारा सुहृद् समझता है और दूसरेको दुःख देनेवाला शत्रु समझकर उससे द्वेष करने लगता है, तब उसके हृदयमें शोक और मोहका उदय होना अवश्यम्भावी है, जिस समय सभी प्राणियोंमें वह उसी एक अखण्ड सत्ताका अनुभव करने लगेगा, जब प्राणीमात्रको प्रभुका पुत्र समझकर सबको महान् भावसे प्यार करने लगेगा तब उस साधकके हृदयमें मोह और

---

* देवता कहते हैं—जो भगवान्के सुमधुर नामोंका संकीर्तन करता है अथवा जो हरिभक्तोंका प्रिय ही है और जो देवता, ब्राह्मण, गुरु और श्रेष्ठ विद्वानोंकी सदा सेवा-शुश्रूषा करता है, ऐसा श्रेष्ठ भक्त हमलोगोंका भी वन्दनीय है। अर्थात् हम देवता त्रिलोकीके वन्द्य हैं; किन्तु ऐसा भक्त हमारा भी श्रद्धेय है।

शोकका नाम भी न रहेगा। वह सदा प्रसन्न होकर भगवन्नामोंका ही स्मरण-चिन्तन करता रहेगा। उसके लिये न तो कोई संसारमें शत्रु होगा न मित्र, वह सभीको अपने प्रियतमकी प्यारी सन्तान समझकर भाईके नातेसे जीवमात्रकी वन्दना करेगा और उसे भी कोई क्लेश न पहुँचा सकेगा। उसके सामने आनेपर विषधर सर्प भी अपना स्वभाव छोड़ देगा। भगवन्नामका माहात्म्य ही ऐसा है।

महात्मा हरिदासजी फुलियाके पास ही पुण्यसलिला माँ जाह्नवीके किनारेपर एक गुफा बनाकर उसमें रहते थे। उनकी ख्याति दूर-दूरतक फैल गयी थी। नित्यप्रति वहाँ सैकड़ों आदमी इनके दर्शनके लिये तथा गङ्गास्नानके निमित्त इनके आश्रमके निकट आया करते थे। जो भी मनुष्य इनकी गुफाके समीप जाता, उसके शरीरमें एक प्रकारकी खुजली-सी होने लगती। लोगोंको इसका कुछ भी कारण मालूम न हो सका। उस स्थानमें पहुँचनेपर चित्तमें शान्ति तो सभीके होती, किन्तु वे खुजलीसे घबड़ा जाते। लोग इस विषयमें भाँति-भाँतिके अनुमान लगाने लगे। होते-होते बात सर्वत्र फैल गयी। बहुत-से चिकित्सकोंने वहाँकी जल-वायुका निदान किया, अन्तमें सभीने कहा—'यहाँ जरूर कोई महाविषधर सर्प रहता है। न जाने हरिदासजी कैसे अभीतक बचे हुए हैं, उसके श्वाससे ही मनुष्यकी मृत्यु हो सकती है। वह कहीं बहुत भीतर रहकर श्वास लेता है, उसीका इतना असर है कि लोगोंके शरीरमें जलन होने लगती है, यदि वह बाहर निकलकर जोरोंसे फुंकार करे, तो इसकी फुंकारसे मनुष्य बच नहीं सकता। हरिदासजी इस स्थानको शीघ्र ही छोड़कर कहीं अन्यत्र रहने लगें, नहीं तो प्राणोंका भय है।' चिकित्सकोंकी सम्मति सुनकर सभीने हरिदासजीसे आग्रहपूर्वक प्रार्थना की कि आप इस स्थानको अवश्य ही छोड़ दें। आप तो महात्मा हैं, आपको चाहे कष्ट न भी हो, किन्तु और लोगोंको आपके यहाँ रहनेसे

बड़ा भारी कष्ट होगा। दर्शनार्थी बिना आये रहेंगे नहीं और यहाँ आनेपर सभीको शारीरिक कष्ट होता है। इसलिये आप हमलोगोंका ही खयाल करके इस स्थानको त्याग दीजिये।

हरिदासजीने सबके आग्रह करनेपर उस स्थानको छोड़ना मंजूर कर लिया और उन लोगोंको आश्वासन देते हुए कहा—'आपलोगोंको मेरे कारण कष्ट हो, यह मैं नहीं चाहता। यदि कलतक सर्प यहाँसे चला नहीं गया तो मैं कल शामको ही इस स्थानको परित्याग कर दूँगा। कल या तो यहाँ सर्प ही रहेगा या मैं ही रहूँगा, अब दोनों साथ-ही-साथ यहाँ नहीं रह सकते।'

इनके ऐसे निश्चयको सुनकर लोगोंको बड़ा भारी आनन्द हुआ और सभी अपने-अपने स्थानोंको चले गये। दूसरे दिन बहुत-से भक्त एकत्रित होकर हरिदासजीके समीप श्रीकृष्ण-कीर्तन कर रहे थे कि उसी समय सब लोगोंको उस अंधेरे स्थानमें बड़ा भारी प्रकाश-सा मालूम पड़ा। सभी भक्त आश्चर्यके साथ उस प्रकाशकी ओर देखने लगे। सभीने देखा कि एक चित्र-विचित्र रंगोंका बड़ा भारी सर्प वहाँसे निकलकर गङ्गाजीकी ओर जा रहा है। उसके मस्तकपर एक बड़ी-सी मणि जड़ी हुई है। उसीका इतना तेज प्रकाश है। सभीने उस भयङ्कर सर्पको देखकर आश्चर्य प्रकट किया। सर्प धीरे-धीरे गङ्गाजीके किनारे-किनारे बहुत दूर चला गया। उस दिनसे आश्रममें आनेवाले किसी भी दर्शनार्थीके शरीरमेंखु जली नहीं हुई। भक्तोंका ऐसा ही प्रभाव होता है, उनके प्रभावके सामने अजगर तो क्या, कालकूटको हजम करनेवाले देवाधिदेव महादेवजीतक भी भय खाते हैं। यह सब भगवान्की भक्तिका ही माहात्म्य है।

इस प्रकार महात्मा हरिदासजी फुलियामें रहते हुए श्रीभागीरथीका सेवन करते हुए आचार्य अद्वैतके सत्सङ्गका निरन्तर आनन्द लूटते रहे।

अद्वैताचार्य ही इनके गुरु, पिता, आश्रयदाता अथवा सर्वस्व थे। उनके ऊपर इनकी बड़ी भारी भक्ति थी। जिस दिन महाप्रभुका जन्म नवद्वीपमें हुआ था, उस दिन आचार्यके साथये आनन्दमें विभोर होकर नृत्य कर रहे थे। आचार्यका कहना था कि ये जगन्नाथतनय कालान्तरमें गौराङ्गरूपसे जनोद्धार तथा सम्पूर्ण देशमें श्रीकृष्ण-कीर्तनका प्रचार करेंगे। आचार्यके वचनोंपर हरिदासजीको पूर्ण विश्वास था, इसलिये वे भी गौराङ्गके प्रकाशकी प्रतीक्षामें निरन्तर श्रीकृष्णसङ्कीर्तन करते हुए कालयापन करने लगे।

उस समय सप्तग्राममें हिरण्य और गोवर्धन मजूमदार नामक दो धनिक जमींदार भाई निवास करते थे। उनके कुलपुरोहित परम वैष्णव शास्त्रवेत्ता पं० बलराम आचार्य थे। आचार्य महाशय वैष्णवोंका बड़ा ही आदर सत्कार किया करते थे। अद्वैताचार्यजीसे उनकी अत्यन्त ही घनिष्ठता थी। दोनों ही विद्वान् थे, कुलीन थे, भगवद्भक्त और देश-कालके मर्मज्ञ थे, इसी कारण हरिदासजी भी कभी-कभी सप्तग्राममें जाकर बलराम आचार्यके यहाँ रहते थे। आचार्य इनकी नाम-निष्ठा और भगवत्भक्ति देखकर बड़े ही प्रसन्न होते और सदा इन्हें पुत्रकी भाँति प्यार किया करते थे। गोवर्धन मजूमदारके पुत्र रघुनाथदास जब पढ़नेके लिये आचार्यके यहाँ आते थे, तो हरिदासजीको सदा नाम-जप करते ही पाते। इसीलिये वे मन-ही-मन इनके प्रति बड़ी श्रद्धा रखने लगे।

एक दिन आचार्य इन्हें मजूमदारकी सभामें ले गये। मजूमदार महाशय अपने कुलगुरुके चरणोंमें अत्यन्त ही श्रद्धा रखते थे, वैष्णव भक्तोंका भी यथेष्ट आदर करते थे। अपने कुलगुरुके साथ हरिदासजी-को आया देखकर हिरण्य और गोवर्धन दोनों भाइयोंने आचार्यके सहित हरिदासजीकी उठकर अभ्यर्चना की और शिष्टाचार प्रदर्शित

करते हुए उन्हें बैठनेके लिये सुन्दर आसन दिया। हरिदासजी बिना रुके जोरोंसे इसी मन्त्रका जप कर रहे थे।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

सभाके सभी लोग सम्भ्रम-भावसे इन्हींकी ओर एकटक-भावसे देख रहे थे। इनके निरन्तरके नाम-जपको देखकर उन दोनों जमींदार भाइयों-को इनके प्रति स्वाभाविक ही बड़ी भारी श्रद्धा हो गयी। उनके दरबार-में बहुत-से और भी पण्डित बैठे हुए थे। भगवन्नाम-जपका प्रसङ्ग आनेपर पण्डितोंने नम्रताके साथ पूछा—'भगवन्नाम-जपका अन्तिम फल क्या है? इससे किस प्रकारकी सुखकी प्राप्ति होती है? क्या हरि-नाम-स्मरणसे सभी दुःखोंका अत्यन्ताभाव हो सकता है? क्या केवल नाम-जपसे ही मोक्ष मिल सकता है?'

हरिदासजीने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़े हुए पण्डितोंको उत्तर दिया—'महानुभावो! आप शास्त्रज्ञ हैं, धर्मके मर्मको भलीभाँति जानते हैं। आपने सभी ग्रन्थों तथा वैष्णव-शास्त्रोंका अध्ययन किया है। मैं आपके सामने कह ही क्या सकता हूँ, किन्तु भगवन्नामके माहात्म्यसे आत्मामें सुख मिलता है, इसीलिये कुछ कहनेका साहस करता हूँ। भगवन्नामका सर्वश्रेष्ठ फल यही है कि इसके जपसे हृदयमें एक प्रकारकी अपूर्व प्रसन्नता प्रकट होती है, उस प्रसन्नताजन्य सुखका आस्वादन करते रहना ही भगवन्नामका सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्तम फल है। भगवन्नामका जप करनेवाला साधक मोक्ष या दुःखोंके अत्यन्ताभावकी इच्छा ही नहीं करता। वह सगुण-निर्गुण दोनोंके ही चक्करसे दूर रहता है। उसका तो अन्तिम ध्येय भगवन्नामका जप ही होता है। कहीं भी रहें, कैसी परिस्थि-तिमें रहें, कोई भी योनि मिले, निरन्तर भगवन्नामका स्मरण बना रहे।

क्षणभरको भी भगवन्नामसे पृथक् न हों। यही नाम-जपके साधकका अन्तिम लक्ष्य है। भगवन्नामके साधकका साध्य और साधन भगवन्नाम ही है। भगवन्नामसे वह किसी अन्य प्रकारके फलकी इच्छा नहीं रखता। मैं तो इतना ही जानता हूँ, इससे अधिक यदि आप कुछ और जानते हों तो मुझे बतावें।'

इनकी ऐसी युक्तियुक्त और सारगर्भित मधुर वाणीको सुनकर सभीको परम प्रसन्नता हुई। उसी सभामें गोपालचन्द्र चक्रवर्ती नामका इन्हीं जमींदारका एक कर्मचारी बैठा था। वह बड़ा तार्किक था, उसने हरिदासकी बातका खण्डन करते हुए कहा—'ये तो सब भावुकताकी बातें हैं, जो पढ़-लिख नहीं सकते, वे ही इस प्रकार जोरोंसे नाम लेते फिरते हैं। यथार्थ ज्ञान तो शास्त्रोंके अध्ययनसे ही होता है। भगवन्नामसे कहीं दुःखोंका नाश थोड़े ही हो सकता है? शास्त्रोंमें जो कहीं-कहीं नामकी इतनी प्रशंसा मिलती है, वह केवल अर्थवाद है। यथार्थ बात तो दूसरी ही है।'

हरिदासजीने कुछ जोर देते हुए कहा—'भगवन्नाममें जो अर्थवादका अध्यारोप करते हैं, वे शुष्क तार्किक हैं। वे भगवन्नामके माहात्म्यको समझ ही नहीं सकते। भगवन्नाममें अर्थवाद हो ही नहीं सकता।'

इसपर गोपालचन्द्र चक्रवर्तीने भी अपनी बातपर जोर देते हुए कहा—'ये मूर्खोंको बहकानेकी बातें हैं। अजामिल-जैसा पापी पुत्रका नारायण नाम लेते ही तर गया। क्या घट-घटव्यापी भगवान् इतना भी नहीं समझ सकते थे कि इसने अपने पुत्रको बुलाया है? यह अर्थवाद नहीं तो क्या है?'

हरिदासजीने कहा—'इसे अर्थवाद कहनेवाले स्वयं अनर्थवादी हैं, उनसे मैं कुछ नहीं कह सकता।'

जोशमें आकर गोपाल चक्रवर्तीने कहा—'यदि भगवन्नाम-स्मरण करनेसे मनुष्यकी नीचता जाती रहे तो मैं अपनी नाक कटा लूँ।'

हरिदासजीने भी जोशमें आकर कहा—'यदि भगवन्नामके जपसे नीचताओंका जड़-मूलसे नाश न हो जाय तो मैं अपने नाक-कान दोनों ही काटनेके लिये तैयार हूँ।' बातको बहुत बढ़ते देखकर लोगोंने दोनोंको ही शान्त कर दिया। जमींदार उस आदमीसे बहुत असन्तुष्ट हुए। उसे वैष्णवापराधी और भगवन्नामविमुख समझकर जमींदारने उसे नौकरीसे पृथक् कर दिया। सुनते हैं कि कालान्तरमें उसकी नाक सचमुच कट गयी।

इसी प्रकारकी एक दूसरी घटना हरिनदी नामक ग्राममें हुई। हरिनदी नामक ग्रामके एक पण्डितमानी, अहङ्कारी ब्राह्मणको अपने शास्त्रज्ञानका बड़ा गर्व था। हरिदासजी चलते-फिरते, उठते-बैठते उच्च स्वरसे—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस महामन्त्रका सदा जप करते रहते थे। इन्हें मुसलमान और महामन्त्रका अनधिकारी समझकर उसने इनसे पूछा—'मुसलमानके लिये इस उपनिषद्के मन्त्रका जाप करना कहाँ लिखा है? यह तुम्हारी अनधिकार चेष्टा है और जो तुम्हें भगवद्भक्त कहकर तुम्हारी पूजा करते हैं वे भी पाप करते हैं। शास्त्रमें लिखा है, जहाँ अपूज्य लोगोंकी पूजा होती है और पूज्य लोगोंकी उपेक्षा की जाती है वहाँ दुर्भिक्ष, मरण, भय और दारिद्र्य—ये बातें होती हैं। इसलिये तुम इस अशास्त्रीय कार्यको छोड़ दो, तुम्हारे ऐसे आचरणोंसे देशमें दुर्भिक्ष पड़ जायगा।'

हरिदासजीने बड़ी ही नम्रतासे कहा—'विप्रवर! मैं नीच पुरुष भला शास्त्रोंका मर्म क्या जानूँ? किन्तु आप-जैसे विद्वानोंके ही मुखसे सुना है कि चाहे वेद-शास्त्रोंके अध्ययनका द्विजातियोंके अतिरिक्त किसीको अधिकार न हो, किन्तु भगवन्नाम तो किरात, हूण, आन्ध्र,

पुलिन्द, पुल्कस, आभीर, कङ्क, यवन तथा खस आदि जितनी भी पापयोनि और जंगली जाति हैं, सभीको पावन बनानेवाला है। भगवन्नामका अधिकार तो सभीको समानरूपसे है।'*

हरिदासजीके इस शास्त्रसम्मत उत्तरको सुनकर ब्राह्मणने पूछा—'खैर, भगवन्नामका अधिकार सबको भले ही हो, किन्तु मन्त्रका जप इस प्रकार जोर-जोरसे करनेसे क्या लाभ ? शास्त्रोंमें मानसिक, उपांशु और वाचिक–ये तीन प्रकारके जप बताये हैं। जिनमें वाचिक जपसे सहस्रगुणा उपांशु-जप श्रेष्ठ है, उपांशु-जपसे लक्षगुणा मानसिक जप श्रेष्ठ है। तुम मनमें जप करो, तुम्हारे इस जपको तो मानसिक, उपांशु अथवा वाचिक किसी प्रकारका भी जप नहीं कह सकते। यह तो 'वैखरी-जप' है जो अत्यन्त ही नीच बताया गया है।'

हरिदासजीने उसी प्रकार नम्रतापूर्वक कहा—महाराज ! मैं स्वयं तो कुछ जानता नहीं, किन्तु मैंने अपने गुरुदेव श्रीअद्वैताचार्यजीके मुखसे थोड़ा-बहुत शास्त्रका रहस्य सुना है। आपने जो तीन प्रकारके जप बताये हैं और जिनमें मानसिक जपको सर्वश्रेष्ठता दी है, वह तो उन मन्त्रोंके जपके लिये है जिनकी विधिवत् गुरुके द्वारा दीक्षा लेकर शास्त्रकी विधिके अनुसार केवल पवित्रावस्थामें ही साङ्गोपाङ्ग जप किया जाता है। ऐसे मन्त्र गोप्य कहे जाते हैं। वे दूसरोंके सामने प्रकट नहीं किये जाते। किन्तु भगवन्नामके लिये तो शास्त्रोंमें कोई विधि ही नहीं बतायी गयी है। इसका जप तो सर्वकालमें, सर्वस्थानोंमें, सबके सामने और सब परिस्थितियोंमें किया जाता

---

*किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा
आभीरकङ्का यवनाः खसादयः।
येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः
शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः॥

(श्रीमद्भा० २।४।१८

है। अन्य मन्त्रोंका चाहे धीरे-धीरे जपका अधिक माहात्म्य भले ही हो किन्तु भगवन्नामका माहात्म्य तो जोरोंसे ही उच्चारण करनेमें बताया है। भगवन्नामका जितने ही जोरोंसे उच्चारण किया जायगा उसका उतना ही अधिक माहात्म्य होगा, क्योंकि धीरे-धीरे नाम-जप करनेवाला तो अकेला अपने-आपको ही पावन बना सकता है, किन्तु उच्च स्वरसे सङ्कीर्तन करनेवाला तो सुननेवाले जड-चेतन सभीको पावन बनाता है!'*

इनकी इस बातको सुनकर ब्राह्मणने झुँझलाकर कहा—'ये सब शास्त्रोंके वाक्य अर्थवादके नामसे पुकारे जाते हैं। लोगोंकी नाम-जप और सङ्कीर्तनमें श्रद्धा हो इसीलिये ऐसे-ऐसे वाक्य कहीं-कहीं कह दिये गये हैं। यथार्थ बात तो यह है कि बिना दैवी-सम्पत्तिका आश्रय ग्रहण किये नाम-जपसे कुछ भी नहीं होनेका। यदि नाम-जपसे ही मनुष्यका उद्धार हो जाता तो फिर इतने शास्त्रोंकी रचना क्यों होती?'

हरिदासजीने उसी तरह नम्रताके साथ कहा—'पण्डितजी! श्रद्धा होना ही तो कठिन है। यदि सचमुचमें केवल भगवन्नामपर ही पूर्णरूपसे श्रद्धा जम जाय तो फिर शास्त्रोंकी आवश्यकता ही नहीं रहती। शास्त्रोंमें भी और क्या है, सर्वत्र 'भगवान्‌पर श्रद्धा करो' ये ही वाक्य मिलते हैं। श्रद्धा-विश्वासकी पुष्टि करनेके ही निमित्त शास्त्र हैं।'

आवेशमें आकर ब्राह्मणने कहा—'यदि केवल भगवन्नामजपसे ही सब कुछ हो जाय तो मैं अपने नाक-कान दोनों कटवा लूँगा।'

हरिदासजी यह कहते हुए चले गये कि 'यदि आपको विश्वास नहीं है तो न सही। मैंने तो अपने विश्वासकी बात आपसे कही है।' सुनते हैं,

---

*जपतो हरिनामानि स्थाने शतगुणाधिकः।
आत्मानञ्च पुनात्युच्चैर्जपन् श्रोतॄन् पुनाति च॥

(नारदीये प्र० वा०)

उस ब्राह्मणकी पीनस-रोगसे नाक सड़ गयी और वह गल-गलकर/गिर पड़ी। भगवन्नाम-विरोधीकी जो भी दशा हो वही थोड़ी है। सम्पूर्ण दुःखोंका एकमात्र मूल कारण भगवन्नामसे विमुख होना ही तो है।

इस प्रकार महात्मा हरिदासजी भगवन्नामका माहात्म्य स्थापित करते हुए गङ्गाजीके किनारे निवास करने लगे। जब उन्होंने सुना कि नवद्वीपमें उदय होकर गौरचन्द्र अपनी शीतल और सुखमयी कृपा-किरणोंसे भक्तोंके हृदयोंको भक्ति-रसामृतसे सिञ्चन कर रहे हैं, तो ये भी उस निष्कलङ्क पूर्ण चन्द्रकी छत्र-छायामें आकर नवद्वीपमें रहने लगे। ये अद्वैताचार्यके कृपापात्र तो पहलेसे ही थे। इसलिये इन्हें प्रभुके अन्तरङ्ग भक्त बननेमें अधिक समय नहीं लगा। थोड़े ही दिनोंमें ये प्रभुके प्रधान कृपापात्र भक्तोंमें गिने जाने लगे। इनकी भगवन्नाम-निष्ठाका सभी भक्त बड़ा आदर करते थे। प्रभु इन्हें बहुत अधिक चाहते थे। इन्होंने भी अपना सर्वस्व प्रभुके पादपद्मोंमें समर्पित कर दिया था। इनकी प्रत्येक चेष्टा प्रभुकी इच्छानुसार ही होती थी। ये भक्तोंके साथ सङ्कीर्तनमें रात्रि-रात्रिभर नृत्य करते रहते थे और नृत्यमें बेसुध होकर गिर पड़ते थे। इस प्रकार श्रीवास पण्डितका घर श्रीकृष्ण-सङ्कीर्तनका प्रधान अड्डा बन गया। शाम होते ही सब भक्त एकत्रित हो जाते। भक्तोंके एकत्रित हो जानेपर किवाड़ बंद कर दिये जाते और फिर सङ्कीर्तन आरम्भ होता। फिर चाहे कोई भी क्यों न आये, किसीके लिये किवाड़ नहीं खुलते थे। इससे बहुत-से आदमी निराश होकर लौट जाते और वे सङ्कीर्तनके सम्बन्धमें भाँति-भाँतिके अपवाद फैलाते। इस प्रकार एक ओर तो सज्जन भक्त सङ्कीर्तनके आनन्दमें परमानन्दका रसास्वादन करने लगे और दूसरी ओर निन्दक लोग सङ्कीर्तनके प्रति बुरे भावोंका प्रचार करते हुए अपनी आत्माको कलुषित बनाने लगे।

———

सखीप्रहरिया भाव

दिवि सूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ।
यदि भाः सदृशी सा स्याद्भासस्तस्य महात्मनः ॥*

(गीता ११।१२)

महाभारतके युद्धक्षेत्रमें अर्जुनके प्रार्थना करनेपर भगवान्‌ने उसे अपना विराट् रूप दिखाया था। भगवान्‌का वह विराट् रूप अर्जुनको ही दृष्टिगोचर हुआ था। दोनों सेनाओंके लाखों मनुष्य वहाँ उपस्थित थे, किन्तु उनमेंसे किसीको भी भगवान्‌के उस रूपके दर्शन नहीं हुए थे। अर्जुन भी इन चर्म-चक्षुओंसे भगवान्‌के दर्शन नहीं कर सकते थे, इसलिये कृपा करके भगवान्‌ने उन्हें दिव्य दृष्टि प्रदान कर दी थी। इसीलिये दिव्य दृष्टिके सहारे उस अलौकिक रूपको देखनेमें समर्थ हो सके। इधर भगवान् वेदव्यासजीने सञ्जयको दिव्य दृष्टि दे रखी थी, इस कारण उन्हें भी हस्तिनापुरमें बैठे-ही-बैठे उस रूपके दर्शन हो सके। असलमें दिव्य दृष्टिके बिना दिव्य रूपके दर्शन हो ही नहीं सकते। बाहरी लौकिक दृष्टिसे तो बाहरके भौतिक पदार्थ ही देखे जा सकते हैं। जबतक भीतरी नेत्र न खुलें, जबतक कृपा करके श्रीकृष्ण दिव्य दृष्टि प्रदान न करें तबतक अलौकिक और परम प्रकाशमय स्वरूप दीख ही नहीं सकता। भक्तोंका लोक ही अलग होता है, उसकी भाषा अलग होती है और उसका व्यवहार भी भिन्न ही प्रकारका होता है। जिसे भगवान् कृपा करके अपना लेते हैं, अपना कहकर जिसे वरण कर लेते हैं और जिसकी रतिरूपी अन्तर्दृष्टिको खोल देते हैं, उसे ही अपने ध्येय पदार्थमें इष्टदेवके दर्शन

---

* हजारों सूर्य और चन्द्रमाओंका जैसे एक साथ ही प्रकाश होता है, उसी प्रकारकी उन महात्माकी कान्ति हो गयी।

होते हैं। उसके सामने ही उसके भाव ज्यों-के-त्यों प्रकट होते हैं। दृढ़ विश्वासके विना कहीं भी अपने इष्टदेवके दर्शन नहीं हो सकते।

हम पहले ही बता चुके हैं, कि गौराङ्गके जीवनमें द्विविध भाव दृष्टिगोचर होते थे। वैसे तो वे सदा एक अमानी भगवत्-भक्तके भावमें रहते थे; किन्तु कभी-कभी उनके शरीरमें भगवत्-भाव भी प्रकट होता था, उस समय उनकी सभी चेष्टाएँ तथा व्यवहार ऐश्वर्यमय होते थे। ऐसा भाव बहुत देरतक नहीं रहता था, कुछ कालके ही अनन्तर उस भावका शमन हो जाता और फिर ये ज्यों-के-त्यों ही साधारण भगवत्-भक्तके भावमें आ जाते। अबतक ऐसे भाव थोड़ी ही देरको हुए थे, किन्तु एक बार ये पूरे सात प्रहर भगवत्-भावमें ही बने रहे। इस भावको 'सप्तप्रहरिया भाव' या 'महाप्रकाश' कहकर वैष्णव भक्तोंने इसका विशदरूपसे वर्णन किया है। नवद्वीपमें प्रभुके शरीरमें यही सबसे बड़ा भाव हुआ था। वासुदेव घोष, मुरारी गुप्त और मुकुन्द दत्त—ये तीनों उस महाप्रकाशके समय वहाँ मौजूद थे। ये तीनों ही वैष्णवोंमें प्रसिद्ध पदकार हुए हैं। इन तीनोंने चैतन्यचरित्र लिखा है। इन्होंने अपनी आँखोंका प्रत्यक्ष देखा हुआ वर्णन किया है, इतनेपर भी विश्वास न करनेवाले विश्वास नहीं करते, क्योंकि वे इस विषयसे एकदम अन-भिज्ञ हैं। उनकी बुद्धि भौतिक पदार्थोंके अतिरिक्त ऐसे विषयोंमें प्रवेश ही नहीं कर सकती। किन्तु जिनका परमार्थ-विषयमें तनिक भी प्रवेश होगा, उन्हें इस विषयके श्रवणसे बड़ा सुख मिलेगा, इसलिये अब 'महाप्रकाश' का वृत्तान्त सुनिये।

एक दिन प्रातःकाल ही सब भक्त श्रीवास पण्डितके घरपर जुटने लगे। एक-एक करके सभी भक्त वहाँ एकत्रित हो गये। उनमेंसे प्रधान-प्रधान भक्तोंके नाम ये हैं—अद्वैताचार्य, नित्यानन्द, श्रीवास, गदाधर, मुरारी गुप्त, मुकुन्द दत्त, नरहरि, गङ्गादास, महाप्रभुके मौसा चन्द्रशेखर आचार्यरत्न, पुरुषोत्तम आचार्य (स्वरूपदामोदर) वक्रेश्वर, दामोदर,

जगदानन्द, गोविन्द, माधव, वासुदेव घोष, सारङ्ग तथा हरिदास आदि-आदि। इनके अतिरिक्त और भी बहुत-से भक्त वहाँ उपस्थित थे।

एक प्रहर दिन चढ़ते-चढ़ते प्रायः सभी मुख्य-मुख्य भक्त श्रीवास पण्डितके घर आ गये थे, कि इतनेमें ही प्रभु पधारे। प्रभुके पधारते ही भक्तोंके हृदयोंमें एक प्रकारके नवजीवनका-सा सञ्चार होने लगा। और दिन तो प्रभु अन्य भक्तोंकी भाँति आकर बैठ जाते और सभीके साथ मिलकर भक्ति-भावसे बहुत देरतक संकीर्तन करते रहते, तब कहीं जाकर किसी दिन भगवत्-आवेश होता, किन्तु आज तो सीधे आकर एकदम भगवान्‌के सिंहासनपर बैठ गये। सिंहासनकी मूर्तियाँ एक ओर हटा दीं और आप शान्त, गम्भीर भावसे भगवान्‌के आसनपर आसीन हो गये। इनके बैठते ही भक्तोंके हृदयोंमें एक प्रकारका विचित्र-सा प्रकाश दिखायी देने लगा। सभी आश्चर्य और सम्भ्रमके भावसे प्रभुके श्रीविग्रहकी ओर देखने लगे। किन्तु किसीको उनकी ओर बहुत देरतक देखनेका साहस ही नहीं होता था। भक्तोंको उनका सम्पूर्ण शरीर तेजोमय परम प्रकाशयुक्त दिखायी देन लगा। जिस प्रकार हजारों सूर्य-चन्द्रमा एक ही स्थानपर प्रकाशित हो रहे हों। बहुत प्रयत्न करनेपर भी किसीकी दृष्टि बहुत देरतक प्रभुके सम्मुख टिक नहीं सकती थी। एकदम, चारों ओर विमल-धवल प्रकाशकी ज्योतिर्मय किरणें छिटक रही थीं। मानो अग्निकी शुभ्र ज्वालामेंसे बड़े-बड़े विस्फुलिङ्ग इधर-उधर उड़-उड़कर अन्धकारका संहार कर रहे हों। प्रभुके नखोंकी ज्योति आकाशमें बड़े-बड़े नक्षत्रोंकी भाँति स्पष्ट ही पृथक्-पृथक् दिखायी पड़ती थी। उनका चेहरा देदीप्यमान हो रहा था। भक्तोंकी आँखोंमें चकाचौंध छा जाता, किन्तु उस रूपसे दृष्टि हटानेको तबीयत नहीं चाहती थी। इस प्रकार सभी भक्त बहुत देरतक पत्थरकी निर्जीव मूर्तियोंकी भाँति स्तब्ध-भावसे चुपचाप बैठे रहे, उस समय कोई जोरसे साँसतक नहीं लेता था, यदि एक सूई

भी उस समय गिर पड़ती, तो उसकी भी आवाज सबको सुनायी देती। उस नीरव निस्तब्धताको भङ्ग करते हुए प्रभुने गम्भीर-भावसे कहना आरम्भ किया—'भक्तवृन्द! हम आज तुम सब लोगोंकी मनःकामना पूर्ण करेंगे। आज तुम लोग हमारा विधिवत् अभिषेक करो।'

प्रभुकी ऐसी आज्ञा पाते ही सभीको अत्यन्त ही आनन्द हुआ। श्रीवासके आनन्दकी तो सीमा ही न रही। वे प्रेमके कारण अपने आपेको भूल गये। जिस प्रकार कोई चक्रवर्ती राजा किसी कंगालके प्रेमके वशीभूत होकर सहसा उसकी टूटी झोंपड़ीमें स्वयं आ जाय, उस समय उसकी जो दशा हो जाती है, उससे भी अधिक प्रेममय दशा श्रीवास पण्डितकी हो गयी। वे आनन्दके कारण हक्के-बक्के-से हो गये। शरीरकी सुधि भुलाकर स्वयं ही घड़ा उठाकर गङ्गाजीकी ओर दौड़े, किन्तु बीचमें ही प्रेमके कारण मूर्छित होकर गिर पड़े। तब उनके दास-दासी बहुत-से घड़े लेकर गङ्गा-जल लेनेके लिये चल दिये। बहुत-से भक्त भी कहीं-कहींसे घड़ा माँगकर गङ्गा-जल लेनेके लिये दौड़े गये। बहुत-से घड़ोंमें गङ्गा-जल आ गया। भक्तोंने प्रभुको एक सुन्दर चौकी पर बिठाकर उनके सम्पूर्ण शरीरमें भाँति-भाँतिके सुगन्धित तैलोंकी मालिश की। तदनन्तर सुवासित जलके घड़ोंसे उन्हें विधिवत् स्नान कराया। अद्वैताचार्य और आचार्यरत्न प्रभृति पण्डितश्रेष्ठ महापुरुष स्नानके मन्त्रोंका उच्चारण करने लगे। भक्त बारी-बारीसे प्रभुके श्री-अंगपर गङ्गाजल डालते जाते थे और मन-ही-मन प्रसन्न होते थे। इस प्रकार घंटोंतक स्नान ही होता रहा। जब सभीने अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार स्नान करा दिया तब प्रभुके श्रीअङ्गको एक महीन सुन्दर स्वच्छ वस्त्रसे खूब पोंछा गया। उसी समय श्रीवास पण्डित अपने घरमेंसे नूतन महीन रेशमी वस्त्र निकाल लाये। उन सुन्दर वस्त्रोंको भक्तोंने विधिवत् प्रभुके शरीरमें पहनाया और फिर उन्हें एक सजे हुए सुन्दर सिंहासनपर विराजमान किया।

प्रभुके सिंहासनारूढ़ हो जानेपर भक्तोंने बारी-बारीसे प्रभुके अङ्गोंमें केसर, कपूर, तथा कस्तूरी मिले हुए चन्दनका लेपन किया। चरणोंमें तुलसी और चन्दन चढ़ाया। मालाएँ घरमें थोड़ी ही थीं, यह समझकर कुछ भक्त उसी समय बाजारमें दौड़े गये और बहुत-सी सुन्दर-सुन्दर मालाएँ जल्दीसे खरीद लाये। सभीने एक-एक करके प्रभुके गलेमें मालाएँ पहनायीं। भक्तोंके चढ़ाये हुए पुष्पोंसे प्रभुके पादपद्म एकदम ढक गये और मालाओंसे सम्पूर्ण गला भर गया। प्रभुने सभी भक्तोंको अपने करकमलोंसे प्रसादीमाला प्रदान की। प्रभुकी उस प्रसादी-मालाको पाकर भक्त आनन्दके साथ नृत्य करने लगे।

श्रीवास तो बेसुध थे। उनकी दशा ऐसी हो गयी थी मानो किसी जन्मके दरिद्रीको पारसमणि मिल गयी हो। उनका हृदय तड़प रहा था, कि प्रभुकी इस अलौकिक छबिके दर्शन किसे-किसे करा दूँ? जब कोई प्रिय वस्तु देखनेको मिल जाती है, तब हृदयमें वह इच्छा स्वाभाविक ही उत्पन्न होती है, इसके दर्शन अपने सभी प्रियजनोंको करा दूँ। यह सोचकर उन्होंने अद्वैताचार्यजीके कानमें कहा—'शचीमाता मुझे बहुत चिढ़ाया करती हैं। वे मुझसे बार-बार कहती हैं, कि तुम सभीने मिलकर मेरे निमाईको बिगाड़ दिया। पहले वह कितना सीधा-सादा था, अब तुम्हीं सब न जाने उसे क्या-क्या सिखा देते हो?' आज माताको लाकर दिखाऊँ, कि देख तेरा निमाई असलमें यह है। यह तेरा पुत्र नहीं है, किन्तु सम्पूर्ण जगत्का पिता है। यदि आपकी अनुमति हो, तो मैं शचीमाताको बुला लाऊँ।

आचार्यने श्रीवासकी बातका समर्थन करते हुए कहा—'हाँ, हाँ, अवश्य। शचीमाताको जरूर दर्शन कराना चाहिये।'

इतना सुनते ही श्रीवास पण्डित जल्दीसे दौड़कर शचीमाताको बुला लाये। शचीमाताको देखते ही अद्वैताचार्य कहने लगे—'माता! यह

सामने देखो, जिन्हें तुम अपना बताती थी, वे अब तुम्हारे पुत्र नहीं रहे। अब तुम इनके दर्शन करो और अपने जीवनको सफल बनाओ।'

माता भौचक्की-सी चुपचाप खड़ी ही रही। उसे कुछ सूझा ही नहीं कि मुझे क्या करना चाहिये। श्रीवास पण्डितने माताकी ऐसी दशा देखकर दीन-भावसे प्रार्थना की-'प्रभो! ये जगन्माता शचीदेवी सामने खड़ी हैं। इन्हें आपकी माता होनेका परम सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इनके ऊपर कृपा होनी चाहिये। इन्हें आपके असली स्वरूपके दर्शन हों यही हमारी प्रार्थना है।'

प्रभुने हुंकार देते हुए कहा—'शचीमाताके ऊपर कृपा नहीं हो सकती। यह सदा वैष्णवोंको बुरा बताया करती हैं कि सभी वैष्णवोंने मिलकर मेरे निमाईको बरबाद कर दिया।'

प्रभुकी ऐसी बात सुनकर अद्वैताचार्यने कहा—'प्रभो! माताका आपके प्रति वात्सल्य-भाव है। वह जो भी कुछ कहती है वात्सल्य स्नेह-के वशीभूत होकर ही कहती है। वैष्णवोंके प्रति इसके हृदयमें द्वेषके भाव नहीं हैं। इसकी उपासना वात्सल्य-भावकी ही है। इसके ऊपर अवश्य कृपा होनी चाहिये।'

अद्वैताचार्य यह प्रार्थना कर ही रहे थे, कि धीरेसे श्रीवास पण्डित-ने माताके कानमें कहा—'तुम प्रभुके पादपद्मोंमें प्रणाम करो।' माता पुत्रके लिये प्रणाम करनेमें कुछ हिचकने लगी, तब आचार्यने जोर देते हुए कहा—'माँ! अब तुम निमाईके भावको भुला दो। इन्हें भगवत्-बुद्धिसे प्रणाम करो। देर करनेका काम नहीं है।'

वृद्ध आचार्यके ऐसा आग्रह करनेपर माताने आगे बढ़कर प्रभुके पादपद्मोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और गद्‌गद कण्ठसे प्रार्थना करने लगी—

'भगवन् ! मैं अज्ञ स्त्री तुम्हारे बारेमें कुछ भी नहीं जानती कि तुम कौन हो । तुम जो भी हो, मेरे ऊपर कृप करो ।' माताको प्रणाम करते देखकर प्रभुने उसके मस्तकपर अपने चरणोंको रखते हुए कहा—'जाओ, सब वैष्णव-अपराध क्षमा हुए, तुम्हारे ऊपर पूर्ण कृपा हुई ।' माता यह सुनकर आनन्दमें विभोर होकर रुदन करने लगी ।

अब तो सभी भक्त क्रमशः प्रभुकी भाँति-भाँतिकी पूजा करने लगे । कोई धूप चढ़ाता, कोई दीप सामने रखता, कोई फल-फूल सामने रखता और कोई-कोई नवीन-नवीन, सुन्दर-सुन्दर वस्त्र लाकर प्रभुके शरीरपर धारण कराता । इस प्रकार सभींने अपनी-अपनी इच्छानुसार प्रभुकी पूजा की । अब भोगकी बारी आयी । सभी अपनी-अपनी इच्छा और रुचिके अनुसार विविध प्रकारके व्यञ्जन, नाना भाँतिकी मिठाइयाँ और भाँति-भाँतिके फलोंको थालोंमें सजा-सजाकर प्रभुके भोगके लिये लाये । सभी प्रसन्नतापूर्वक प्रभुके हाथोंमें भाँति-भाँतिकी वस्तुएँ देने लगे । कोई तो मिठाई देकर कहता—'प्रभु ! इसका भोग लगाइये ।' प्रभु उसे प्रेमपूर्वक खा जाते । कोई फल देकर ही प्रार्थना करता—'इसे स्वीकार कीजिये ।' प्रभु चुपचाप फलोंको ही भक्षण कर जाते । कोई लड्डू, पेड़ा तथा भाँति-भाँतिकी मिठाई देते, कोई कटोरोंमें दूध लेकर ही प्रार्थना करता—'प्रभो ! इसे आरोगिये । प्रभु इसे भी पी जाते । उस समय जिसने जो भी वस्तु प्रेमपूर्वक दी, प्रभुने उसे ही भक्षण कर लिया । किसीकी वस्तुको अस्वीकार नहीं किया । भला अस्वीकार कर भी कैसे सकते थे ? उनकी तो प्रतिज्ञा है कि 'यदि कोई भक्तिसे मुझे फल-फूल या पत्ते भी देता है, तो उन फूल-पत्तोंको भी मैं खुश होकर खा जाता हूँ ।' फिर भक्तोंके प्रेमसे दिये हुए नैवेद्यको वह किस प्रकार छोड़ सकते थे । उस दिन प्रभुने कितना खाया और भक्तोंने कितना खिलाया इसका अनुमान कोई भी नहीं कर सकता । सबके प्रेम प्रसादको

पानेके अनन्तर श्रीवास पण्डितने अपने काँपते हुए हाथोंसे सुवासित ताम्बूल प्रभुके अर्पण किया। प्रभु प्रेमपूर्वक ताम्बूल चर्वण करने लगे। सभी बारी-बारीसे ताम्बूल भेंट करने लगे। प्रभु उन्हें स्पर्श करके भक्तोंको प्रसादके रूपमें देते जाते थे। प्रभुदत्त पानको पाकर सभी भक्त अपने भाग्यकी सराहना करने लगे।

ताम्बूल-भक्षणके अनन्तर प्रभु मन्द-मन्द मुस्कानके साथ सभीपर अपनी कृपा-दृष्टि फेरते हुए कुछ प्रेमकी बातें कहने लगे। उस समय उनके मुखसे जो भी बातें निकलतीं, वे सभी अमृत-रससे सिंची हुई होती थीं। भक्तोंके हृदयमें वे एक प्रकारकी विचित्र प्रकारकी खलबली-सी उत्पन्न करनेवाली थीं। प्रभुकी उस समयकी वाणीमें इतना अधिक आकर्षण था, कि सभी बिना हिले-डुले, एक आसनसे बैठे हुए प्रभुके मुखसे निःसृत उपदेशरूपी रसामृतका निरन्तर भावसे पान कर रहे थे। किसीको कुछ पता ही नहीं था, कि हम किस लोकमें बैठे हुए हैं? उस समय भक्तोंके लिये इस दृश्य जगत्के प्रपञ्चोंका एक प्रकारसे अत्यन्ताभाव ही हो गया था। प्रातःकालसे बैठे-बैठे सन्ध्या हो गयी, भगवान् भुवनभास्कर भी प्रभुके भाव-परिवर्तनकी प्रतीक्षा करते-करते अस्ताचलको प्रस्थान कर गये, किन्तु प्रभुके भावमें अणुमात्र भी परिवर्तन नहीं हुआ। भक्त भी उसी प्रकार प्रेमपाशमें बँधे वहीं बैठे रहे।

श्रीवास पण्डितके सेवकोंने घरमें दीपक जलाये, किन्तु उन क्षीण दीपकोंकी ज्योति प्रभुकी देहके दिव्य प्रकाशमें फीकी-फीकी-सी प्रतीत होने लगी। किसीको पता ही नहीं चला कि दिन कब समाप्त हुआ और कब रात्रि हो गयी? सभी उस दिव्यालोकके प्रकाशमें अपने आपेको भूले हुए बैठे थे।

भक्तोंको भगवान्‌के दर्शन

मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः ।
मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः ॥ †

(श्रीमद्भा० १०। ४३। १७)

---

† जिस समय भगवान्‌ने अपने बड़े भाई बलदेवजीके साथ कंसके सभामण्डपमें प्रवेश किया, उस समय रङ्ग-मण्डपमें उपस्थित सभी लोगोंको उनकी भावनाके अनुसार भगवान्‌के विभिन्न रूप दिखायी दिये। मल्लोंको उनका शरीर वज्रके समान, नरोंको नरपतिके समान, स्त्रियोंको मूर्तिमान् कामदेवके समान, गोपोंको सखाके समान, दुष्टजनोंको सजीव दण्डके समान, अपने माता-पिताको पुत्रके समान, कंसको मृत्युके समान, अज्ञानियोंको विराट्‌के समान, योगियोंको परम तत्त्वके समान और यादवोंको परम देवताके समान दिखायी देने लगा। (जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी ॥)

श्रीकृष्ण भगवान्ने जब बलदेवजीके सहित कंसके रंगमण्डपमें प्रवेश किया था, तब वहाँपर विभिन्न प्रकृतिके मनुष्य बैठे हुए थे। उन्होंने अपनी-अपनी भावनाके अनुसार भगवान्के शरीरमें भिन्न-भिन्न रूपोंके दर्शन किये थे। इसलिये वहाँके उपस्थित नर-नारियोंको अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार नवों रसोंका अनुभव हुआ। कोई तो भगवान्के रूपको देखकर डर गये, कोई काँपने लगे, कोई घृणा करने लगे, कोई हँसने लगे, किसीके हृदयमें प्रेम उत्पन्न हुआ और किसीको क्रोध उत्पन्न हुआ। स्त्रियोंको तो वे साक्षात् कामदेव ही प्रतीत हुए। किन्तु यहाँ प्रभुके प्रकाशके समय सभी एक ही प्रकृतिके भगवद्-भक्त ही थे। इसलिये प्रभुके महाभावसे सभीको समानभावसे आनन्द ही हुआ, सभीने उनके प्रकाशके आलोकमें सुखका ही अनुभव किया, सभीने उनमें भगवत्ताके ही दर्शन किये, किन्तु सबके इष्ट भिन्न-भिन्न होनेके कारण, एक ही भगवान् उन्हें विभिन्न भावसे दिखायी दिये। सभीने प्रभुके शरीरमें अपने-अपने इष्टदेवका ही स्वरूप देखा।

सबसे पहले बातों-ही-बातोंमें प्रभुने श्रीवास पण्डितके ऊपर कृपा की। आपने श्रीवास पण्डितको सम्बोधित करते हुए कहा—'श्रीवास! तुम हमारे परम कृपापात्र हो, हम सदा ही तुम्हारी देख-रेख करते हैं। तुम्हें वह घटना याद है, जब देवानन्द पण्डितके यहाँ तुम बहुत-से अन्य शिष्योंके सहित श्रीमद्भागवतका पाठ सुन रहे थे। पाठ सुनते-सुनते तुम बीचमें ही भावावेशमें आकर मूर्छित हो गये थे। उस समय तुम्हारे भावावेशको न तो पण्डितजी ही समझ सके थे और न उनके शिष्य ही समझ सके थे। शिष्य तुम्हें कन्धोंपर लादकर तुम्हारे घर पहुँचा गये थे। उस समय मैंने ही तुम्हें होशमें किया था, मैंने ही तुम्हारी मूर्छा भङ्ग की थी।'

प्रभुके मुखसे अपनी इस गुप्त घटनाको सुनकर श्रीवास पण्डितको परम आश्चर्य हुआ। उन्होंने यह घटना किसीके सम्मुख प्रकट नहीं की थी। इसके अनन्तर प्रभु अद्वैताचार्यको लक्ष्य करके कहने लगे—'आचार्य! तुम्हें उस दिनकी याद है जब तुम्हें श्रीमद्भागवद्गीताके निम्न श्लोकपर शङ्का हो गयी थी—

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

(गीता १३। १३)

और तुम उस दिन बिना ही भोजन किये सो गये थे, इसपर मैंने ही '*पाणिपादं तत्*' की जगह '*पाणिपादान्तः*' यह प्रकृत पाठ बताकर तुम्हारी शङ्काका निवारण किया था।' इस बातको सुनकर आचार्यने प्रभुके चरणोंमें बार-बार प्रणाम किया। अब भक्तोंने भगवदावेशमें आसनपर बैठे हुए प्रभुकी सन्ध्या-आरतीका आयोजन किया। एक बहुत बड़ी आरती सजायी गयी। भक्त अपने हाथोंसे शङ्ख, घड़ियाल, झाँझ तथा अन्य भाँति-भाँतिके वाद्य बजाने लगे। श्रीवास पण्डितने शचीमाताके हाथमें आरती देकर उनसे आरती करनेको कहा। श्रीवासकी पत्नीकी सहायतासे वृद्धा माताने अपने काँपते हुए हाथोंसे प्रभुकी आरती की। उस समय सभी भक्त आनन्दमें उन्मत्त होकर वाद्य बजा रहे थे। जैसे-तैसे आरती समाप्त की गयी। श्रीवास पण्डितने शचीमाताको घर भेज दिया। अब सभी भक्तोंके वरदानकी बारी आयी। प्रायः प्रभुके सभी अन्तरङ्ग भक्त उस समय वहाँ उपस्थित थे, किन्तु उनके परम प्रिय भक्त श्रीधर वहाँ नहीं थे।

भक्त श्रीधरसे तो पाठक परिचित ही होंगे। ये केलाके खोल और दोना बेचनेवाले वे ही भाग्यवान् भक्त हैं, जिनसे प्रभु सदा छेड़खानी

किया करते थे और घड़ी-दो-घड़ी तंग करके ही आधे दामोंपर इनसे खोल लेते थे। केलेकी गहरके डंठलके नीचे केलेमें जो मोटी-सी डंठी शेष रह जाती है, उसीको बङ्गालमें खोल कहते हैं। बङ्गालमें उसका शाक बनता है। प्रभुके भोजनोंमें जबतक श्रीधरके खोलका साग नहीं होता था, तबतक उन्हें अन्य पदार्थ स्वादिष्ट ही नहीं लगते थे। केलेके ऊपर जो कोमल-कोमल खोपटा होता है, उसे काट-काटकर और उसके थाल-से बनाकर बहुत गरीब दूकानदार उन्हें भी बेचते हैं। उसमें स्त्रियाँ तथा पुरुष पूजनकी सामग्री रखकर पूजा करनेके निमित्त ले जाते हैं। श्रीधरजी इन्हीं चीजोंको बेचकर अपना जीवन-निर्वाह करते थे। इनसे जो आमदनी हो जाती, उसमेंसे आधीसे तो देवपूजन तथा गङ्गापूजन आदि करते और आधीसे जिस किसी प्रकार पेट भरते। दिन-रात ये उच्च स्वरसे हरिनाम-कीर्तन करते रहते। इसलिये इनके पासमें रहनेवाले मनुष्य इनसे बहुत ही नाराज रहते। उनका कहना था कि—'यह बूढ़ा रात्रिमें किसीको सोने ही नहीं देता।' इस गरीब दूकानदारकी सभी उपेक्षा करते। कोई भी इन्हें भक्त नहीं समझता, किन्तु प्रभुका इनपर हार्दिक स्नेह था। वे इनकी भगवत्-भक्तिको जानते थे, इसीलिये उन्होंने भगवत्-भावमें भी इन्हें स्मरण किया।

श्रीधरका घर बहुत दूर नगरके दूसरे कोनेपर था। सुनते ही चार-पाँच भक्त दौड़े गये। उस समय श्रीधर आनन्दमें पड़े हुए श्रीहरिके मधुर नामोंका संकीर्तन कर रहे थे। लोगोंने जाकर किवाड़ खटखटाये। 'श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव' कहते-कहते ही इन्होंने कहा—'कौन है ?'

भक्तोंने जल्दीसे कहा—'किवाड़ तो खोलो, तब स्वयं ही पता चल जायगा कि कौन है ? जल्दी से किवाड़ तो खोलो।'

यह सुनकर श्रीधरने किवाड़ खोले और बड़ी ही नम्रताके साथ भक्तोंसे आनेका कारण पूछा। भक्तोंने जल्दीसे कहा—'प्रभुने तुम्हें स्मरण किया है। चलो जल्दी चलो।'

इस दीन-हीन कंगालको 'प्रभुने स्मरण किया है' यह सुनते ही श्रीधर मारे प्रेमके बेसुध हो गये। वे हाय कहकर एकदम धड़ामसे पृथ्वीपर गिर पड़े। उन्हें शरीरकी सुध-बुध भी न रही। भक्तोंने सोचा-यह तो एक नयी आफत आयी, किन्तु प्रभुकी आज्ञा तो पूर्ण करनी ही है, भक्तोंने मूर्छित श्रीधरको कन्धोंपर उठा लिया और उसी दशामें उन्हें प्रभुके पास लाये। श्रीधर अभीतक अचैतन्य-दशाहीमें थे, प्रभुने अपने कोमल करकमलोंसे उनका स्पर्श किया। प्रभुका स्पर्श पाते ही श्रीधर चैतन्य हो गये। श्रीधरको चैतन्य देखकर प्रभु उनसे कहने लगे—'श्रीधर! तुम हमारे रूपके दर्शन करो। तुम्हारी इतने दिनोंकी मनःकामना पूर्ण हुई।' श्रीधरने रोते-रोते प्रभुके तेजोमय रूपके दर्शन किये। फिर प्रभुने उन्हें स्तुति करनेकी आज्ञा दी।

श्रीधर हाथ जोड़े हुए गद्गद कण्ठसे कहने लगे—'मैं दीन-हीन पतित तथा लोक-बहिष्कृत अधम पुरुष भला प्रभुकी क्या स्तुति कर सकता हूँ? प्रभो! मैं बड़ा ही अपराधी हूँ। आपकी यथार्थ महिमाको न समझकर मैं सदा आपसे झगड़ा ही करता रहा। आप मुझे बार-बार समझाते, किन्तु मायाके चक्करमें पड़ा हुआ मैं अज्ञानी आपके गूढ़ रहस्यको ठीक-ठीक न समझ सका। आज आपके यथार्थरूपके दर्शनसे मेरा अज्ञानान्धकार दूर हुआ। अब मैं प्रभुके सम्मुख अपने समस्त अपराधोंकी क्षमा चाहता हूँ।'

प्रभुने गद्गद कण्ठसे कहा—'श्रीधर! हम तुम्हारे ऊपर बहुत सन्तुष्ट हैं। तुम अब हमसे अपनी इच्छानुसार वर माँगो। ऋद्धि, सिद्धि, धन, दौलत, प्रभुता जिसकी तुम्हें इच्छा हो वही माँग लो। बोलो, क्या चाहते हो?'

हाथ जोड़े हुए अत्यन्त ही दीनभावसे गद्गद कण्ठस्वरमें श्रीधरने कहा—'प्रभो ! मैंने क्या नहीं पा लिया ? संसार मेरी उपेक्षा करता है। मेरे पूछनेपर भी कंगाल समझकर लोग मेरी बातकी अवहेलना कर देते हैं, ऐसे तुच्छ कंगालको आपने अनुग्रह करके बुलाया और अपने देव-दुर्लभ दर्शन देकर मुझे कृतार्थ किया। अब मुझे और चाहिये ही क्या ? ऋद्धि-सिद्धिको लेकर मैं करूँगा ही क्या ? वह भी तो एक प्रकारकी बड़ी माया ही है।'

प्रभुने आग्रहपूर्वक कहा—'नहीं कुछ तो वरदान माँगो ही। ऋद्धि-सिद्धि नहीं तो, जो भी तुम्हें प्रिय हो वही माँगो।'

श्रीधरने उसी दीनताके स्वरमें कहा—'यदि प्रभु कुछ देना ही चाहते हैं, तो यही वरदान दीजिये कि जो ब्राह्मणकुमार हमसे सदा खोल खरीदते समय झगड़ा करते रहते थे वे सदा हमारे हृदयमें विराजमान रहें।'

श्रीधरकी इस निष्किञ्चनता और निःस्पृहतासे प्रभु परम प्रसन्न हुए। श्रीधर भगवान्के मुरली-मनोहर रूपके उपासक थे। वे भगवान्के '*श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव*' इन मधुर नामोंका सदा संकीर्तन करते रहते थे, इसलिये उन्हें प्रभुने श्रीकृष्ण-रूपके दर्शन कराये। प्रभुके श्रीविग्रहमें अपने इष्टदेवके दर्शन करके श्रीधर कृतार्थ हुए। वे मूर्छित होकर गिर पड़े और भक्तोंने एक ओर लिटा दिया।

अब मुरारी गुप्तकी बारी आयी। मुरारी परम धार्मिक तथा विशुद्ध वैष्णव तो थे, किन्तु उन्हें तर्क-वितर्क और शास्त्रार्थ करनेका कुछ व्यसन-सा था। प्रभुने उन्हें सम्बोधित करते हुए कहा—'मुरारी ! तुम्हारे भक्त होनेमें यही एक अपूर्णता है, तुम शुष्क वाद-विवाद करना त्याग दो। अध्यात्मशास्त्रोंमें भक्तिग्रन्थोंको ही प्रधानता दो।'

मुरारी गुप्तने कहा—'मैं वाद-विवाद और तर्क-वितर्क और कहाँ करता हूँ, केवल विद्वानोंके समीप कुछ प्रसङ्ग चलनेपर कह देता हूँ।'

प्रभुने कहा—'अद्वैताचार्यके साथ तुम तर्क-वितर्क नहीं किया करते? क्या उनसे तुम अद्वैतवेदान्तकी बातें नहीं बघारा करते?'

इसपर अद्वैताचार्यने प्रभुसे पूछा—'प्रभो! क्या अद्वैत वेदान्तकी बातें करना बुरा काम है?'

प्रभुने कुछ मुस्कराते हुए कहा—'बुरा काम कौन बताता है? बहुत अच्छा है, किन्तु जिन्होंने भक्ति-पथका अनुसरण किया है, उन्हें इस प्रकारकी सिद्धियों और प्रक्रियाओंके चक्करमें पड़नेका प्रयोजन ही क्या है?' यह कहकर प्रभु गम्भीर घोषसे इस श्लोकको पढ़ने लगे—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। २०)

प्रभुकी ऐसी आज्ञा सुनकर मुरारी चुप हो गये। इसपर प्रभुने कहा—'मुरारी! तुम्हें ब्रह्मकी सिद्धिके लिये प्रक्रियाओंकी शरण लेनेकी क्या आवश्यकता है? तुम्हारे भगवान् तो जन्मसिद्ध हैं। तुम तो प्रभुके जन्मजन्मान्तरोंके भक्त हो। हनूमान्‌के समान तुम्हारा भाव और विग्रह है। तुम साक्षात् हनूमान् ही हो। अपने रूपका तो स्मरण करो।'

मुरारी रामभक्त थे, प्रभुके स्मरण दिलानेपर वे अपने इष्टदेवका ध्यान करने लगे। उन्हें ऐसा भान हुआ, कि मैं साक्षात् हनूमान् ही हूँ और अपने इष्टदेवके चरणोंमें बैठा हुआ उनकी पूजा कर रहा हूँ। उन्होंने ऊपरको आँख उठाकर प्रभुकी ओर देखा। उन्हें प्रभुका रूप अपने इष्टदेव सीतारामके ही रूपमें दिखायी देने लगा। अपने इष्टदेवको प्रभुके श्रीविग्रहके रूपमें देखकर मुरारी गद्‌गद कण्ठसे स्तुति करने लगे और बार-बार भूमिपर लोटकर साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगे।

प्रभुके वरदान माँगनेकी आज्ञापर हाथ जोड़े हुए मुरारीने अविचल श्रीराम-भक्तिकी ही प्रार्थना की, जिसे प्रभुने उनके मस्तकपर अपने पाद-पद्म रखकर प्रेमपूर्वक प्रदान की।

इसके अनन्तर एक-एक करके सभी भक्तोंकी बारी आयी। अद्वैत, श्रीवास, वासुदेव सभीने प्रभुसे अहैतुकी भक्तिकी ही प्रार्थना की। हरिदास अपनेको बहुत ही दीन-हीन, कंगाल और अधम समझते थे। उन्हें प्रभुके सम्मुख होनेमें संकोच होता था, इसलिये वे सबसे दूर भक्तोंके पीछे छिपे हुए बैठे थे। प्रभुने गम्भीर भावसे कहा—'हरिदास! हरिदास कहाँ है? उसे हमारे सामने लाओ।' सभी भक्त चारों ओर हरिदासजीको खोजने लगे, हरिदासजी सबसे पीछे सिकुड़े हुए बैठे थे। भक्तोंने उन्हें प्रभुके सम्मुख होनेको कहा; किन्तु वे तो प्रेममें बेसुध थे। भक्तोंने उन्हें उठाकर प्रभुके सम्मुख किया। हरिदासको सम्मुख देखकर प्रभु उनसे कहने लगे—हरिदास! तुम अपनेको नीच मत समझो। तुम सर्वश्रेष्ठ हो, मेरी-तुम्हारी एक ही जाति है। जो तुम्हारा स्मरण-ध्यान करते हैं, वे मानो मेरी ही पूजा करते हैं। मैं सदा ही तुम्हारे साथ रहता हूँ। तुम्हारी पीठपर जब बेंत पड़ रहे थे, तब भी मैं तुम्हारे साथ ही था, वे बेंत तो मेरी ही पीठपर पड़ रहे थे। देख लो, मेरी पीठपर अभीतक निशान बने हुए हैं। सभी भक्तोंके कष्टोंको मैं अपने ऊपर ही झेलता हूँ। इसलिये भारी-से-भारी कष्ट पड़नेपर भी भक्त दुखी नहीं होते। कारण कि जो लोग भक्तोंको कष्ट देते हैं, वे मानो मुझे ही कष्ट पहुँचाते हैं। इसीलिये अब मैं दुष्टोंका संहार न करके उद्धार करूँगा। तुमने मुझसे दुष्टोंके संहारकी प्रार्थना नहीं की थी। किन्तु उनकी बुद्धि-शुद्धि और कल्याणकी ही प्रार्थना की थी। इसलिये अब मैं अपने सुमधुर नाम-संकीर्तनद्वारा दुष्टोंका उद्धार कराऊँगा। मेरे इस कार्यमें जातिवर्ण या ऊँच-नीचका विचार न रहेगा। मेरे नाम-संकीर्तनसे सभी पावन बन सकेंगे। अब तुम अपना अभीष्ट वर मुझसे माँगो?'

हाथ जोड़े हुए दीन-भावसे हरिदासजीने कहा—'हे वर देनेवालोंमें श्रेष्ठ ! हे दयालो ! हे प्रेमावतार ! यदि आपकी इच्छा मुझे वरदान ही देनेकी है, तो मुझे यही वरदान दीजिये कि मैं सदा दीन-हीन, कंगाल तथा निष्किञ्चन अमानी ही बना रहूँ। मुझे प्रभुके दास होनेके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकारका अभिमान न हो, मैं सदा वैष्णवोंकी पदधूलिको अपने मस्तकका परम भूषण ही समझता रहूँ, वैष्णवोंके चरणोंमें मेरी सदा प्रीति बनी रहे। इसी वरदानकी मैं प्रभुके निकटसे याचना करता हूँ।'

इनकी इस प्रकारकी वर-याचनाको सुनकर भक्तमण्डलीमें चतुर्दिक्से आनन्दध्वनि होने लगी। सभी हरिदासजीकी भक्ति-भावनाकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे।

मुकुन्द दत्तसे भी पाठक अपरिचित न होंगे। वे भी वहाँ उपस्थित थे, किन्तु अपनेको प्रभु-दर्शनका अनधिकारी समझकर दूर ही बैठे रो रहे थे। श्रीवास पण्डितने डरते-डरते प्रार्थना की–'प्रभो ! ये मुकुन्द आपके अत्यन्त ही प्रिय हैं, इनके ऊपर भी कृपा होनी चाहिये। ये अपनेको प्रभुके दर्शनतकका अधिकारी नहीं समझते।'

प्रभुने कुछ रोषके स्वरमें गम्भीर भावसे कहा—'मुकुन्दके ऊपर कृपा नहीं हो सकती। ये अपनेको वैसे तो भक्त करके प्रसिद्ध करते हैं, किन्तु बातें सदा तार्किकों-सी किया करते हैं। वैष्णव-लीलाओंको पण्डित-समाजमें बैठकर बाजीगरका खेल बताते हैं और अपनेको बड़ा भारी विद्वान् और ज्ञानी समझते हैं। इन्हें भगवान्‌के दर्शन न हो सकेंगे।'

रोते-रोते मुकुन्दने श्रीवासके द्वारा पुछवाया, हम कभी भी भगवत्-कृपाके अधिकारी न बन सकेंगे ? इनके कहनेपर श्रीवास पण्डितने पूछा–

प्रभो ! मुकुन्द जिज्ञासा कर रहे हैं कि हम कभी भगवत्-कृपाके अधिकारी बन भी सकेंगे ?'

प्रभुने कुछ उपेक्षा-भावसे उत्तर देते हुए कहा—'हाँ, कोटि जन्मोंके बाद अधिकारी बन सकते हो।' इतना सुनते ही मुकुन्द आनन्दमें विभोर होकर नृत्य करने लगे और प्रेममें पुलकित होकर गद्गद कण्ठसे यह कहते हुए कि 'कभी होंगे तो सही, कभी होंगे तो सही' नृत्य करने लगे। वे स्वयं ही कहते जाते, कोटि जन्मोंकी क्या बात है। थोड़े ही कालमें कोटि जन्म बीत जायँगे। बहुत कालमें भी बीतें, तो भी तो अन्तमें हमें प्रभु-कृपा प्राप्त हो सकेगी। बस, भगवत्-कृपा प्राप्त होनी चाहिये, फिर चाहे वह कभी क्यों न प्राप्त हो ? इनकी ऐसी आनन्द-दशाको देखकर सभी भक्तोंको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। वे इनकी ऐसी दृढ़ निष्ठाको देखकर अवाक् रह गये। अन्तमें प्रभुने इन्हें प्रेमालिङ्गन प्रदान करते हुए कहा—'मुकुन्द ! तुमने अपनी इस अविचल निष्ठासे मुझे खरीद लिया। सचमुच तुम परम वैष्णव हो, तुम्हारी ऐसी दृढ़ निष्ठाके कारण मेरी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा। तुम भगवत्-कृपाके सर्वश्रेष्ठ अधिकारी हो। तुमने ऐसी बात कहकर मेरे आनन्दको और लक्षों गुणा बढ़ा दिया। मुकुन्द ! तुम्हारे-जैसा धैर्य, तुम्हारी-जैसी उच्च निष्ठा साधारण लोगोंमें होनी अत्यन्त ही कठिन है। तुम भगवत्-कृपाके अधिकारी बन गये। मेरे तेजोमय रूपके दर्शन करो।' यह कहकर प्रभुने उन्हें अपने तेजोमय रूपके दर्शन कराये और मुकुन्द उस अलौकिक रूपके दर्शनसे मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। फिर सभी भक्तोंने अपनी-अपनी भावनाके अनुसार श्यामवर्ण, मुरलीमनोहर, सीताराम, राधाकृष्ण, देवी-देवता तथा अन्य भगवत्-रूपोंके प्रभुके शरीरमें दर्शन किये।

भगवद्भावकी समाप्ति

अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा
भयेन च प्रव्यथितं मनो मे।
तदेव मे दर्शय देव रूपं
प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥*

(गीता ११ । ४५)

संसारमें यह नियम है, जो मनुष्य जितना बोझ ले जा सकता है, समझदार लोग उसके ऊपर उतना ही बोझ लादते हैं। यदि कोई अज्ञानवश किसीके ऊपर उसकी शक्तिसे अधिक बोझ लाद दे तो या तो वह उस बोझको बीचमें ही गिरा देगा या उससे मूर्छित होकर स्वयं ही भूमिपर गिर पड़ेगा। इसी प्रकार भगवान् अपने सम्पूर्ण तेज अथवा प्रेमको कहीं प्रकट नहीं करते। जहाँ जैसा अधिकारी देखते हैं वहाँ वैसा ही अपना रूप बना लेते हैं। भगवान्‌के तेजकी तो बात ही दूसरी है, मनुष्योंमें भी जो सदाचारी, तपस्वी, कर्मनिष्ठ, संयमी, सच्चरित्र तथा तेजस्वी पुरुष होते हैं उनके सामने भी क्षुद्र प्रकृतिके असंयमी और इन्द्रियलोलुप पुरुष अधिक देरतक बैठकर बातें नहीं कर सकते। उनके तेजके सम्मुख उन्हें अधिक देर ठहरना

---

* भगवान्‌का विश्वरूप देखनेके अनन्तर अर्जुनने प्रार्थना की—हे देवेश ! हे सम्पूर्ण जगत्‌के एकमात्र आधार ! आपके इस अलौकिक, दिव्य और पहिले कभी न देखे जानेवाले रूपको देखकर मुझे परम प्रसन्नता प्राप्त हुई, किन्तु प्रभो ! अब न जाने क्यों मेरा मन भयसे व्याकुल-सा हो रहा है। आपके इस असह्य तेजको अब अधिक सहन करनेमें असमर्थ हूँ। इसलिये हे कृपालो ! मेरे ऊपर प्रसन्न होकर अपने उसी पुराने रूपको मुझे फिरसे दिखाइये।

असह्य हो जाता है। किसी विशेष कारणवश उन्हें वहाँ ठहरना भी पड़े तो वह समय भार-सा मालूम पड़ता है। इसीलिये भगवान्‌के असली तेजके दर्शन तो मायाबद्ध जीवको इस पाञ्चभौतिक शरीरसे हो ही नहीं सकते। उन्हें भगवान्‌के मायाविशिष्ट तेजके ही दर्शन होते हैं, तभी तो भगवान्‌ने अर्जुनको विश्वरूप दिखानेपर भी पीछेसे सङ्केत कर दिया था, कि यह जो रूप तुझे दिखाया था, यह भी एक प्रकारसे मायिक ही है। मायाबद्ध जीवको शुद्ध स्वरूपके दर्शन हो ही कैसे सकते हैं, इतनेपर भी उसके पूर्ण तेजको अधिक देर सहन करनेकी देवताओंतकमें शक्ति नहीं। फिर मनुष्योंकी तो बात ही क्या? भक्तोंके हृदयमें एक प्रकारकी अपूर्व ज्योति निरन्तर जलती रहती है, किन्तु प्रत्यक्षरूपसे उन्हें भी अधिक कालतक भगवान्‌का तेजोमय स्वरूप असह्य हो जाता है। हाँ, मधुर भावसे तो वे निरन्तर अपने प्रियतमके साथ क्रीड़ा करते ही रहते हैं। वह भाव दूसरा है, उसमें तेज, ऐश्वर्य तथा महत्ताका अभाव होता है। उसके बिना तो भक्त जी ही नहीं सकते। वह मधुर भाव ही भक्तोंका सर्वस्व है। उच्च भक्त तो ऐश्वर्य अथवा तेजोमय रूपके दर्शनोंकी इच्छा ही नहीं करते। भगवत्-इच्छासे कभी स्वतः ही हो जाय तो यह बात दूसरी है।

प्रभुको भगवत्-भावमें पूरे सात प्रहर बीत गये। दिन गया, रात्रिका भी अन्त होनेको आया, किन्तु प्रभुके तेज अथवा ऐश्वर्यमें किसी भी प्रकारका परिवर्तन नहीं दिखायी दिया। भक्त ज्यों-के-त्यों बैठे थे, न तो कोई कहीं अन्यत्र भोजन करने गया और न कोई पैर फैलाकर सोया। चारों ओरसे प्रभुको घेरे हुए बैठे ही रहे। रात्रिके अन्त होनेपर प्रभातका समय हो गया। अद्वैताचार्यने देखा, सभी भक्त घबड़ाये हुए-से हैं। वे अब अधिक देरतक प्रभुके अलौकिक तेजको सहन नहीं कर सकते। अतः उन्होंने श्रीवास पण्डितके कानमें कहा—'हम साधारण संसारी

लोग प्रभुके इस असह्य तेजको और अधिक देरतक सहन करनेमें असमर्थ हैं, अतः कोई ऐसा उपाय करना चाहिये जिससे प्रभुके इस भावका शमन हो जाय।'

श्रीवास पण्डितको अद्वैताचार्यकी यह सम्मति बहुत ही युक्तियुक्त प्रतीत हुई। उनकी बातका समर्थन करते हुए वे बोले—'हाँ, आप ठीक कहते हैं। इस ऐश्वर्यमय रूपकी अपेक्षा तो हमें गौररूप ही प्रिय है। हम सभी मिलकर प्रभुसे प्रार्थना करें कि प्रभो! अब इस अपने अद्भुत अलौकिक भावको संवरण कीजिये और हमलोगोंको फिर उसी गौररूपसे दर्शन दीजिये।' श्रीवासजीकी यह बात सभीको पसंद आयी और सभी हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे—'प्रभो! अब अपने इस ऐश्वर्यको अप्रकट कर लीजिये। इस तेजसे हम संसारी जीव जल जायँगे। हममें इसे अधिक काल सहन करनेकी शक्ति नहीं है। अब हमें अपना वही असली गौररूप दिखाइये।' भक्तोंकी ऐसी प्रार्थना सुनकर प्रभुने बड़े जोरके साथ एक हुंकार मारी। हुंकार मारते ही उन्हें एकदम मूर्छा आ गयी और मूर्छा आनेपर यह कहते हुए कि 'अच्छा तो लो अब हम जाते हैं' अचेतन होकर सिंहासनपरसे भूमिपर गिर पड़े। भक्तोंने जल्दीसे उठाकर प्रभुको एक सुन्दर-से आसनपर लिटाया, प्रभु मूर्छित दशामें ज्यों-के-त्यों ही पड़े रहे। तनिक भी इधर-उधरको नहीं हिले-डुले।

प्रभुको मूर्छित देखकर सभी भक्त विविध भाँतिके उपचार करने लगे। कोई पंखा लेकर प्रभुको वायु करने लगे। सुगन्धित तैल अथवा शीतल लेप प्रभुके मस्तकपर लेपन करने लगे, किन्तु प्रभुकी मूर्छा भङ्ग नहीं हुई। प्रभुकी परीक्षाके निमित्त अद्वैत और श्रीवास आदि प्रमुख भक्तोंने प्रभुके सम्पूर्ण शरीरकी परीक्षा की। उनकी नासिकाके सामने बहुत देरतक हाथ रखे रहे, किन्तु साँस बिल्कुल चलता हुआ मालूम नहीं पड़ता था। हाथ-

पैर तथा शरीरके सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग संज्ञा-शून्य-से बने हुए थे। जिस अङ्गको जैसे भी डाल देते, वह वैसे ही पड़ा रहता, किसी प्रकारकी चैतन्यपनेकी चेष्टा किसी भी अङ्गसे प्रतीत नहीं होती थी। प्रभुकी ऐसी दशा देखकर सभी भक्तोंको बड़ा भारी भय-सा प्रतीत होने लगा। वे बार-बार प्रभुके इस वाक्यको स्मरण करने लगे—'अच्छा तो लो अब हम जाते हैं।' बहुत-से तो इससे अनुमान लगाने लगे कि प्रभु सचमुच हमें छोड़कर चले गये। बहुत-से कहने लगे—'यह बात नहीं, वह तो प्रभुके ऐश्वर्य और तेजके सम्बन्धका भाव था, हमारे गौरहरि तो थोड़ी देरमें चैतन्य-लाभ कर लेंगे।' किन्तु उनका यह अनुमान ठीक होता दिखायी नहीं देता था, प्रातःकालसे प्रतीक्षा करते-करते दोपहर हो गया, किन्तु प्रभुकी दशामें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। वे उसी भाँति संज्ञाशून्य पड़े रहे।

ज्येष्ठका महीना था, भक्तोंको बैठे-बैठे तीस घण्टे हो गये। प्रभुकी दशा देखकर सभी व्याकुल हो रहे थे। सभी उसी भावसे प्रभुको घेरे हुए बैठे थे, न कोई शौच-स्नानको गया और न किसीको भूख-प्यासकी सुधि रही, सभी प्रभुके भावमें अधीर हुए चुपचाप बैठे थे। बहुतोंने तो निश्चय कर लिया था कि यदि प्रभुको चेतना लाभ न हुई तो हम भी यहीं बिना खाये-पीये प्राण त्याग देंगे। इसी उद्देश्यसे वे बिना रोये-पीटे धैर्यके साथ प्रभुके चारों ओर बैठे थे। कल प्रातःकाल श्रीवास पण्डितके घरके किवाड़ जो बंद किये गये थे, वे ज्यों-की-त्यों बंद ही थे, प्रातःकाल कोई भी कहीं निकलकर बाहर नहीं गया। इस घटनाकी सूचना शचीमाताको भी देना उचित नहीं समझा गया। क्योंकि वहाँ तो प्रायः सब-के-सब अपने-अपने प्राणोंकी बाजी लगाये हुए बैठे थे। इसी बीच एक भक्तने कहा—'अनेकों बार जब प्रभु मूर्छित हुए हैं, तो संकीर्तनकी सुमधुरध्वनि सुनकर ही सचेत हुए हैं। क्यों नहीं प्रभुको चैतन्यता लाभ करानेके निमित्त संकीर्तन किया जाय।' यह बात सभीको पसंद आयी और सभी चारों ओरसे प्रभुको घेरकर संकीर्तन करने लगे।

सभी भक्त अपने कोमल कण्ठोंसे करुणा-मिश्रित स्वरमें ताल-स्वरके साथ—वाद्य बजाकर—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस महामन्त्रका संकीर्तन करने लगे। संकीर्तनकी नवजीवन-सञ्चारी, प्राणोंसे भी प्यारी धुनिको सुनकर प्रभुके शरीरमें रोमाञ्च-से होने लगे। सभीको प्रभुका शरीर पुलकित-सा प्रतीत होने लगा। अब तो भक्तोंके आनन्दकी सीमा नहीं रही। वे नाम-संकीर्तन छोड़कर प्रेममें विह्वल हुए पद-संकीर्तन करने लगे। प्रभुके शरीरकी पुनः परीक्षा करनेके निमित्त अद्वैताचार्यने उनकी नासिकापर अपना हाथ रखा। उन्हें श्वासोंका गमनागमन प्रत्यक्ष प्रतीत होने लगा। इतनेमें ही प्रभुने एक जोरकी हुंकार मारी। हुंकारको सुनते ही भक्तोंकी विषण्ण मण्डलीमें आनन्दकी बाढ़-सी आ गयी। वे उन्मत्तभावसे जोरोंकी जय-ध्वनि करने लगे। आकाशव्यापी तुमुल ध्वनिके कारण दिशाएँ गूँजने लगीं। भक्तोंके पदाघातसे पृथ्वी हिलने लगी, वायु स्थिर-सी प्रतीत होने लगी। चारों ओर प्रसन्नता-ही-प्रसन्नता छा गयी। प्रेममें उन्मत्त होकर कोई नृत्य करने लगा, कोई आनन्दके वेगको न सह सकनेके कारण मूर्छित होकर गिर पड़ा। कोई शङ्ख बजाने लगा, कोई शीतल जल लेकर प्रभुके श्रीमुखमें धीरे-धीरे डालने लगा। इस प्रकार श्रीवासजीका सम्पूर्ण घर उस समय आनन्दका तरङ्गित सागर ही बन गया। जिसमें भक्तोंकी प्रसन्नताकी हिलोरें उठ-उठकर दिशाओंको गुँजाती हुई भीषण शब्द कर रही थीं।

थोड़ी ही देरके अनन्तर प्रभु आँखें मलते हुए निद्रासे जागे हुए मनुष्यकी भाँति उठे और अपने चारों ओर भक्तोंको एकत्रित और बहुत-सी अभिषेककी सामग्रियोंको पड़ी हुई देखकर आश्चर्यके

साथ पूछने लगे–'हैं, यह क्या है ? हम कहाँ आ गये ? आप सब लोग यहाँ क्यों एकत्रित हैं ? आप सब लोग इस प्रकार विचित्र भावसे यहाँ क्यों बैठे हुए हैं ?'

प्रभुके इन प्रश्नोंको सुनकर भक्त एक दूसरेकी ओर देखकर मुसकराने लगे। प्रभुके इन प्रश्नोंका किसीने भी कुछ उत्तर नहीं दिया। इसपर प्रभुने श्रीवास पण्डितको सम्बोधन करके पूछा—'पण्डितजी ! बताइये न, असली बात क्या है ? हमसे कोई चञ्चलता तो नहीं हो गयी, अचेतनावस्थामें हमसे कोई अपराध तो नहीं बन गया ? मामला क्या है, ठीक-ठीक बताते क्यों नहीं ?'

अपनी हँसीको रोकते हुए श्रीवास पण्डित कहने लगे—'अब हमें बहकाइये नहीं। बहुत बननेकी चेष्टा न कीजिये। अब यहाँ कोई बहकनेवाला नहीं है।'

प्रभुने दुगुना आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा—'कैसा बहकाना, बताते क्यों नहीं ? बात क्या है ?'

इसपर बातको टालते हुए श्रीवासजीने कहा—'कुछ नहीं, आप संकीर्तनमें अचेत हो गये थे, इसलिये आपको चैतन्य-लाभ करानेके निमित्त सभी भक्त मिलकर कीर्तन कर रहे थे।'

इस बातको सुनकर कुछ लज्जित होते हुए प्रभुने कहा—'अच्छा, तो ठीक है। आप लोगोंको हमारे कारण बड़ा कष्ट हुआ। आप सभी लोग हमें क्षमा करें। बहुत समय बीत गया। अब चलकर स्नान-सन्ध्या-वन्दन करना चाहिये। मालूम होता है अभी प्रातःकालीन सन्ध्या भी नहीं हुई।' यह सुनकर सभी भक्त स्नान-सन्ध्याके निमित्त गङ्गाजीकी ओर चले गये।

प्रेमोन्मत्त अवधूतका पादोदकपान

वाग्भिः स्तुवन्तो मनसा स्मरन्त-
स्तन्वा नमन्तोऽप्यनिशं न तृप्ताः ।
भक्ताः श्रवन्नेत्रजलाः समग्र-
मायुर्हरेरेव समर्पयन्ति ॥*

(हरि० भ० सु० १८ । ३८)

* उन प्रभुके प्यारे भक्तोंका जीवन कैसा होता है ? वे आयुको कैसे बिताते हैं उसीका वर्णन है—'प्रभुके प्यारे भक्त अपनी वाणीसे निरन्तर सुमधुर हरिनामका उच्चारण करते रहते हैं अथवा स्तोत्रोंसे बाकेबिहारीकी विरुदावली गाते रहते हैं, मनसे उस मुरली-मनोहरके सुन्दर रूपका चिन्तन करते रहते हैं और शरीरसे उनके लिये सदा दण्ड-प्रणाम करते रहते हैं। वे सदा विकल-से पागल-से, अधीर-से तथा अतृप्त-से ही बने रहते हैं। उनके नेत्रोंसे सदा जल टपकता रहता है, इस प्रकार वे अपनी सम्पूर्ण आयुको श्रीहरि भगवान्‌के ही निमित्त समर्पण कर देते हैं। (अहा, वे भगवत्-भक्त धन्य हैं)

जिन्हें भगवत्-भक्तिकी प्राप्ति हो गयी है, जो प्रभु-प्रेममें मतवाले बन गये हैं, उनके सभी कर्म लोक-बाह्य हो जाते हैं। जो क्रिया किसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये की जाती है, उसे कर्म कहते हैं, किन्तु वैसे ही निरुद्देश्यरूपसे केवल करनेके ही निमित्त जो चेष्टाएँ या क्रियाएँ होती हैं, उन्हें लीला कहते हैं। बालकोंकी सभी चेष्टाएँ ऐसी ही होती हैं, उनमें कोई इन्द्रिय-जन्य सुख-स्वार्थ या कोई उद्देश्य नहीं होता। वे तो वैसे ही निरुद्देश्य भावसे होती हैं। भक्तोंकी सभी चेष्टाएँ इसी प्रकारकी होती हैं, इसीलिये उन्हें कर्म न कहकर लीला ही कहनेकी प्राचीन परिपाटी चली आयी है। भक्तोंकी लीलाएँ प्रायः बालकोंकी लीलाओंसे बहुत ही अधिक मिलती-जुलती हैं। जहाँ लोक-लज्जाका भय है, जहाँ किसी वस्तुके प्रति अश्लीलताके कारण घृणाके भाव हैं और जहाँ दूसरोंसे भयकी सम्भावना है, वहाँ असली प्रेम नहीं। बिना असली प्रेमके विशुद्ध लीला हो ही नहीं सकती। अतः लज्जा, घृणा और भय—ये स्वार्थजन्य मोहके द्योतक भाव हैं। भक्तोंमें तथा बालकोंमें ये तीनों भाव नहीं होते, तभी उनका हृदय विशुद्ध कहा जाता है।

प्रेममें उन्मत्त हुआ भक्त कभी तो हँसता है, कभी रोता है, कभी गाता है और कभी संसारकी लोक-लाज छोड़कर दिगम्बरवेशसे ताण्डव-नृत्य करने लगता है। उसका चलना विचित्र है, वह विलक्षण-भावसे हँसता है, उसकी चेष्टामें उन्माद है, उसके भाषणमें निरर्थकता है और उसकी भाषा संसारीभाषासे भिन्न ही है। वह बालकोंकी भाँति सबसे प्रेम करता है, उसे किसीसे भय नहीं, किसी बातकी लज्जा नहीं, नंगा रहे तो भी वैसा और वस्त्र पहने रहे तो भी वैसा ही। उसे बाह्य वस्त्रोंकी कुछ अपेक्षा नहीं, वह संसारके विधि-निषेधका गुलाम नहीं। अवधूत नित्यानन्दजीकी भी यही दशा थी। बत्तीस वर्षकी अवस्था होनेपर भी वे सदा बाल्यभावमें ही रहते। मालतीदेवीके सूखे स्तनोंको मुँहमें लेकर बच्चोंकी भाँति चूसते, अपने हाथसे दाल-भात नहीं खाते, तनिक-तनिक-सी

बातोंपर नाराज हो जाते और उसी क्षण बालकोंकी भाँति हँसने लगते। श्रीवासको पिता कहकर पुकारते और उनसे बच्चोंकी भाँति हठ करते। गौराङ्ग इन्हें बार-बार समझाते, किन्तु ये किसीकी एक भी नहीं सुनते। सदा प्रेम-वारुणी पान करके उसीके मदमें मत्त-से बने रहते। शरीरका होश नहीं, वस्त्र गिर गया है, उसे उठानेतककी भी सुध नहीं है। नंगे हो गये हैं तो नंगे ही बाजारमें घूम रहे हैं। खेल कर रहे हैं तो घंटोंतक उसीमें लगे हुए हैं। कभी बालकोंके साथ खेलते, कभी भक्तोंके साथ क्रीड़ा करते, कभी-कभी गौरको भी अपने बाल-कौतूहलसे सुखी बनाते। कभी मालतीदेवीको ही वात्सल्य-सुख पहुँचाते, इस प्रकार ये सभीको अपनी सरलता, निष्कपटता, सहृदयता और बाल-चपलतासे सदा आनन्दित बनाते रहते थे।

एक दिन ये श्रीवास पण्डितके घरके आँगनमें खड़े-ही-खड़े कुछ खा रहे थे, इतनेमें ही एक कौआ ठाकुरजीके घृतके दीपपात्रको उठा ले गया। इससे मालतीदेवीको बड़ा दुःख हुआ। माताको दुखी देखकर ये बालकोंकी भाँति कौएको टुकड़ा दिखाते हुए कहने लगे। बार-बार कौएको पुचकारते हुए गायनके स्वरमें सिर हिला-हिलाकर कह रहे थे—

कौआ भैया आ जा, दूध बतासे खा जा।
मेरा दीपक दे जा, अपना टुकड़ा ले जा॥
अम्मा बैठी रोवै, आँसूसे मुँह धोवे।
उनको धीर बँधा जा, कौआ भैया आ जा॥
दूध बतासे खा जा, आ जा प्यारे आ जा।

सचमुचमें इनकी बात सुनकर कौआ जल्दीसे आकर उस पीतलके पात्रको इनके समीप डाल गया। माताको इससे बड़ी प्रसन्नता हुई और वह इनमें ईश्वरभावका अनुभव करने लगी। तब आप बड़े जोरोंसे खिल-खिलाकर हँसने लगे और ताली बजा-बजाकर कहने लगे—

कौआ मेरा भैया, मेरी प्यारी मैया ।
मेरा वह प्यारा, बेटा है तुम्हारा ॥
मैंने पात्र मँगाया है, उससे जल्द मँगाया है ।
अब दो मुझे मिठाई, लड्डू बालूसाई ॥

माता इनकी इस बाल-चपलतासे बड़ी ही प्रसन्न हुई । अब आप जल्दीसे घरसे बाहर निकले । बाजारमें होकर पागलोंकी तरह दौड़ते जाते थे, न कुछ शरीरका होश है, न रास्तेकी सुधि, किधर जा रहे हैं और कहाँ जा रहे हैं, इसका भी कुछ पता नहीं है । रास्तेमें भागते-भागते लँगोटी खुल गयी, उसे जल्दीसे सिरपर लपेट लिया, अब नंगे-धड़ंगे, दिगम्बर शिवकी भाँति ताण्डव-नृत्य करते जा रहे हैं । रास्तेमें लड़के ताली पीटते हुए इनके पीछे दौड़ रहे हैं, किन्तु इन्हें किसीकी कुछ परवा ही नहीं । जोरोंसे चौकड़ियाँ भर रहे हैं । इस प्रकार बिल्कुल नग्नावस्थामें आप प्रभुके घर पहुँचे । प्रभु उस समय अपनी प्राणेश्वरी विष्णुप्रियाजीके साथ बैठे हुए कुछ प्रेमकी बातें कर रहे थे, विष्णुप्रिया धीरे-धीरे पान लगा-लगाकर प्रभुको देती जाती थीं और प्रभु उनकी प्रसन्नताके निमित्त बिना कुछ कहे खाते जाते थे । वे कितने पान खा गये होंगे, इसका न तो विष्णुप्रियाजीको ही पता था, न प्रभुको ही । पानका तो बहाना था, असलमें तो वहाँ प्रेमका खान-पान हो रहा था । इतनेमें ही ये नंगे-धड़ंगे उन्मत्त अवधूत पहुँच गये । आँखें लाल-लाल हो रही हैं, सम्पूर्ण शरीर धूलि-धूसरित हो रहा है । लँगोटी सिरसे लिपटी हुई है । शरीरसे खूब लंबे होनेके कारण दिगम्बर-वेशमें ये दूरसे देवकी तरह दिखायी पड़ते थे । प्रभुके समीप आते ही ये पागलोंकी तरह हुँ-हुँ करने लगे । विष्णुप्रियाजी इन्हें नग्न देखकर जल्दीसे घरमें भाग गयीं और जल्दीसे किवाड़ बन्द कर लिये । शचीमाता भीतर बैठी हुई चर्खा चला रही थीं, अपनी बहूको इस प्रकार दौड़ते देखकर उन्होंने जल्दीसे पूछा— 'क्यों, क्यों क्या हुआ ?'

विष्णुप्रिया मुँहमें वस्त्र देकर हँसने लगीं। माताने समझा निमाई-ने जरूर कुछ कौतूहल किया है। अतः वे पूछने लगीं—'निमाई यहीं है या बाहर चला गया ?'

अपनी हँसीको रोकते हुए हाँफते-हाँफते विष्णुप्रियाजीने कहा—'अपने बड़े बेटेको तो देखो, आज तो वे सचमुच ही अवधूत बन आये हैं।' यह सुनकर माता बाहर गयीं और निताईकी इस प्रकारकी बाल-क्रीड़ाको देखकर हँसने लगीं।

प्रभुने नित्यानन्दजीसे पूछा–'श्रीपाद ! आज तुमने यह क्या स्वाँग बना लिया है ? बहुत चञ्चलता अच्छी नहीं। जल्दीसे लँगोटी बाँधो।' किन्तु किसीको लँगोटीकी सुधि हो तब तो उसे बाँधे। उन्हें पता ही नहीं कि लँगोटी कहाँ है और उसे बाँधना कहाँ होगा ? प्रभुने इनकी ऐसी दशा देखकर जल्दीसे अपना पट्ट-वस्त्र इनकी कमरमें स्वयं ही बाँध दिया और हाथ पकड़कर अपने पास बिठाकर धीरे-धीरे पूछने लगे–'श्रीपाद ! कहाँसे आ रहे हो ? तुम्हें हो क्या गया है ? यह धूलि सम्पूर्ण शरीरमें क्यों लगा ली है ?'

श्रीपाद तो ग़र्क थे, उन्हें शरीरका होश कहाँ, चारों ओर देखते हुए पागलोंकी तरह 'हुँ-हुँ' करने लगे। प्रभु इनकी प्रेमकी इतनी ऊँची अवस्थाको देखकर अत्यन्त ही प्रसन्न हुए। उसी समय उन्होंने सभी भक्तोंको बुला लिया। भक्त आ-आकर नित्यानन्दजीके चारों ओर बैठने लगे। प्रभुने नित्यानन्दजीसे प्रार्थना की–'श्रीपाद ! अपनी प्रसादी लँगोटी कृपा करके हमें प्रदान कीजिये !' नित्यानन्दजीने जल्दीसे सिरपरसे लँगोटी खोलकर फेंक दी। प्रभुने वह लँगोटी अत्यन्त ही भक्तिभावके साथ सिरपर चढ़ायी और फिर उसके छोटे-छोटे बहुत-से टुकड़े किये। सभी भक्तोंको एक-एक टुकड़ा देते हुए प्रभुने कहा—'इस प्रसादी चीरको आप सभी

लोग खूब सुरक्षित रखना।' प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य करके सभीने उस प्रसादी चीरको गलेमें बाँध लिया, किसी-किसीने उसे मस्तकपर रख लिया।

इसके अनन्तर प्रभुने निताईके पादपद्मोंमें स्वयं ही सुगधिन्त चन्दनका लेप किया, पुष्प चढ़ाये और उनके चरणोंको अपने हाथोंसे पखारा। निताईका पादोदक सभी भक्तोंको वितरित किया गया। सभीने बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ उसका पान किया। शेष जो बचा उस सबको प्रभु पान कर गये और पान करते हुए बोले—'आज हम कृतकृत्य हुए। आज हमारा जन्म सफल हुआ। आज हमें यथार्थ श्रीकृष्ण-भक्तिकी प्राप्ति हुई। श्रीपादके चरणामृतपानसे आज हम धन्य हुए।'

इस प्रकार सभी भक्तोंने अपने-अपने भाग्यकी सराहना की। भाग्यकी सराहना तो करनी ही चाहिये, भगवान्‌की यथार्थ पूजा तो आज ही हुई। भगवान् अपनी पूजासे उतने संतुष्ट नहीं होते, जितने अपने भक्तोंकी पूजासे संतुष्ट होते हैं। उनका तो कथन है, जो केवल मेरे ही भक्त हैं, वे तो भक्त ही नहीं, यथार्थ भक्त तो वही है जो मेरे भक्तोंका भक्त हो। भगवान् स्वयं कहते हैं—

ये मे भक्तजनाः पार्थ न मे भक्ताश्च ते जनाः।
मद्भक्तानां च ये भक्तास्ते मे भक्ततमा मताः॥*

(आदिपुराण)

क्योंकि भगवान्‌को तो भक्त ही अत्यन्त प्रिय हैं। जो उनके प्रियजनोंकी अवहेलना करके केवल उन्हींका पूजन करेंगे वे उन्हें प्रिय किस

---

* भगवान् अर्जुनके प्रति कहते हैं—'हे पार्थ! जो मनुष्य मेरे ही भक्त हैं वे भक्त नहीं हैं। सर्वोत्तम भक्त तो वे ही हैं जो मेरे भक्तोंके भक्त हैं।

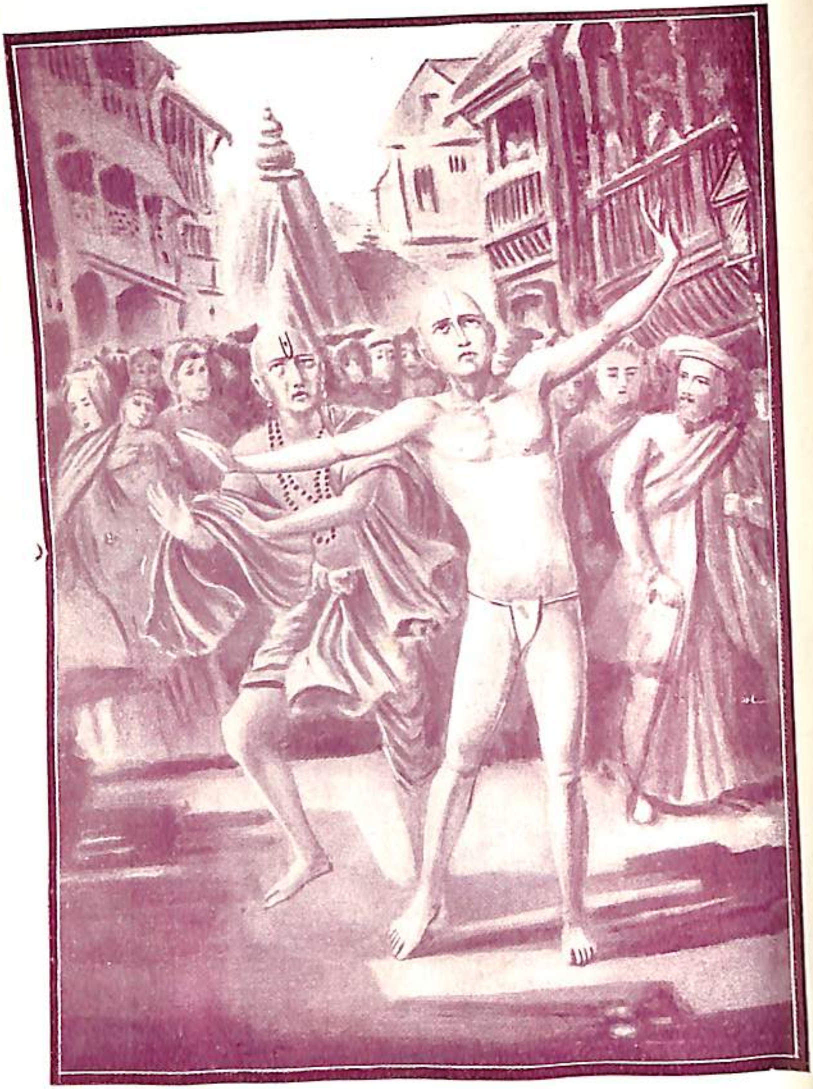
प्रकार हो सकेंगे ? इसलिये सब प्रकारके आराधनोंसे विष्णु भगवान्‌का आराधन श्रेष्ठ जरूर है, किन्तु विष्णु भगवान्‌के आराधनसे भी श्रेष्ठ विष्णु-भक्तोंका आराधन है ।*

भगवत्-भक्तोंकी महिमा प्रकाशित करनेके निमित्त ही प्रभुने यह लीला की थी। सभी भक्तोंको निताईके पादोदक-पानसे एक प्रकारकी आन्तरिक शान्ति-सी प्रतीत हुई।

अब निताईको कुछ-कुछ होश हुआ। वे बालकोंकी भाँति चारों ओर देखते हुए शचीमातासे दीनताके साथ बच्चोंकी तरह कहने लगे—'अम्मा ! बड़ी भूख लगी है, कुछ खानेके लिये दो ।' माता यह सुनकर जल्दीसे भीतर गयी और घरकी बनी सुन्दर मिठाई लाकर इनके हाथों-पर रख दी। ये बालकोंकी भाँति जल्दी-जल्दी कुछ खाने लगे, कुछ पृथ्वीपर फेंकने लगे। खाते-खाते ही ये माताके चरण छूनेको दौड़े। माता डरकर जल्दीसे घरमें घुस गयी। इस प्रकार उस दिन निताईने अपनी अद्‌भुत लीलासे सभीको आनन्दित किया।

---

*आराधनानां सर्वेषां विष्णोराराधनं परम्।
तस्मात् परतरं देवि तदीयानां समर्चनम्॥
(पद्मपुराण)



श्रीनिताई और हरिदासका नाम-प्रचार

घर-घरमें हरिनामका प्रचार

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥*

(बृहन्नारदीय पु० ३८।१२६)

सत्ययुगमें प्रायः सभी धर्मात्मा पुरुष होते थे। धर्मके कारण ठीक समयपर वर्षा होती थी, योगक्षेमकी किसीको भी चिन्ता नहीं होती थी।

---

* कलियुगमें हरिनाम, हां, केवल हरिनाम, अजी, यह बिल्कुल ठीक है; एकमात्र हरिनाम ही संसार-सागरसे पार होनेका सर्वोत्तम साधन है। इसके सिवा कलिकालमें दूसरी कोई गति नहीं है, नहीं है; अजी, प्रतिज्ञा करके कहता हूँ, दूसरी कोई गति है ही नहीं।

देश, काल तथा खाद्य पदार्थोंमें पूर्णरूपसे विशुद्धता विराजमान थी। उस समयके लोग ध्यान-प्रधान होते थे। सत्ययुगमें प्रभुप्राप्तिका मुख्य साधन ध्यान ही समझा जाता था। त्रेतायुगमें भोग-सामग्रियोंकी प्रचुरता थी, इसलिये खूब द्रव्य लगाकर उस समय बड़े-बड़े यज्ञ-याग करनेकी ही प्रथा थी। उस समय भगवत्-प्राप्तिका मुख्य साधन यज्ञ करना ही समझा जाता था। सकाम तथा निष्काम दोनों ही भावोंके द्विजातिगण यथा-शक्ति यज्ञ-याग करते थे। द्वापरमें भोग-सामग्रियोंकी न्यूनता हो गयी, लोगोंके भाव उतने विशुद्ध नहीं रहे। देश, काल तथा खाद्य पदार्थोंकी सामग्रियोंमें भी पवित्रताका सन्देह होने लगा, इसलिये उस समयका प्रधान साधन भगवत्-पूजन तथा आचार-विचार ही माना गया। कलि-युगमें न तो पर्याप्तरूपसे सबके लिये भोग-सामग्री ही है और न अन्य युगोंकी भाँति खाद्य पदार्थोंकी प्रचुरता ही। पवित्र स्थान बुरे लोगोंके निवाससे दूषित हो गये, धर्मस्थान कलहके घर बन गये, लोगोंके हृदयों-मेंसे धर्मके प्रति आस्था जाती रही। लोगोंके अधर्मभावसे वायुमण्डल दूषित बन गया। वायुमण्डलके दूषित हो जानेसे देशोंमेंसे पवित्रता चली गयी; काल विपरीत हो गया। सत्पुरुष, सत्शास्त्र तथा सत्सङ्गका सर्वत्र अभाव-सा ही हो गया। ऐसे घोर समयमें भलीभाँति ध्यान, यज्ञ-याग तथा पूजा-पाठका होना भी सबके लिये कठिन हो गया है। इस युगमें तो एक भगवन्नाम ही मुख्य है।* उक्त धार्मिक कृत्योंको जो लोग पवित्रता और सन्निष्ठाके साथ कर सकें वे भले ही करें, किन्तु सर्वसाधारणके लिये सुलभ, सरल और सर्वश्रेष्ठ साधन भगवन्नाम ही है। भगवन्नामकी ही शरण लेकर कलिकालमें मनुष्य सुगमताके साथ भगवत्-प्राप्तिकी ओर अग्रसर हो सकता है। इसीलिये कलियुगके सभी महात्माओंने नामके

---

* कृते यद्ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्॥

(श्रीमद्भा० १२। ३। ५२)

ऊपर बहुत ज़ोर दिया है। महाप्रभु तो नामावतार ही थे। अबतक वे भक्तोंके ही साथ एकान्त भावसे श्रीवासके घर संकीर्तन करते थे, अब उन्होंने सभी प्राणियोंको हरिनाम-वितरण करनेका निश्चय किया।

प्रचारका कार्य त्यागी महानुभाव ही कर सकते हैं। भक्तिभाव और भजन-पूजनमें सभीको अधिकार है, किन्तु लोगोंको करनेके लिये शिक्षा देना तो त्यागियोंका ही काम है। उपदेशक या नेता तो त्यागी ही बन सकते हैं। भगवान् बुद्ध राजा बनकर भी धर्मका सङ्गठन कर सकते थे, शंकराचार्य-जैसे परम ज्ञानी महापुरुषको लिंगसंन्यास और दण्डधारणकी क्या आवश्यकता थी? गौरांग महाप्रभु गृहस्थी होते हुए भी संकीर्तनका प्रचार कर सकते थे, किन्तु इन सभी महानुभावोंने लोगोंको उपदेश करनेके ही निमित्त संन्यासधर्मको स्वीकार किया। बिना संन्यासी बने लोकशिक्षणका कार्य भलीभाँति हो भी तो नहीं सकता।

प्रभुके भक्तोंमें दो संन्यासी थे, एक तो अवधूत नित्यानन्द और दूसरे महात्मा हरिदासजी। अवधूत नित्यानन्दजी तो लिंगसंन्यासी थे। और महात्मा हरिदासजी अलिंगसंन्यासी। ब्राह्मणेतर वर्णके लिये संन्यास-की विधि तो है, किन्तु शास्त्रोंमें उनके लिये संन्यासके चिह्नोंका विधान नहीं है, वे विदुरकी भाँति अलिंगसंन्यासी बन सकते हैं या वनमें वास करके वानप्रस्थधर्मका आचरण कर सकते हैं, इसीलिये हरिदासजीने किसी भी प्रकारका साधुओंका-सा वेश नहीं बनाया था। प्रभुप्राप्तिके लिये किसी प्रकारका बाह्य वेश बनानेकी आवश्यकता भी नहीं है। प्रभु तो अन्तर्यामी हैं, उनसे न तो भीतरके भाव ही छिपे हुए हैं और न वे बाहरी चिह्नोंको ही देखकर धोखा खा सकते हैं। चिह्न धारण करना तो एक प्रकारकी लोक-परम्परा ।

प्रभुने नित्यानन्द और हरिदासजीको बुलाकर कहा—'अब इस

प्रकार एकान्तमें ही संकीर्तन करते रहनेसे काम नहीं चलेगा। अब हमें नगर-नगर और घर-घरमें हरिनामका प्रचार करना होगा। यह काम आप लोगोंके सुपुर्द किया जाता है। आप दोनों ही नवद्वीपके मुहल्ले-मुहल्ले और घर-घरमें जाकर हरिनामका प्रचार करें। लोगोंसे विनय करके, हाथ जोड़ तथा पैर छूकर आपलोग हरिनामकी भिक्षा माँगें। आपलोग हरिनामवितरण करते समय पात्रापात्र अथवा छोटे-बड़ेका कुछ भी खयाल न करें। ब्राह्मणसे लेकर चाण्डालपर्यन्त, पण्डितसे लेकर मूर्खतक सबको समान-भावसे हरिनामका उपदेश करें। हरिनामके सभी प्राणी अधिकारी हैं। जो भी जिज्ञासा करे अथवा न भी करे उसीके सामने आपलोग भगवान्के सुमधुर नामोंका संकीर्तन करें। उससे भी संकीर्तन करनेकी प्रार्थना करें। जाइये, श्रीकृष्ण भगवान् आपके इस कार्यमें सहायक होंगे।'

प्रभुका आदेश पाकर दोनों ही अवधूत परम उल्लासके सहित नवद्वीपमें हरिनाम-वितरण करनेके लिये चले। दोनों एक ही उद्देश्यसे तथा एक ही कामके लिये साथ-ही-साथ चले थे, किन्तु दोनोंके स्वभावमें आकाश-पातालका अन्तर था। नित्यानन्दका रङ्ग गोरा था, हरिदास कुछ काले थे। नित्यानन्द लंबे और कुछ पतले थे, हरिदासजीका शरीर कुछ स्थूल और ठिगना-सा था। हरिदास गम्भीर प्रकृतिके शान्त पुरुष थे और नित्यानन्द परम उद्दण्ड और चञ्चल प्रकृतिके। हरिदासकी अवस्था कुछ ढलने लगी थी, नित्यानन्द अभी पूर्ण युवक थे। हरिदासजी नम्रतासे काम लेनेवाले थे, नित्यानन्दजी किसीके बिना छेड़े बात ही नहीं करते थे। इस प्रकार यह भिन्न प्रकृतिका जोड़ा नवद्वीपमें नाम-वितरण करने चला। ये दोनों घर-घर जाते और वहाँ जोरोंसे कहते—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

लोग इन्हें भिखारी समझकर भाँति-भाँतिकी भिक्षा लेकर इनके समीप आते। ये कहते हम अन्नके भिखारी नहीं हैं, हम तो भगवन्नाम-के भिखारी हैं। आपलोग एक बार अपने मुखसे श्रीहरिके—

श्रीकृष्ण ! गोविन्द ! हरे ! मुरारे ! हे नाथ ! नारायण ! वासुदेव !

इन सुमधुर नामोंका उच्चारण करके हमारे हृदयोंको शीतल कीजिये, यही हमारे लिये परम भिक्षा है। लोग इनके इस प्रकारके मार्मिक वाक्योंको सुनकर प्रभावान्वित हो जाते और उच्च स्वरसे सभी मिलकर हरिनामोंका संकीर्तन करने लगते। इस प्रकार ये एक द्वारसे दूसरे द्वारपर जाने लगे। ये जहाँ भी जाते, लोगोंकी एक बड़ी भीड़ इनके साथ हो लेती और ये सभीसे उच्च स्वरसे हरिकीर्तन करनेको कहते। सभी लोग मिलकर इनके पीछे नाम-संकीर्तन करते जाते। इस प्रकार मुहल्ले-मुहल्ले और बाजार-बाजारमें चारों ओर भगवान्‌के सुमधुर नामोंकी ही गूँज सुनायी देने लगी।

नित्यानन्द रास्ते चलते-चलते भी अपनी चञ्चलताको नहीं छोड़ते थे। कभी रास्तेमें साथ चलनेवाले किसी लड़केको धीरेसे नोंच लेते, वह चौंककर चारों ओर देखने लगता, तब ये हँसने लगते। कभी दो लड़कोंके सिरोंको सहसा पकड़कर जल्दीसे उन्हें लड़ा देते। कभी बच्चोंके साथ मिलकर नाचने ही लगते। छोटे-छोटे बच्चोंको द्वारपर जहाँ भी खड़ा देखते उनकी ओर बंदरका-सा मुख बनाकर बंदरकी तरह 'खौं-खौं' करके घुड़की देने लगते। बच्चा रोता हुआ अपनी माता-की गोदीमें दौड़ा जाता और ये आगे बढ़ जाते। कोई-कोई आकर इन्हें डाँटता, किन्तु इनके लिये डाँटना और प्यार करना दोनों समान ही था। उसे गुस्सेमें देखकर आप उपेक्षाके भावसे कहते 'कृष्ण-कृष्ण,

कहो कृष्ण-कृष्ण' व्यर्थमें जिह्वाको क्यों कष्ट देते हो। यह कहकर अपने कोकिल-कूजित कमनीय कण्ठसे गायन करने लगते—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

गुस्सा करनेवालोंका सभी रोष काफूर हो जाता और वे भी इनके साथ मिलकर तन्मयताके साथ श्रीकृष्ण-कीर्तन करने लगते। ये निर्भीक-भावसे स्त्रियोंमें घुस जाते और उनसे कहते—'माताओ! मैं तुम्हारा पुत्र हूँ, पुत्रकी इस प्रार्थनाको स्वीकार कर लो। तुम एक बार भगवान्‌का नामसंकीर्तन करके मेरे हृदयको आनन्दित कर दो।' इनकी इस प्रकार सरल, सरस और निष्कपट प्रार्थनासे सभी माताओंका हृदय पसीज जाता और वे सभी मिलकर श्रीकृष्ण-कीर्तनमें निमग्न हो जातीं। इस प्रकार ये प्रातःसे लेकर सायंकालपर्यन्त द्वार-द्वार घूमते और संकीर्तनका शुभ सन्देश सभी लोगोंको सुनाते। शामको आकर प्रचारका सभी वृत्तान्त प्रभुको सुनाते। इनकी सफलताकी बातें सुनकर प्रभु इनके साहसकी सराहना करते और इन्हें विविध भाँतिसे प्रोत्साहित करते। इन दोनोंको ही नामके प्रचारमें बड़ा ही अधिक आनन्द आता। उसके पीछे ये खाना-पीना सभी कुछ भूल जाते।

अब तो प्रभुका यश चारों ओर फैलने लगा। दूर-दूरसे लोग प्रभुके दर्शनको आते। भक्त तो इन्हें साक्षात् भगवान्‌का अवतार ही बताते, कुछ लोग इन्हें परम भागवत समझकर ही इनका आदर करते। कुछ लोग विद्वान् भक्त समझते और कुछ वैसे ही इनके प्रभावसे प्रभावान्वित होकर स्तुति-पूजा करते। इस प्रकार अपनी-अपनी प्रकृतिके अनुसार लोग विविध प्रकारसे इनकी पूजा करने लगे। लोग भाँति-भाँतिके उपहार तथा भेंट प्रभुके लिये लाते। प्रभु उन सबकी प्रसन्नताके निमित्त उन्हें ग्रहण कर

लेते। ये घाटमें, बाजारमें जिधर भी निकल जाते उधरके ही लोग खड़े हो जाते और इन्हें विविध प्रकारसे दण्ड-प्रणाम करने लगते। इस प्रकार ज्यों-ज्यों संकीर्तनका प्रचार होने लगा, त्यों-ही-त्यों प्रभुका यशः-सौरभ चारों ओर व्याप्त होता हुआ दृष्टिगोचर होने लगा। प्रभु सभीसे नम्रता-पूर्वक मिलते। बड़ोंको भक्तिभावसे प्रणाम करते, छोटोंसे कुशल-क्षेम पूछते और बराबरवालोंको गलेसे लगाते। मूर्ख-पण्डित, धनी-दरिद्र, ऊँच-नीच तथा छोटे-बड़े सभी प्रकारके लोग प्रभुको आदरकी दृष्टिसे देखने लगे। इधर भक्तोंका उत्साह भी अब अधिकाधिक बढ़ने लगा।

नित्यानन्दजी और हरिदासजीके प्रतिदिनके प्रचारका प्रभाव प्रत्यक्ष ही दृष्टिगोचर होने लगा। पाठशाला जाते हुए बच्चे उच्च स्वरसे हरि-कीर्तन करते हुए जाने लगे। गाय-भैंसोंको ले जाते हुए ग्वाले महामन्त्र-को गुनगुनाते जाते थे। गङ्गा-स्नानको जाते हुए यात्री हरिकीर्तन करते हुए जाते थे। उत्सव तथा पर्वोंमें स्त्रियाँ मिलकर हरिनामका ही गायन करती हुई निकलती थीं। लोगोंने पुरुषोंकी तो बात ही क्या, स्त्रियोंतक-को बाजारोंमें हरिनाम-संकीर्तन करते तथा ऊपर हाथ उठाकर प्रेमसे नृत्य करते हुए देखा। चारों ओर ये ही शब्द सुनायी देने लगे—

कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्।
राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

श्रीकृष्ण! गोविन्द! हरे! मुरारे! हे नाथ! नारायण! वासुदेव!

जगाई-मधाईकी क्रूरता,

नित्यानन्दकी उनके उद्धारके निमित्त प्रार्थना

किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम् ।
किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥*

(श्रीमद्भा० १० । १ । ५८)

यदि इस स्वार्थपूर्ण संसारमें साधु पुरुषोंका अस्तित्व न होता, यदि इस पृथ्वीको परमार्थी महापुरुष अपनी पद-धूलिसे पावन न बनाते, यदि इस संसारमें सभी लोग अपने-अपने स्वार्थकी ही बात सोचनेवाले होते तो यह पृथ्वी रौरव-नरकके समान बन जाती। इस दुःखमय जगत्को परमार्थी

---

* साधु पुरुषोंके लिये कौन-सी बात दुःसह है? विद्वानों को किस वस्तुकी अपेक्षा है, नीच पुरुष क्या नहीं कर सकते और धैर्यवान् पुरुषोंके लिये कौन-सा काम कठिन है? अर्थात् महात्मा सब कुछ सहन कर सकते हैं, असली विद्वान्को किसी वस्तुकी आवश्यकता ही नहीं रहती, नीच पुरुष अत्यन्त निन्द्य-से-निन्द्य क्रूर कर्म भी कर सकते हैं और धैर्यवानोंके लिये कोई भी काम कठिन नहीं है।

साधुओंने ही सुखमय बना रखा है, इस निरानन्द जगत्‌को अपने निःस्वार्थ भावसे महात्माओंने ही आनन्दका स्वरूप बना रखा है। स्वार्थमें चिन्ता है, परमार्थमें उल्लास। स्वार्थमें सदा भय ही बना रहता है, परमार्थ-सेवनसे प्रतिदिन अधिकाधिक धैर्य बढ़ता जाता है। स्वार्थमें सने रहनेसे ही दीनता आती है, परमार्थी निर्भीक और निडर होता है। इतना सब होनेपर भी क्रूर पुरुषोंका अस्तित्व रहता ही है। यदि अविचारी पाप कर्म करनेवाले क्रूर पुरुष न हों, तो महात्माओंकी दया, सहनशीलता, नम्रता, सहिष्णुता, सरलता, परोपकारिता तथा जीवमात्रके प्रति अहैतुकी करुणाका प्रकाश किस प्रकार हो? क्रूर पुरुष अपनी क्रूरता करके महापुरुषोंको अवसर देते हैं, कि वे अपनी सद्‌वृत्तियोंको लोगोंके सम्मुख प्रकट करें, जिनका अनुसरण करके दुखी और चिन्तित पुरुष अपने जीवनको सुखमय और आनन्दमय बना सकें। इसीलिये तो सृष्टिके आदिमें ही मधु-कैटभ नामके दो राक्षस ही पहले-पहल उत्पन्न हुए। उन्हें मारनेपर ही तो भगवान् मधु-कैटभारि बन सके। रावण न होता तो रामजीके पराक्रमको कौन पहचानता? पूतना न होती तो प्रभुकी असीम दयालुताका परिचय कैसे मिलता? शिशुपाल यदि गाली देकर भगवान्‌के हाथसे मरकर मुक्ति-लाभ न करता तो '*क्रोधोऽपि देवस्य वरेण तुल्यः*' (अर्थात् भगवान्‌का क्रोध भी वरदानके ही समान है) इस महामन्त्रका प्रचार कैसे होता? अजामिल-जैसा नीच कर्म करनेवाला पापी पुत्रके बहाने 'नारायण' नाम लेकर सद्‌गति प्राप्त न करता तो भगवन्नामकी इतनी अधिक महिमा किस प्रकार प्रकट होती? अतः जिस प्रकार संसारको महात्मा और सत्पुरुषोंकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार दुष्टोंकी क्रूरतासे भी उसका बहुत कुछ काम चलता है। भगवान् तो अवतार तब धारण करते हैं जब पृथ्वीपर बहुत-से क्रूर कर्म करनेवाले पुरुष उत्पन्न हो जाते हैं। क्रूरकर्मा पुरुष अपनी क्रूरता

करनेमें पीछे नहीं हटते और महात्मा अपने परमार्थ और परोपकारके धर्मको नहीं छोड़ते। अन्तमें विजय धर्मकी ही होती है क्योंकि '*यतो धर्मस्ततो जयः।*'

महाप्रभु गौराङ्गदेवके समयमें भी नवद्वीपमें जगाई-मधाई (जगन्नाथ-माधव) नामके दो क्रूरकर्मा ब्राह्मण-कुमार निवास करते थे। '*राक्षसाः कलिमाश्रित्य जायन्ते ब्रह्मयोनिषु*' अर्थात् 'कलियुग आनेपर राक्षस लोग ब्राह्मणोंके रूपमें पृथ्वीपर उत्पन्न हो जायँगे।' शास्त्रके इस वाक्यका प्रत्यक्ष प्रमाण जगाई-मधाई दोनों भाइयोंके जीवनमें दृष्टिगोचर होता था। वे उस समय गौड़ेश्वरकी ओरसे नदियाके कोतवाल बनाये गये थे। कोतवाल क्या थे, प्रजाका संहार करनेवाले एक प्रकारसे नवद्वीपके बिना छत्रके बादशाह ही थे। इनसे ऐसा कोई भी दुष्कर्म नहीं बचा था, जिसे ये न करते हों। मनुष्यके विनाशके जितने लक्षण बताये हैं, वे सब इनके नित्यनैमित्तिक कर्म थे। भगवान्‌ने विनाशके लक्षणोंका स्वयं वर्णन किया है—

यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु।
धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति॥

(श्रीमद्भा० ७।४।२८)

भगवान् कहते हैं—'जिस समय मनुष्य देवताओंसे, वैदिक कर्मोंसे, गौओंसे, ब्राह्मणोंसे, साधु-महात्माओंसे, धार्मिक कृत्योंसे और मुझसे विद्वेष करने लगता है, तो उसका शीघ्र ही नाश हो जाता है।' इनसे कोई भी बात नहीं बची थी। देवताओंके मन्दिरोंमें जाना तो उन्होंने जन्मसे ही नहीं सीखा था, ब्राह्मण होनेपर भी ये वेदका नामतक नहीं जानते थे। मांस तो इनका नित्यप्रतिका भोजन ही था, साधु-ब्राह्मणोंकी अवज्ञा कर देना तो इनके लिये साधारण-सी बात थी। जिसे भी चाहते बाजारमें खड़ा करके जूतोंसे पिटवा देते। किसीका सम्मान करना तो ये जानते ही नहीं थे। अच्छे-अच्छे कर्मकाण्डी और विद्वान् ब्राह्मण

इनके नामसे थर-थर काँपने लगते थे। किसीको इनके सामनेतक जानेकी हिम्मत नहीं होती थी। धर्म किस चिड़ियाका नाम है और वह कहाँ रहती है, इसका तो इन्हें पता ही नहीं था। धनिकोंके यहाँ डाका डलवा देना, लोगोंको कत्ल करा देना, पतिव्रताओंके सतीत्वको नष्ट करा देना, यह तो इनके लिये साधारण-से कार्य थे। न किसीसे सीधी बात करना और न किसीके पास बैठना, बस, खूब मदिरा-पान करके उसीके मदमें मतवाले हुए ये सदा पापकर्मोंमें प्रवृत्त रहते थे। ये नगरके काजीको खूब धन दे देते, इसलिये वह भी इनके विरुद्ध कुछ नहीं कहता था। वैसे इनका घर तो भगवती भागीरथीके तटपर ही था, किन्तु ये घरमें नहीं रहते थे, सदा डेरा-तम्बू लेकर एक मुहल्लेसे दूसरे मुहल्लेमें दौरा करते। अबके इस मुहल्लेमें इनका डेरा पड़ा है तो अबके उसमें। इसी प्रकार ये मुहल्ले-मुहल्लेमें दस-दस, बीस-बीस दिन रहते। जिस मुहल्लेमें इनका डेरा पड़ जाता, उस मुहल्लेके लोगोंके प्राण सूख जाते। कोई भी इनके सामने होकर नहीं निकलता था, सभी आँख बचाकर निकल जाते। इस प्रकार इनके पाप पराकाष्ठापर पहुँच गये थे। उस समय ये नवद्वीपमें अत्याचारोंके लिये रावण-कंसकी तरह, वक्रदन्त-शिशुपालकी तरह, नादिरशाह-गजनीकी तरह तथा डायर-ओडायरकी तरह प्रसिद्ध हो चुके थे।

एक दिन ये मदिराके मदमें उन्मत्त हुए पागलोंकी भाँति प्रलाप-सा करते हुए लाल-लाल आँखें किये कहीं जा रहे थे। रास्तेमें नित्यानन्दजी और हरिदासजीने इन्हें देखा। इनकी ऐसी शोचनीय और विचित्र दशा देखकर नवद्वीपमें नये ही आये हुए नित्यानन्दजी लोगोंसे पूछने लगे—'क्यों जी! ये लोग कौन हैं और इस प्रकार पागलोंकी तरह क्यों बकते जा रहे हैं? वेषभूषासे तो ये कोई सभ्य पुरुष-से जान पड़ते हैं!'

लोगोंने कुछ सूखी हँसी हँसते हुए उत्तर दिया—'मालूम पड़ता है

अभी आपको इनसे पाला नहीं पड़ा है। तभी ऐसी बातें पूछ रहे हैं। ये यहाँके साक्षात् यमराज हैं। पापियोंको भी सम्भवतया यमराजसे इतना डर न लगता होगा जितना कि नवद्वीपके नर-नारियोंको इन नराधमोंसे लगता है। इन्होंने जन्म तो ब्राह्मणके घरमें लिया है, किन्तु ये काम चाण्डालोंसे भी बढ़कर करते हैं। देखना, आप कभी इनके सामने होकर नहीं निकलना। इन्हें साधुओंसे बड़ी चिढ़ है। यदि इन्होंने आपलोगोंको देख भी लिया तो खैर नहीं है। परदेशी समझकर हमने यह बात आपको समझा दी है।'

लोगोंके मुखसे ऐसी बात सुनकर नित्यानन्दजीको इनके ऊपर दया आयी। वे सोचने लगे—'जो लोग नाममें श्रद्धा रखते हैं और सदा सत्कर्मोंको करनेकी चेष्टा करते रहते हैं, यदि ऐसे लोग हमारे कहनेसे भगवन्नामका कीर्तन करते हैं, इसमें तो हमारे प्रभुकी विशेष बड़ाई नहीं है। प्रशंसाकी बात तो यह है कि ऐसे पापी भी पाप छोड़कर भगवन्नामका आश्रय ग्रहण करके प्रभुकी शरणमें आ जायँ। भगवन्नामका असली महत्त्व तो तभी प्रकट होगा। ऐसे लोग ही सबसे अधिक कृपाके पात्र हैं। ऐसे ही लोगोंके लिये तो भगवन्नाम-उपदेशकी परम आवश्यकता है। किसी प्रकार इन लोगोंका उद्धार होना चाहिये।' इस प्रकार नित्यानन्दजी मनही-मन विचार करने लगे। जिस प्राणीके लिये महात्माओंके हृदयमें शुभकामना उत्पन्न हो जाय, महात्मा जिसके भलेके लिये विचारने लगें, समझना चाहिये उसका तो कल्याण हो चुका। फिर उसके उद्धारमें देरी नहीं हो सकती। महात्माओंकी यथार्थ इच्छा अथवा सत्संकल्प होते ही पापी-से-पापी प्राणी भी परम पावन और पुण्यवान् बन सकता है। जब, निताईके हृदयमें इन दोनों भाइयोंके उद्धारके निमित्त चिन्ता होने लगी, तभी समझना चाहिये, इनके पापोंके क्षय होनेका समय अत्यन्त ही समीप आ पहुँचा। मानो अब इनका सौभाग्य-सूर्य कुछ ही कालमें उदय होनेवाला हो।

नित्यानन्दजीने अपने मनोगत विचार हरिदासजीपर प्रकट किये। हरिदासजीने कहा—'आप तो बिना सोचे ही बर्रोंके छत्तेमें हाथ डालना चाहते हैं। अभी सुना नहीं, लोगोंने क्या कहा था ?'

नित्यानन्दजीने कुछ गम्भीरताके साथ कहा—'सुना तो सब कुछ, किन्तु इतनेसे ही हमें डर जाना तो न चाहिये। हमें तो भगवन्नामका प्रचार करना है।'

हरिदासजीने कहा—'मैं यह कब कहता हूँ कि भगवन्नामका प्रचार बन्द कर दीजिये ? चलिये, जैसे कर रहे हैं दूसरी ओर चलकर नामका प्रचार करें। इन सोते सिंहोंको जगानेसे क्या लाभ ?'

नित्यानन्दजीने कहा—'आपकी बात तो ठीक है किन्तु प्रभुकी तो आज्ञा है कि भगवन्नाम-वितरणमें पात्रापात्रका ध्यान मत रखना, सभी-को समानभावसे उपदेश करना। पापी हो या पुण्यात्मा, भगवन्नाम ग्रहण करनेके तो सभी अधिकारी हैं। इसलिये इन्हें भगवन्नामका उपदेश क्यों न किया जावे ?'

हरिदासजीने कुछ नम्रताके स्वरमें कहा-'यह तो ठीक है। आपके सामने जो भी पड़े उसे ही भगवन्नामका उपदेश करो, किन्तु इन्हींको विशेषरूपसे उद्देश्य करके इनके पास चलना ठीक नहीं। इन्हींके पास हठपूर्वक क्यों चला जाय ? भगवन्नामका उपदेश करनेके लिये और भी बहुत-से मनुष्य पड़े हैं। उन्हें चलकर उपदेश कीजिये।'

नित्यानन्दजीने कुछ दृढ़ताके साथ कहा—'देखिये, जो अधिक बीमार होता है, जिसे अन्य रोगियोंकी अपेक्षा ओषधिकी अधिक आव-श्यकता होती है, बुद्धिमान् वैद्य सबसे पहले उसी रोगीकी चिकित्सा करता है और उसे ओषधि देकर तब दूसरे रोगीकी नाड़ी देखता है। अन्य लोगोंकी अपेक्षा भगवन्नामकी इन्हीं लोगोंको अधिक आवश्यकता

है। इनके इतने क्रूर कर्मोंका भगवन्नामसे ही प्रायश्चित्त हो सकता है। इनकी निष्कृतिका दूसरा कोई मार्ग है ही नहीं। क्यों ठीक है न? आप मेरी बातसे सहमत हैं न?'

हरिदासजीने कहा—'जैसी आपकी इच्छा, यदि आप इन्हें ही सबसे अधिक भगवन्नामका अधिकारी समझते हैं तो इसमें कोई आपत्ति नहीं। मैं भी आपके साथ चलनेको तैयार हूँ।' यह कहकर हरिदासजी-

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

इस महामन्त्रका अपने सुमधुर कण्ठसे गान करते हुए जगाई-मधाई-के डेरेकी ओर चले। इन दोनोंको बादशाहकी ओरसे थोड़ी-सी फौज भी मिली हुई थी। उसे ये सदा साथ रखते थे। ये दोनों संन्यासी निर्भीक होकर भगवन्नामका गान करते हुए इनके निवास-स्थानके समीप पहुँचे। दैवयोगसे ये दोनों भाई सामने ही सुराके मदमें चूर हुए पलँगों-पर बैठे थे। इन दोनोंको अपने सामने गायन करते देखकर इनकी ओर लाल-लाल आँखोंसे देखते हुए वे लोग बोले—'तुमलोग कौन हो और क्या चाहते हो?'

नित्यानन्दजीने बड़े मधुर स्वरमें कहा—

'कृष्ण कहो, कृष्ण भजो, लेहु कृष्ण नाम।
कृष्ण माता, कृष्ण पिता, कृष्ण धन प्राण॥'

इसके अनन्तर वे कहने लगे—'हम भिक्षुक हैं, आपसे भिक्षा माँगने आये हैं, आप अपने मुखसे—

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव॥

—भगवान्‌के इन मधुर नामोंका उच्चारण करें, यही हमलोगोंकी

भिक्षा है।' इतना सुनते ही ये दोनों भाई मारे क्रोधके लाल हो गये और जल्दीसे उठकर इनकी ओर झपटे। झपटते हुए उन्होंने कहा—'कोई है नहीं, इन दोनों बदमाशोंको पकड़ तो लो।' बस, इतना सुनना था कि नित्यानन्दजीने वहाँसे दौड़ लगायी। हरिदासजी भी हाँफते हुए उनके पीछे दौड़ने लगे, किन्तु शरीरसे स्थूल और अधिक अवस्था होनेके कारण वे दुबले-पतले चञ्चल युवक निताईके साथ कैसे दौड़ सकते थे? नित्यानन्दजीने उनकी बाँहको कसकर पकड़ लिया और उन्हें घसीटते हुए दौड़ने लगे। हरिदासजी किढरते हुए नित्यानन्दजीके साथ जा रहे थे। जगाई-मधाईके नौकर कुछ दूर तो इन्हें पकड़नेके लिये दौड़े, फिर वे यह सोचकर लौट गये, कि ये तो नशेमें ऐसे बकते ही रहते हैं, हम इन साधुओंको पकड़कर क्या पावेंगे? उन्होंने इन दोनोंका बहुत दूरतक पीछा नहीं किया।

हरिदासजी हाँफ रहे थे, वे बार-बार पीछे देखते जाते थे। अन्तमें वे बहुत ही अधिक थक गये। झुँझलाकर नित्यानन्दजीसे बोले—'अजी, अब तो छोड़ दो, दम तो निकला जाता है, क्या प्राण लेकर ही छोड़ोगे? आपने तो मेरी कलाई इतनी कसकर पकड़ ली है कि दर्दके मारे मरा जाता हूँ। अब तो कोई पीछे भी नहीं आ रहा है।'

नित्यानन्दजीने भागते-भागते कहा—'थोड़ी-सी हिम्मत और करो। बस, इस अगले तालाबतककी ही तो बात है।'

हरिदासजीने कुछ क्षोभके साथ कहा—'भाड़में गया आपका तालाब! यहाँ तो प्राणोंपर बीत रही है, आपको तालाब सूझ रहा है। छोड़ो मेरा हाथ!' यह कहकर बूढ़े हरिदासजीने जोरसे एक झटका दिया किन्तु भला निताईसे वे बाँह कैसे छुड़ा सकते थे? तब तो नित्यानन्दजी हँसकर खड़े हो गये। हरिदासजी बेहोश होकर जमीनपर गिर पड़े। जोरोंसे साँस लेते हुए कहने लगे—'रहने भी दीजिये, आप तो सदा चञ्चलता ही करते रहते हैं। मैंने पहले ही मना किया था। आप

माने ही नहीं। एक तो जिद्द करके वहाँ गये और दूसरे मुझे खींच-खींचकर अधमरा कर दिया।'

हँसते हुए नित्यानन्दजीने कहा—'आपकी ही सम्मतिसे तो हम गये थे। यदि आप सम्मति न देते तो हम क्यों जाते? आप ही तो हम दोनोंमें बुजुर्ग हैं।'

हरिदासजीने कुछ रोषमें आकर कहा—'बुजुर्ग हैं पत्थर! मेरी सम्मतिसे गये थे तो वहाँसे भाग क्यों आये? तब मेरी सम्मति क्यों नहीं ली?'

जोरोंसे हँसते हुए नित्यानन्दजीने कहा—'यदि उस समय आपकी सम्मतिकी प्रतीक्षा करता, तो सब मामला साफ ही हो जाता।' इस प्रकार आपसमें एक दूसरेको प्रेमके साथ ताने देते हुए ये दोनों प्रभुके निकट पहुँचे। उस समय प्रभु भक्तोंके साथ बैठे श्रीकृष्ण-कथा कह रहे थे। इन दोनों प्रचारक तपस्वियोंको देखकर वे प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहने लगे—'लो, भाई! युगल-जोड़ी आ गयी। प्रचारक-मण्डलके मुखिया आ गये। अब आपलोग इनके मुखसे नगर-प्रचारका वृत्तान्त सुनिये।'

प्रभुके ऐसा कहनेपर हरिदासजीने कहा—'प्रभो! श्रीपाद नित्यानन्दजी बड़ी चञ्चलता करते हैं, इन्हें आप समझा दीजिये कि थोड़ी कम चञ्चलता किया करें।'

प्रभुने पूछा—'क्यों-क्यों? बात क्या है, क्या हुआ? आज कोई नयी चञ्चलता कर डाली क्या? हाँ, आज आपलोग दोनों ही बहुत थके हुए-से मालूम पड़ते हैं। सब सुनाइये।'

प्रभुके पूछनेपर हरिदासजीने सब वृत्तान्त सुनाते हुए कहा—'लोगोंने बार-बार उन दोनों भाइयोंके पास जानेसे मना किया था, किन्तु ये माने ही नहीं। जब उन्होंने डाँट लगायी तब वहाँसे बालकोंकी भाँति भाग छूटे। लोग कह रहे थे, अब कीर्तनवालोंकी खैर नहीं। ये

राक्षस-भाई सभी कीर्तनवालोंको बँधवा मँगावेंगे। लोग परस्परमें ऐसी ही बातें कह रहे थे।'

हरिदासजीकी बात सुनकर हँसते हुए प्रभुने नित्यानन्दजीसे कहा–'श्रीपाद! उन लोगोंके समीप जानेकी आपको क्या आवश्यकता थी? थोड़ी कम चञ्चलता किया कीजिये। ऐसा चाञ्चल्य किस कामका?'

कुछ बनावटी प्रेम-कोप प्रदर्शित करते हुए नित्यानन्दजीने कहा—'इस प्रकार मुझसे आपका यह काम नहीं होनेका। आप तो घरमें बैठे रहते हैं, आपको नगर-प्रचारकी कठिनाइयोंका क्या पता? एक बार तो कहते हैं सभीको नामका प्रचार करो। ब्राह्मणसे चाण्डालपर्यन्त और पापीसे लेकर पुण्यात्मातक सभी भगवन्नामके अधिकारी हैं और अब कहते हैं, उनके पास क्यों गये? सबसे बड़े अधिकारी तो वही हैं। हम तो जन्मसे ही घर-बार छोड़कर टुकड़े माँगते फिरते हैं, हमारा उद्धार करनेमें आपकी कौन-सी बड़ाई है? आपका पतितपावन नाम तो तभी सार्थक हो सकता है, जब ऐसे-ऐसे भयंकर क्रूर कर्म करनेवाले पापियोंका उद्धार करें। अब यों घरमें बैठे रहनेसे काम न चलेगा। ऐसे घोर पापियोंको जबतक हरिनामकी शरणमें लाकर भक्त न बनावेंगे, तबतक लोग हरि-नामका महत्त्व ही कैसे समझ सकेंगे?'

कुछ हँसते हुए प्रभु भक्तोंसे कहने लगे—'श्रीपादको जिनके उद्धारकी इतनी भारी चिन्ता है, वे महाभागवत पुरुष कौन हैं?'

पासहीमें बैठे हुए श्रीवास और गङ्गादास भक्तोंने कहा—'प्रभो! वे महाभागवत नहीं हैं, वे तो ब्राह्मण-कुल-कण्टक अत्यन्त ही क्रूर प्रकृतिके राक्षस हैं। सम्पूर्ण नगरमें उनका आतङ्क छाया हुआ है।' यह कहकर उन लोगोंने जगाई-मधाईकी बहुत-सी क्रूरताओंका वर्णन किया।

प्रभुने हँसते हुए कहा—'अब वे कितने दिनोंतक क्रूरता कर सकते हैं? श्रीपादके जिन्हें दर्शन हो चुके और इनके मनमें जिनके उद्धारका विचार आ चुका, वे क्या फिर पापी ही बने रह सकते हैं? श्रीपाद जिसे

चाहें उसे भक्त बना सकते हैं, फिर चाहे वह कितना भी बड़ा पापी क्यों न हो !'

इस प्रकार निताईने संकेतसे ही प्रभुके समीप जगाई-मधाईके उद्धारकी प्रार्थना कर दी और प्रभुने भी संकेतद्वारा ही उन्हें उन दोनों भाइयोंके उद्धारका आश्वासन दिला दिया। सचमुच महात्माओंके हृदयोंमें दूसरोंके प्रति स्वाभाविक ही दया उत्पन्न हो जाती है। उनके समीप आकर कोई दयाकी प्रार्थना करे तभी वे दया करें यह बात नहीं है, किन्तु उनका स्वभाव ही ऐसा होता है कि बिना कहे ही वे दीन-दुखियोंपर दया करते रहते हैं। बिना दया किये वे रह हो नहीं सकते। जैसे कि नीतिकारोंने कहा है—

पद्माकरं दिनकरो विकचं करोति
चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।
नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति
सन्तः स्वयं परहितेषु कृताभियोगाः॥

(भर्तृहरि० नी० श० ७४)

रात्रिके दुःखसे सिकुड़े हुए कमल मरीचिमाली भगवान् भुवन-भास्करके समीप अपना दुखड़ा रोनेके लिये नहीं जाते, बिना कहे ही कमल-बन्धु भगवान् दिवाकर उनके दुःखोंको दूर करके उन्हें विकसित कर देते हैं। कुमुदिनीकी लज्जासे अवगुण्ठित कलिकाको कलानाथ भगवान् शशधर स्वयं ही प्रस्फुटित कर देते हैं। बिना याचनाके ही जलसे भरे हुए मेघ अपने सम्पूर्ण जलको बरसाकर प्राणियोंके दुःखको दूर करते हैं। इसी प्रकार महान् संतगण भी स्वयं ही दूसरोंके उपकारके निमित्त सदा कुछ-न-कुछ उद्योग करते ही रहते हैं। परोपकार करना उनका स्वभाव ही बन जाता है। जैसे सभी प्राणी जानमें, अनजानमें स्वाँस लेते ही रहते हैं, उसी प्रकार संत-महात्मा जो-जो भी चेष्टा करते हैं, वे सभी लोक-कल्याणकारी ही होती हैं।



जगाई-मधाई-उद्धार

जगाई-मधाईका उद्धार

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः॥*

(सु० र० भां० ९० । ७)

सचमुचमें जिसका हृदय कोमल है, जो सभी प्राणियोंको प्रेमकी दृष्टिसे देखता है, जिसकी बुद्धि घृणा और द्वेषके कारण मलिन नहीं हो गयी है, परोपकार करना जिसका व्यसन ही बन गया है, ऐसा साधु पुरुष यदि सच्चे हृदयसे किसी घोर पापी-से-पापीका भी कल्याण चाहे तो उसके धर्मात्मा बननेमें सन्देह ही नहीं। महात्माओंकी स्वाभाविक इच्छा अमोघ होती है, यदि वे प्रसन्नतापूर्वक किसीकी ओर देखभर लें, बस, उसी समय उसका बेड़ा पार है। साधुओंके साथ खोटी बुद्धिसे किया हुआ संग भी व्यर्थ नहीं होता। साधुओंसे द्वेष रखनेवालोंका भी कल्याण ही होते देखा गया है, यदि पापीके ऊपर किसी अपराधके कारण कभी क्रोध न करनेवाले महात्माओंको दैवात् क्रोध आ गया तब तो उसका सर्वस्व ही नाश हो जाता है, किन्तु प्रायः महात्माओंको क्रोध कभी नाममात्रको ही आता है, वे अपने अहित करनेवालेका भी सदा हित ही करते हैं। प्रहार करनेपर भी वे वृक्षोंकी भाँति सुस्वादु फल ही प्रदान करते हैं, क्योंकि उनका हृदय दयासे परिपूर्ण होता है।

---

* साधुओंका शरीर ही तीर्थस्वरूप है, उनके दर्शनसे ही पुण्य होता है। साधुओंमें और तीर्थोंमें एक बड़ा भारी अन्तर है, तीर्थोंमें जानेका फल तो कालान्तरमें मिलता है, किन्तु साधुओंके समागमका फल तत्काल ही मिल जाता है। अतः सच्चे साधुओंका सत्संग तो बहुत दूरकी बात है, उनका दर्शन ही कोटि तीर्थोंसे अधिक होता है।

इतने घोर पापी दोनों भाई जगाई-मधाईके ऊपर नित्यानन्दजीकी कृपा हो गयी, उनके हृदयमें इन दोनोंके उद्धारके निमित्त चिन्ता हो उठी, मानो इन दोनोंके पापोंके अन्त होनेका समय आ गया। जिस दिन इन दोनोंको अवधूत नित्यानन्द और महात्मा हरिदासजीके दर्शन हुए, उसी दिन इनके शुभ दिनोंका श्रीगणेश हो गया। संयोगवश अबके उन्होंने उसी मुहल्लेमें अपना डेरा डाला, जहाँ महाप्रभुका घर था। मुहल्लेके सभी लोग डर गये। एक दूसरेसे कहने लगे—'अब इन कीर्तनवालोंपर आपत्ति आयी। ये दोनों राक्षस भाई जरूर कीर्तन करनेवालोंसे छेड़खानी करेंगे।' कोई-कोई कीर्तन-विरोधी कहने लगे—'अजी! अच्छा है। ये कीर्तनवाले रात्रिभर सोने ही नहीं देते। इनके कोलाहलके कारण रात्रिमें नींद ही नहीं आती। अच्छा है अब सुखसे तो सो सकेंगे।' कोई-कोई अपने अनुमानसे कहते—'बहुत सम्भव है अब ये कीर्तन करनेवाले लोग स्वयं ही कीर्तन बंद कर देंगे और न बंद करेंगे तो अपने कियेका मजा चखेंगे।' इस प्रकार लोग भाँति-भाँतिके तर्क-वितर्क करने लगे।

प्रभुका घर गङ्गाजीके समीप ही था। जिस घाटपर प्रभु स्नान करने जाते, उसीके रास्तेमें इन दोनों क्रूरकर्मा भाइयोंका डेरा पड़ा हुआ था। इनके डरके कारण गङ्गा-स्नानके निमित्त अकेला तो कोई जाता ही नहीं था। दस-बीस आदमी साथ मिलकर घाटपर स्नान करने जाते। रात्रिमें तो कोई अपने घरसे बाहर निकलता ही नहीं था, कारण कि ये दोनों भाई नशेमें उन्मत्त होकर इधर-उधर घूमते और जिसे भी पाते, उसीपर प्रहार कर बैठते। इसलिये शाम होते ही जैसे पक्षी अपने-अपने घोंसलोंमें घुस जाते हैं और फिर प्रातःकाल ही उसमेंसे निकलते हैं, उसी प्रकार उस मुहल्लेके लोग सूर्यास्तके बाद भूलकर भी घरसे बाहर नहीं होते। क्योंकि इनकी क्रूरता और नृशंसतासे सभी लोग परिचित थे।

शामको नियमितरूपसे भक्त संकीर्तन करते थे और कभी-कभी तो

रात्रिभर संकीर्तन होता रहता था। इन दोनोंके डेरा डालनेपर भी संकीर्तन ज्यों-का-त्यों ही होता रहा। रात्रिमें सभी भक्त एकत्रित हुए और उसी प्रकार लय एवं ध्वनिके साथ खोल, मृदङ्ग, करताल और मजीरा आदि वाद्योंसहित भगवान्‌के सुमधुर नामोंका संकीर्तन होने लगा।

संकीर्तनकी त्रितापहारी, अनन्त अघसंहारी, सुमधुर ध्वनि इन दोनों भाइयोंके कानोंमें भी पड़ी। ये दोनों शराबके मदमें तो चूर थे ही, उस कर्णप्रिय ध्वनिके श्रवणमात्रसे और अधिक उन्मत्त हो गये। गर्मियोंके दिन थे, बाहर अपने पलंगोंपर पड़े हुए ये कीर्तनके जगत्-पावनकारी रसामृतका पान करने लगे। कभी तो ये वेसुध होकर हुंकार मारने लगते, कभी पड़े-पड़े ही 'अहा-अहा' इस प्रकार कहने लगते। कभी भावावेशमें आकर कीर्तनके लयके साथ उठकर नृत्य करने लगते। इस प्रकार ये संकीर्तनके माहात्म्यको बिना जाने ही केवल उसके श्रवणमात्रसे ही पागल-से हो गये। एक दिन दूरसे कीर्तनकी ध्वनि सुनकर ही इनके हृदयकी कठोरता बहुत कुछ जाती रही। भला जिस हृदयमें कर्णोंके द्वारा भगवन्नामका प्रवेश हो चुका है वहाँपर कठोरता रह ही कैसे सकती है? संकीर्तन श्रवण करते-करते ही ये दोनों भाई सो गये। प्रातःकाल जब जगे तो इन्होंने भक्तोंको घाटकी ओर गङ्गास्नानके निमित्त जाते हुए देखा। महाप्रभु भी उधरसे ही जा रहे थे। इन्होंने यह सब तो पहले ही सुन रक्खा था कि प्रभु ही संकीर्तनके जीवनदाता हैं। अतः प्रभुको देखते ही इन्होंने कुछ गर्वित स्वरमें प्रसन्नताके साथ कहा—'निमाई पण्डित! रात्रिमें तो बड़ा सुन्दर गाना गा रहे थे, क्या 'मंगलचण्डी' के गीत थे? एक दिन अपने सभी साथियोंके सहित हमारे यहाँ भी गान करो। तुम जो-जो सामग्री बताओगे वह सब हम मँगा देंगे। एक दिन जरूर हमारे यहाँ चण्डीमंगल होना चाहिये। हमें तुम्हारे गीत बहुत भले मालूम पड़ते हैं।' भगवन्नाम-संकीर्तनका कैसा विलक्षण प्रभाव है! केवल अनिच्छापूर्वक श्रवण

करनेका यह फल है, कि जो दोनों भाई किसीसे सीधे बातें ही करना नहीं जानते थे, वे ही महाप्रभुसे अपने यहाँ गायन करनेकी प्रार्थना करने लगे। प्रभुने इनकी बातोंका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वे उपेक्षा करके आगे चले गये।

तीसरे पहर सभी भक्त प्रभुके घर एकत्रित हुए। सभीने प्रभुसे प्रार्थना की—'प्रभो! इन दोनों भाइयोंका अब अवश्य ही उद्धार होना चाहिये। अब यही इनके उद्धारके निमित्त सुअवसर है। तभी लोगोंको संकीर्तनका महत्त्व जान पड़ेगा एवं आपका पतितपावन और दीनबन्धु नाम सार्थक हो सकेगा।'

प्रभुने मुस्कराते हुए कहा—'भक्तवृन्द! जिनके उद्धारके निमित्त आप सब लोग इतने चिन्तित हैं, जिनकी मंगल-कामनाके लिये आप सभीके हृदयोंमें इतनी अधिक इच्छा है, उनका तो उद्धार अब हुआ ही समझो। अब उनके उद्धारमें क्या देरी है? जिन्हें श्रीपादके दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त हो चुका, वे पापी रह ही कैसे सकते हैं? श्रीपादके दर्शन व्यर्थ कभी नहीं जाते। ये उनका कल्याण अवश्य करेंगे।' प्रभुके ऐसे आश्वासन-वाक्य सुनकर भक्त अपने-अपने स्थानोंको चले गये।

एक दिन रात्रिके समय नित्यानन्दजी महाप्रभुके घरकी ओर आ रहे थे। निताईने जान-बूझकर, केवल उन दोनों भाइयोंके उद्धारके निमित्त ही रात्रिमें उधरसे आनेकी बात सोची थी। ये धीरे-धीरे भगवन्नामका उच्चारण करते हुए इनके डेरेके सामने होकर ही निकले। उस समय ये दोनों शराबके नशेमें चूर हुए बैठे थे। नित्यानन्दको रात्रिमें उधरसे जाते देखकर लाल आँखें किये हुए मदिराकी बेहोशीमें मधाईने पूछा—'कौन जा रहा है?' नित्यानन्दजी भला क्यों उत्तर देनेवाले थे, वे चुप ही रहे, इसपर उसने डाँटकर जोरसे कहा—'अरे, कौन जा रहा है? बोलता क्यों नहीं?'

इसपर नित्यानन्दजीने निर्भीक भावसे कहा—'क्यों, हम हैं, क्या

कहते हो ?' मधाईने कहा—'तुम कौन हो ? अपना नाम बताओ और इस समय रात्रिमें कहाँ जा रहे हो ?' नित्यानन्दजीने सरलताके साथ कुछ विनोदके लहजेमें कहा—'प्रभुके यहाँ संकीर्तन करने जा रहे हैं, हमारा नाम है 'अवधूत'।'

अवधूत नामको सुनकर ही मधाई चिढ़ गया। उसने कहा—'अवधूत' अवधूत, बड़ा विचित्र नाम है। अवधूत तो नाम नहीं होता, क्यों वे बदमाश ! हमसे दिल्लगी करता है !' यह कहकर उस अविचारी मदोन्मत्तने पासमें पड़े हुए एक घड़ेके टुकड़ेको उठाकर नित्यानन्दजीके सिरमें जोरसे मारा। वह खपड़ा इतने जोरसे निमाईके सिरमें लगा कि सिरमें लगते ही उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। एक टुकड़ा निमाईके माथेमें भी गड़ गया। खपड़ेके गड़ जानेसे मस्तकसे रक्तकी धारा-सी बहने लगी। नित्यानन्दजीका सम्पूर्ण शरीर रक्तसे लथपथ हो गया। उनके सभी वस्त्र रक्तरञ्जित हो गये। इसपर भी नित्यानन्दजीको उसके ऊपर क्रोध नहीं आया और वे आनन्दके साथ नृत्य करते हुए भगवन्नामका गान करने लगे। वे इनके ऊपर दया दर्शाते हुए रो-रोकर प्रभुसे प्रार्थना करने लगे—'प्रभो ! इस शरीरमें जो आघात हुआ, उसकी मुझे कुछ भी चिन्ता नहीं, किन्तु इन ब्राह्मण-कुमारोंकी ऐसी दुर्दशा अब मुझसे नहीं देखी जाती। इनकी इस शोचनीय अवस्थाके स्मरणमात्रसे मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है, हे दयालो ! अब तो इनकी रक्षा करो ! अब तो इनकी निष्कृतिका उपाय बता दो।'

नित्यानन्दजीको इस प्रकार प्रेममें नृत्य करते देखकर मधाई और अधिक चिढ़ गया। इसपर वह इनके ऊपर दूसरी बार प्रहार करनेको उद्यत हुआ। इसपर जगाईने उसे बीचमें ही रोक दिया। मधाईकी अपेक्षा जगाई कुछ कोमल प्रकृतिका और दयावान् था, उसे नित्यानन्दजीकी इस दशापर बड़ी दया आयी। प्रहार करनेवालेपर भी क्रोध न करके वे आनन्दके सहित नृत्य कर रहे हैं और उलटे अपने अप-

राधीके कल्याणके निमित्त प्रभुसे प्रार्थना कर रहे हैं, इस बातसे जगाईका हृदय पसीज उठा। उसने मधाईको रोकते हुए कहा—'तुम यह क्या कर रहे हो ? एक संन्यासीको बिना जाने-पूछे मार रहे हो। यह अच्छी बात नहीं है।'

लाल-लाल आँखोंसे चारों ओर देखते हुए मधाईने कहा—'यह अपना सीधी तरह नाम-गाँव ही नहीं बताता।'

सरलताके स्वरमें जगाईने कहा—'यह परदेशी संन्यासी अपना नाम-गाँव क्या बतावे ? देखते नहीं अवधूत है। माँगकर खाता होगा, इधर-उधर पड़ा रहता होगा।' जगाईके इस प्रकार निवारण करनेपर मधाई शान्त हुआ। उसने दूसरी बार नित्यानन्दजीपर प्रहार नहीं किया। नित्यानन्दजी आनन्दमें उन्मत्त हुए नृत्य कर रहे थे। माथेसे रक्तका पनाला-सा बह रहा था। वहाँकी सम्पूर्ण पृथ्वी रक्तसे भीग गयी थी। लोगोंने जल्दीसे जाकर यह संवाद महाप्रभुको दिया। उस समय महाप्रभु भक्तोंके सहित कीर्तन आरम्भ करनेहीवाले थे। नित्यानन्दजीके प्रहारकी बात सुनकर अब इनसे नहीं रहा गया। ये नित्यानन्दजीको प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते थे। नित्यानन्दजीकी विपत्तिका समाचार सुनकर ये एकदम उठ पड़े और दौड़ते हुए घटनास्थलपर आये। इनके पीछे सभी भक्त भी ज्यों-के-त्यों ही उठे हुए चले आये। किसीके गलेमें ढोलकी लटक रही थी, किसीके कमरसे मृदंग बँधा था, कोई पखावज लिये था, किसीके दोनों हाथोंमें करताल थी और बहुतोंके हाथोंमें मजीरा ही थे। प्रभुने देखा नित्यानन्दजी आनन्दके उद्रेकमें प्रेमसे उन्मत्तकी भाँति नृत्य कर रहे हैं। उनके मस्तकसे रक्तकी धार बह रही है, उनका सम्पूर्ण शरीर रक्तरञ्जित हो रहा है। शरीरमेंसे रक्त टप-टप नीचे टपक रहा है, उनके नीचेकी सम्पूर्ण पृथ्वी रक्तके कारण लाल हो गयी है। ऐसी दशामें भी भगवान्के मधुर नामोंका कीर्तन कर रहे हैं! नित्यानन्दजीके रक्तप्रवाहको देखकर प्रभुका खून उबलने लगा, उस समय वे अपनी सब प्रतिज्ञा भूल गये और आकाशकी

ओर देखकर जोरोंसे हुंकार मारते हुए 'चक्र-चक्र' इस प्रकार कहने लगे। मानो इन दोनों पापियोंके संहारके निमित्त वे सुदर्शन चक्रका आह्वान कर रहे हैं। प्रभुको इस प्रकार क्रोधाविष्ट देखकर नित्यानन्दजीने उनसे विनीत भावसे कहा—'प्रभो! अपनी प्रतिज्ञा स्मरण कीजिये, इन पापियोंके प्रति जो आपके हृदयमें क्रोध उत्पन्न हो आया है, उसे दूर कीजिये। जब आप ही पापियोंके ऊपर दया न करके क्रोध करेंगे तो इनका उद्धार कैसे होगा? आप तो पापसंहारी हैं, आपका नाम तो पतितपावन है। आप तो दीनानाथ हैं। इनके बराबर दीन, हीन, पतित आपको उद्धारके निमित्त कहाँ मिलेगा! प्रभो! ये पापी आपकी कृपाके पात्र हैं, ये गौरकी दयाके अधिकारी हैं। इनके ऊपर अनुग्रह होना चाहिये। अपने जगद्वन्द्य चरणोंको इनके मस्तकोंपर रखकर इनका उद्धार कीजिये।' निताईके ऐसी प्रार्थना करनेपर भी प्रभुका क्रोध शान्त नहीं हुआ। इधर प्रभुको क्रुद्ध देखकर सभी भक्त विस्मित-से हो गये। सभी आश्चर्यके साथ प्रभुके कुपित मुखकी ओर संभ्रमभावसे देखने लगे। सभीको प्रतीत होने लगा कि आज संसारमें महाप्रलय हो जायगा। सम्पूर्ण संसार प्रभुके प्रकोपसे भस्मीभूत हो जायगा। प्रभुकी ऐसी दशा देखकर कुछ भक्त अपने आपको न रोक सके। मुरारी गुप्त आदि वीर भक्त महावीरके आवेशमें आकर उन दोनों पापी भाइयोंके संहारके निमित्त स्वयं उद्यत हो गये। उस समय भक्तोंके हृदयोंमें एक प्रकारकी भारी खलबली-सी मची हुई थी। उत्तेजित भक्तमण्डलीको देखकर जगाई-मधाईके सभी सेवक डरके कारण थर-थर काँपने लगे। हजारों नर-नारी घटनास्थलपर आ-आकर एकत्रित हो गये। सम्पूर्ण नगरमें एक प्रकारका कोलाहल-सा मच गया। नित्यानन्दजी उत्तेजित हुए मुरारी गुप्त आदि भक्तोंके पैरोंमें गिर-गिरकर उनसे शान्त होनेके लिये कह रहे थे। प्रभुसे भी वे बार-बार शान्त होनेकी प्रार्थना कर रहे थे। वे दोनों भाई डरे हुए-से चुपचाप खड़े थे। उन्हें कुछ सूझता ही नहीं

था, कि अब क्या करना चाहिये। इतनेहीमें उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा मानो आकाशमेंसे सुदर्शनचक्र उनके संहारके निमित्त उतर रहा है। सुदर्शनचक्रके दर्शनसे वे बहुत ही अधिक भयभीत हुए और डरके कारण थर-थर काँपने लगे। नित्यानन्दजीने इनकी मनोगत अवस्थाको समझकर चक्रसे आकाशमें ही रुके रहनेकी प्रार्थना की और दीनभावसे पुनः प्रभुसे प्रार्थना करने लगे—'प्रभो! यदि आप ही इस युगमें पापियोंको दण्ड देंगे, तो फिर पापियोंका उद्धार कहाँ हुआ? यह तो संहार ही हुआ। हरिदासजीको आपने आश्वासन दिया था, कि हम पतितोंका संहार न करके उद्धार करेंगे। सामने खड़े हुए इन दोनों पतित पातकियोंका उद्धार करके आप अपने पतितपावन नामको सार्थक क्यों नहीं करते? फिर दण्ड ही देना है, तो एक मधाईको ही दीजिये। जगाईने तो आपका कोई अपराध नहीं किया है। इसने तो उलटे मधाईको प्रहार करनेसे निवारण किया है। दूसरी बार प्रहार करनेसे जगाईने ही मधाईको रोका है। प्रभो! जगाई तो मेरी रक्षा करनेवाला है, वह तो सर्वथा निर्दोष है।'

'जगाईने श्रीपादकी रक्षा की है, उन्हें मधाईके द्वितीय प्रहारसे बचाया है' इस बातको सुनते ही प्रभुकी प्रसन्नताका ठिकाना नहीं रहा। उनका सम्पूर्ण शरीर पुलकित हो उठा। प्रेमके कारण जगाईको प्रभुने गलेसे लगा लिया और वे गद्‌गद-कण्ठसे कहने लगे—'तुमने मेरे भाईको बचाया है, तुम मेरे भाईके रक्षक हो। तुमसे बढ़कर मेरा प्यारा और कौन हो सकता है? आओ, मेरे गले लगकर मेरे अनुतप्त हृदयको शीतलता प्रदान करो।' प्रभुका प्रेमालिङ्गन पाते ही जगाई मूर्छित हो गया, वह अचेत होकर प्रभुके चरणोंमें लोटने लगा। आज उस भाग्यवान् ब्राह्मण-बन्धुका जन्म सफल हो गया। उसके सभी पाप क्षय हो गये। उसके

हृदयमें पाप-पुञ्जोंका समूह जमे हुए हिमके समान प्रेमरूपी अग्निकी आँच पानेसे पिघल-पिघलकर आँखोंके द्वारा बहने लगा। प्रभुके चरणोंमें पड़ा हुआ जगाई जोरोंके साथ फूट-फूटकर रोने लगा।

अपने भाईको इस प्रकार प्रेममें अधीर होकर रुदन करते देखकर मधाईके हृदयमें भी पश्चात्तापकी ज्वाला जलने लगी। उसे भी अपने कुकृत्यपर लज्जा आने लगी। अब वह अधिक कालतक स्थिर न रह सका। आँखोंमें आँसू भरकर गद्गद कण्ठसे उसने कहा—'प्रभो ! हम दोनों ही भाइयोंने मिलकर समानरूपसे पाप किये हैं। हम दोनों ही लोकनिन्दित पातकी हैं। आपने एक भाईको ही अपने चरणोंकी शरण प्रदान की है। नाथ ! हम दोनोंको ही अपनाइये, हम दोनोंकी ही रक्षा कीजिये।' यह कहते-कहते मधाई भी प्रभुके चरणोंमें लोटने लगा। अश्रुओंके वेगसे वहाँकी सब धूलि कीचड़ बन गयी थी, वह कीचड़ दोनों भाइयोंके अंगोंमें लिपटा हुआ था। सम्पूर्ण शरीर धूल और कीचमें सना हुआ था। नदियाके बिना तिलकके राजाओंको इस प्रकार धूलिमें लोटते देखकर सभी नर-नारी अवाक् रह गये। सभी लोग उन पापियोंके पापोंको भुलाकर उनके ऊपर दयाके भाव प्रदर्शित करने लगे। अहा ! नम्रतामें कितना भारी आकर्षण होता है !

मधाईके ऊपरसे प्रभुका रोष अभी भी नहीं गया था। उन्होंने गम्भीर स्वरमें कहा—'मधाई ! मैं तुम्हें क्षमा नहीं कर सकता। मैं अपने अपराध करनेवालेके प्रति तो कभी क्रोध नहीं करता, किन्तु तुमने श्रीपाद नित्यानन्दजीका अपराध किया है, यदि वे तुम्हें क्षमा कर दें, तब तो तुम मेरे प्रिय हो सकते हो। जबतक वे तुम्हें क्षमा नहीं करते, तबतक तुम मेरे सामने दोषी ही हो, जाओ, नित्यानन्दजीकी शरण लो।'

प्रभुकी ऐसी आज्ञा सुनकर मधाई अस्तव्यस्तभावसे प्रभुके चरणोंको छोड़कर नित्यानन्दजीके चरणोंमें जाकर गिर गया और फूट-फूटकर रोने

लगा। उसे अपने कुकृत्यपर बड़ी भारी लज्जा आ रही थी। उसीकी ग्लानिके कारण वह अधीर होकर दहाड़ मारकर रो रहा था। उसके रुदन की ध्वनिको सुनकर पत्थर भी पसीज उठता था। चारों दिशाओंमें सन्नाटा छा गया, मानो मधाईके रुदनसे द्रवीभूत होकर सभी दिशाएँ रो रही हों, सभी लोग उन पापियोंकी ऐसी दशा देखकर अपने आपेको भूल गये। उन्हें उस क्षण कुछ पता ही नहीं चला, कि हम स्वर्गमें हैं या मर्त्यलोकमें। सभी गौराङ्गके प्रेम-प्रभावके वशवर्ती होकर उस अभूतपूर्व दृश्यको देख रहे थे।

मधाईको नित्यानन्दजीके पैरोंके नीचे पड़ा देखकर नित्यानन्दजीसे प्रभु कहने लगे—'श्रीपाद! इस मधाईने आपका अपराध किया है, आप ही इसे क्षमा कर सकते हैं, मुझमें इतनी क्षमता नहीं कि मैं आपका अपराध करनेवालेको अभय प्रदान कर सकूँ। बोलो क्या कहते हो?'

अत्यन्त ही दीन-भावसे नित्यानन्दजीने कहा—'प्रभो! यह तो आपकी सदासे ही रीति रही आयी है। आप अपने सेवकोंके सिर सदासे सुयशका सेहरा बाँधते आये हैं। आप इनके उद्धारका श्रेय मेरे सिरपर लादना चाहते हैं किन्तु इस बातको तो सभी जानते हैं, कि पतितपावन गौरमें ही ऐसे पापियोंको उबारनेकी सामर्थ्य है। प्रभो! मैं हृदयसे कहता हूँ, मेरे हृदयमें मधाईके प्रति अणुमात्र भी विद्वेषके भाव नहीं हैं। यदि मैंने जन्म-जन्मान्तरोंमें कभी भी कोई सुकृत किया हो, तो उन सबका पुण्य मैं इन दोनों भाइयोंको प्रदान करता हूँ।'

इतना सुनते ही प्रभुने दौडकर मधाईको अंकमें उठा लिया और जोरोंसे उसका आलिङ्गन करते हुए कहने लगे—'मधाई! अब तुम मेरे अत्यन्त ही प्रिय हो गये। श्रीपादने तुम्हें क्षमा कर दिया। उन्होंने अपने सभी पुण्य प्रदान करके तुम्हें परम भागवत वैष्णव बना दिया। तुम आजसे

मेरे अन्तरङ्ग भक्त हुए। श्रीपादकी कृपासे तुम पापरहित बन गये।' प्रभुका प्रेमालिङ्गन और आश्वासन पानेसे मधाईके आनन्दकी सीमा न रही, वह उसी क्षण मूर्छित होकर प्रभुके पादपद्मोंमें पड़ गया। प्रभुके दोनों पैरोंको पकड़े हुए नवद्वीपके सर्वेसर्वा और एकमात्र शासनकर्ता वे दोनों भाई धूलिमें लोटे हुए रुदन कर रहे थे। भक्त तथा नगरके अन्य नर-नारी मन्त्रमुग्धकी भाँति खड़े हुए इस पतितोद्धारके दृश्यको देख रहे थे। इस हृदयको हिला देनेवाले दृश्यसे उनकी तृप्ति ही नहीं होती थी। उसी समय प्रभुने अपने पैरोंमें पड़े हुए धूलिधूसरित दोनों भाइयोंको उठाया और भक्तोंको संकीर्तन करनेकी आज्ञा दी।

इन दोनों पापी भाइयोंकी ऐसी दीनता देखकर भक्तोंके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। वे अलग-अलग सम्प्रदाय बना-बनाकर प्रेममें उन्मत्त हुए हरिध्वनि करने लगे और जोरोंसे ताल और स्वरसहित कीर्तन करने लगे। नगरके सभी नर-नारी कीर्तनमें सम्मिलित हुए। आज उनके लिये संकीर्तन देखनेका यह प्रथम ही अवसर था। सभी भक्तोंके सहित—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस महामन्त्रका उच्चारण करने लगे। झाँझ, मृदंग और मजीरा बजने लगे, भक्त उन्मत्त होकर कीर्तन करने लगे। बीच-बीचमें गौर-हरिके जय-जयकारोंकी ध्वनिसे आकाश-मण्डल गूँजने लगता। कीर्तनकी ध्वनिसे सभीको स्वेद, कम्प, अश्रु आदि सात्त्विक भाव होने लगे। उस समयके संकीर्तनमें एक प्रकारकी अद्भुत छटा दिखायी देने लगी। सभी प्रेममें पागल-से बने हुए थे। संकीर्तन करते हुए भक्तगण उन दोनों भाइयोंको साथ लिये हुए प्रभुके घरपर पहुँचे।

जगाई और मधाईकी प्रपन्नता

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम ॥*

वृन्दावनमें एक परम भगवद्भक्त माताने हमें यह कथा सुनायी थी– भक्त-भयभञ्जन भगवान् द्वारकाके भव्य भोजन-भवनमें बैठे हुए सत्यभामा आदि भामिनियोंसे घिरे हुए भोजन कर रहे थे। भगवान् एक बहुत ही सुन्दर सुवर्ण-चौकीपर विराजमान थे। सुवर्णके बहुमूल्य थालोंमें भाँति-भाँतिके स्वादिष्ट व्यञ्जन सजे हुए थे। बहुमूल्य रत्नजड़ित कटोरियोंमें विविध प्रकारके पेय पदार्थ रखे हुए थे। सामने रुक्मिणीजी बैठी

---

* भगवान् विभीषणके आनेपर वानरोंसे कह रहे हैं—'एक बार भी जो प्रपन्न होकर 'मैं तेरा हूँ' ऐसा कहकर मुझसे कृपाकी याचना करता है, उसे मैं सर्वभूतोंसे अभय प्रदान करता हूँ, ऐसी मेरी प्रतिज्ञा है।'

हुई पंखा डुला रही थीं। इधर-उधर अन्य पटरानियाँ बैठी हुई थीं। सहसा भगवान् भोजन करते-करते एकदम रुक गये, उनके मुखका ग्रास मुखमें था और हाथका हाथमें, वे निर्जीव मूर्तिकी भाँति ज्यों-के-त्यों ही स्तम्भित-से रह गये। उनका कमलके समान प्रफुल्लित मुख एकदम कुम्हला गया। आँखोंमें आँसू भरकर वे रुक्मिणीजीकी ओर देखने लगे। सभी पटरानियाँ भगवान्‌के ऐसे भावको देखकर भयभीत हो गयीं। वे किसी भावी आशंकाके भयसे भयभीत-सी हुई प्रभुके मुखकी ओर निहारने लगीं। कुछ कम्पित स्वरमें भयभीत होकर रुक्मिणीजीने पूछा—'प्रभो! आपकी एक साथ ही ऐसी दशा क्यों हो गयी? मालूम पड़ता है, कहीं आपके परम प्रिय किसी भक्तपर भारी संकट पड़ा है, उसीके कारण आप इतने खिन्न हो गये हैं। क्या मेरा यह अनुमान ठीक है?'

रुक्मिणीकी ओर देखते हुए प्रभुने कहा—'तुम्हारा अनुमान असत्य नहीं है?'

अधीरता प्रकट करते हुए रुक्मिणीजीने कहा-'प्राणेश्वर! मैं उन महाभाग भक्तका और उनकी विपत्तिका हाल जानना चाहती हूँ।'

विषण्ण स्वरमें भगवान्‌ने कहा—'दुष्ट दुःशासन भरी सभामें द्रुपदसुताके चीरको खींच रहा है। गुरुजनोंके सामने उस पतिव्रताको नग्न करना चाहता है।'

द्रुपदसुताके दुःखकी बात सुनकर नारीसुलभ भीरुता और कातरताके साथ जल्दीसे रुक्मिणीजीने कहा—'तब आप सोच क्या रहे हैं, जल्दीसे उसकी सहायता क्यों नहीं करते, जिससे उसकी लाज बच सके? प्रभो! उस दीन-हीन अबलाको रक्षा करो। नाथ! उसके दुःखसे मेरा दिल धड़कने लगा है।'

गद्‌गदकण्ठसे भगवान्‌ने कहा—'सहायता कैसे करूँ? उसने तो अपने वस्त्रका एक छोर दाँतोंसे दाब रक्खा है। वह सर्वतोभावेन मेरा

सहारा न लेकर दाँतोंका सहारा ले रही है। जबतक वह सब आशाओंको छोड़कर पूर्णरूपसे मेरे ही ऊपर निर्भर नहीं हो जाती, तबतक मैं उसकी सहायता कर ही कैसे सकता हूँ ?'

भगवान् द्वारकामें इतना कह ही रहे थे, कि द्रौपदीने सब ओरसे अपनेको निस्सहाय समझकर भगवान्‌का ही आश्रय लेनेका निश्चय किया। उसके मुखमेंसे 'कृष्' इतना ही निकला था, कि दाँतोंमेंसे वस्त्र छूट गया। दाँतोंका आश्रय छोड़ना था और कृष्‌के आगे 'ण' भी नहीं निकलने पाया कि तभी भगवान् वहाँ आ उपस्थित हुए और द्रौपदीके चीरको अक्षय बना दिया। इसीका वर्णन करते हुए सूरदासजी कहते हैं—

द्रुपद-सुता निर्बल भइ ता दिन, गहि लाये निज धाम।
दुःशासनकी भुजा थकित भई, बसनरूप भये श्याम॥
सुने री मैंने निर्बलके बल राम।

क्योंकि जबतक मनुष्यको अपने बलका आश्रय है, जबतक वह अपनेको ही बली और समर्थ माने बैठा है, तबतक भगवान् सहायता क्यों करने लगे? वे तो निर्बलोंके सहायक हैं—निष्किञ्चनोंके रक्षक हैं—इसीलिये आगे सूर कहते हैं—

अप-बल तप-बल और बाहु-बल चौथा है बल दाम।
सूर किसोर-कृपातें सब बल, हारेको हरि नाम॥
सुने री मैंने निर्बलके बल राम।

जगाई-मधाईके पास अन्यायसे उपार्जित यथेष्ट धन था, शरीर उन दोनोंका पुष्ट था, शासककी ओरसे उन्हें अधिकार मिला हुआ था। धन, जन, सेना तथा अधिकार सभीके मदमें वे अपनेको ही कर्ता समझे बैठे थे, इसलिये प्रभु भी इनसे दूर ही रहे आते थे। जिस क्षण ये अपने सभी प्रकारके अधिकार और बलोंको भुलाकर निर्बल और

निष्किञ्चन बन गये उसी समय प्रभुने इन्हें अपनी शरणमें ले लिया। उस क्षणभरके ही उपशमसे वे उम्रभरके पुराने पापी सभी वैष्णवोंके कृपाभाजन बन गये। प्रपन्नता और शरणागतिमें ऐसा ही जादू है। जिस क्षण 'तेरा हूँ' कहकर सच्चे दिलसे उनसे प्रार्थना करो उसी क्षण वे अपना लेते हैं, वे तो भक्तोंके लिये भूखे-से बैठे रहते हैं। लोगोंके मुख-की ओर ताकते रहते हैं, कि कोई अब कहे कि 'मैं तुम्हारा हूँ', यहाँतक कि अजामिलने झूठे ही पुत्रके बहाने 'नारायण' शब्द कह दिया, बस, इतनेसे ही उसकी रक्षा की और उसके जन्मभरके पाप क्षमा कर दिये।

भक्तगण जगाई-मधाई दोनों भाइयोंको साथ लेकर प्रभुके यहाँ आये। सभी भक्त यथास्थान बैठ गये। एक उच्चासनपर प्रभु विराज-मान हुए। उनके दायें-बायें गदाधर और नित्यानन्दजी बैठे। सामने वृद्ध आचार्य अद्वैत विराजमान थे। इनके अतिरिक्त पुण्डरीक, विद्या-निधि, हरिदास, गरुड़, रमाई पण्डित, श्रीनिवास, गङ्गाधर, वक्रेश्वर, चन्द्रशेखर आदि अनेकों भक्त प्रभुके चारों ओर बैठे हुए थे। बीचमें ये दोनों भाई—जगाई और मधाई नीचा सिर किये आँखोंमेंसे अश्रु बहा रहे थे, इनके अङ्ग-प्रत्यङ्गसे विषण्णता और पश्चात्तापकी ज्वाला-सी निकलती हुई दिखायी दे रही थी। दोनोंका शरीर पुलकित हो रहा था। दोनों ही नित्यानन्द और प्रभुकी भारी कृपाके बोझसे दबे-से जा रहे थे। उन्हें अपने शरीरका होश नहीं था। प्रभुने उन्हें इस प्रकार विषादयुक्त देखकर उनसे कहा—'भाइयो! तुमपर श्रीपाद नित्यानन्दजी-ने कृपा कर दी, अब तुमलोग शोक-मोह छोड़ दो, अब तुम निष्पाप बन गये। भगवान्‌ने तुम्हारे ऊपर बड़ी कृपा की है।'

प्रभुकी बात सुनकर गद्गदकण्ठसे रोते हुए दोनों भाई बोले—'प्रभो! हम पापियोंका उद्धार करके आज आपने अपने 'पतितपावन' नामको यथार्थमें ही सार्थक कर दिया। आपका पतितपावन नाम तो आज ही

सार्थक हुआ। अजामिलको तारनेमें आपकी कोई प्रशंसा नहीं थी, क्योंकि उसने सब पापोंको क्षय करनेवाला चार अक्षरोंका 'नारायण' नाम तो लिया था। गणिका सूआ पढ़ाते-पढ़ाते ही रामनामका उच्चारण करती थी, कैसे भी सही, भगवन्नामका उच्चारण तो उसकी जिह्वासे होता था। वाल्मीकिजीने सहस्रों वर्षोंतक उलटा ही सही, नाम-जप तो किया था। खेतमें उलटा-सीधा कैसे भी बीज पड़ना चाहिये, वह जम अवश्य आवेगा। दन्तवक्र, शिशुपाल, रावण, कुम्भकर्ण, शकटासुर, शम्बरासुर, अघासुर, बकासुर, कंस आदि सभी असुर और राक्षसोंने द्वेषबुद्धिसे ही सही, आपके रूपका चिन्तन तो किया था। वे उठते-बैठते, सोते-जागते सदा आपका ध्यान तो करते रहते थे। इन सबकी तो मुक्ति तो होनी ही चाहिये, ये लोग तो भगवत्-सम्बन्धी होनेके कारण मुक्तिके अधिकारी ही थे, किन्तु हे दीनानाथ! हे अशरण-शरण! हे पतितोंके एकमात्र आधार! हे कृपाके सागर! हे पापियोंके पतवार! हे अनाथरक्षक! हम पापियोंने तो कभी भूलसे भी आपका नाम ग्रहण नहीं किया था। हम तो सदा मदोन्मत्त हुए पापकर्मोंमें ही प्रवृत्त रहते थे। हमें तो आपके सम्बन्धमें कुछ ज्ञान भी नहीं था। हमारे ऊपर कृपा करके आपने संसारको प्रत्यक्ष ही यह दिखला दिया कि चाहे कोई भजन करे या न करे, कोई कितना भी बड़ा पापी क्यों न हो, प्रभु उसके ऊपर भी एक-न-एक दिन अवश्य ही कृपा करेंगे। हे प्रभो! हमें अपने पापोंका फल भोगने दीजिये। हमें अरबों, खरबों और असंख्यों वर्षोंतक नरकोंकी भयंकर यातनाओंको भोगने दीजिये। प्रभो! हम आपकी इस अहैतुकी कृपाको सहन न कर सकेंगे। नाथ! हमारा हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है। हम प्रभुके इतने बड़े कृपापात्र बननेके योग्य कोटि जन्मोंमें भी न बन सकेंगे, जितनी कृपा प्रभु हमारे ऊपर प्रदर्शित कर रहे हैं।'

कलतक जो मद्यपानके अतिरिक्त कुछ जानते-समझते ही नहीं थे, उन्हींके मुखसे ऐसी अपूर्व स्तुति सुनकर सभी भक्त चकित रह गये। वे एक दूसरेकी ओर देखकर आश्चर्य प्रकट करने लगे। अद्वैताचार्यने उसी समय इस श्लोकको पढ़कर प्रभुके पादपद्मोंमें प्रणाम किया।

मूकं करोति वाचालं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥*

(श्रीधरस्वामी भा० टी०)

जगाई-मधाईकी ऐसी स्तुति सुनकर प्रभुने उनसे कहा—'तुम दोनों भाई सभी भक्तोंकी चरण-वन्दना करो। भक्तोंकी पद-धूलिसे पापी-से-पापी पुरुष भी परम पावन और पुण्यात्मा बन सकता है।' प्रभुकी आज्ञा पाकर दोनों भाई अपने अश्रुओंसे भक्तोंके चरणोंको भिगोते हुए उनकी चरण-वन्दना करने लगे। सभी भक्तोंने उन्हें हृदयसे परम भागवत होनेका सर्वोत्तम आशीर्वाद दिया।

अब महाप्रभुने उनकी शान्तिके लिये दूसरा उपाय सोचा। भगवती भागीरथी सभीके पापोंको जड़-मूलसे उखाड़कर फेंक देनेवाली हैं, अतः आपने भक्तोंसे जाह्नवीके तटपर चलनेके लिये कहा। चाँदनी रात्रि थी, गर्मीके दिन थे, लोग कुछ तो सो गये थे, कुछ सोनेकी तैयारी कर रहे थे। उसी समय सभी भक्त इन दोनों भाइयोंको आगे करके संकीर्तन करते हुए और प्रेममें नाचते-गाते गङ्गा-स्नानके निमित्त चले। संकीर्तन और जय-जयकारोंकी तुमुल ध्वनि सुनकर सहस्रों नर-नारी गङ्गाजीके घाटपर एकत्रित हो गये। बहुत-से तो खाटपरसे वैसे ही बिना वस्त्र पहिने उठकर चले आये, कोई भोजन करते-से ही दौड़े आये। पत्नी

---

* जिसकी कृपासे गूँगा भी वक्तृता दे सकता है और लँगड़ा भी बिना किसीके सहारेके पहाड़की चोटीपर चढ़ सकता है, उन परम आनन्दस्वरूप प्रभुके पादपद्मोंमें हम प्रणाम करते हैं।

पतियोंको छोड़ करके, माता पुत्रोंको परित्याग करके तथा बहुएँ अपनी सास-ननदोंकी कुछ भी परवा न करके संकीर्तन देखनेके निमित्त दौड़ी आयीं। सभी आ-आकर भक्तोंके साथ संकीर्तन करनेमें निमग्न हो गये। सभी एक प्रकारके अपूर्व आकर्षणके वशीभूत होकर अपने आपेको भूल गये। महाप्रभुने संकीर्तन बंद करनेकी आज्ञा दी और इन दोनों भाइयोंको साथ लेकर वे स्वयं जलमें घुसे। उनके साथ नित्यानन्द, अद्वैताचार्य, श्रीवास तथा गदाधर आदि सभी भक्तोंने भी जलमें प्रवेश किया। जलमें पहुँचकर प्रभुने दोनों भाइयोंसे कहा—'जगन्नाथ (जगाई) और माधव (मधाई)! तुम दोनों अपने-अपने हाथोंमें जल लो।' प्रभुकी आज्ञा पाते ही दोनोंने अपने-अपने हाथोंमें जल लिया। तब प्रभुने गम्भीरताके स्वरमें अत्यन्त ही स्नेहके साथ दयार्द्र होकर कहा—'आजतक तुम दोनों भाइयोंने जितने पाप किये हों, इस जन्ममें या पिछले कोटि जन्मोंमें, उन सभीको मुझे दान कर दो।'

हाथके जलको जल्दीसे फेंकते हुए अत्यन्त ही दीनताके साथ कातरस्वरमें उन दोनों भाइयोंने कहा—'प्रभो! हमारा हृदय फट जायगा! भगवन्! हम मर जायँगे। हमें ऐसा घोर कर्म करनेकी आज्ञा अब न प्रदान कीजिये। प्रभो! हम आपकी इतनी कृपाको कभी सहन नहीं कर सकते। हे दीनोंके दयाल! जिन चरणोंमें भक्तगण नित्यप्रति भाँति-भाँतिके सुगन्धित चन्दन और विविध प्रकारके पत्र-पुष्प चढ़ाते हैं, उनमें हमें अपने असंख्यों पापोंको चढ़ानेकी आज्ञा न दीजिये। संसार हमें धिक्कारेगा कि प्रभुके पावन पादपद्मोंमें इन पापी पामर प्राणियोंने अपने पाप-पुञ्जोंको अर्पण किया। प्रभो! हम दब जायँगे। यह काम हमसे कभी नहीं होनेका!'

प्रभुने इन्हें धैर्य बँधाते हुए कहा—'भाइयो! तुम घबड़ाओ नहीं। तुम्हारे पापोंको ग्रहण करके मैं पावन हो जाऊँगा। मेरा जन्म धारण करना सार्थक हो जायगा। तुमलोग संकोच न करो।' प्रभुकी इस बातको

सुनकर नित्यानन्दजीने उन दोनों भाइयोंसे कहा—'तुमलोग इतना सङ्कोच मत करो। ये तो जगत्‌को पावन बनानेवाले हैं। पाप इनका क्या बिगाड़ सकते हैं? ये तो त्रिभुवनपापहारी हैं। तुम अपने पापोंका संकल्प कर दो।'

नित्यानन्दजीकी बात सुनकर रोते-रोते इन दोनों भाइयोंने हाथमें जल लिया। नित्यानन्दजीने संकल्प पढ़ा और प्रभुने दोनों हाथ फैला-कर उन दोनों भाइयोंके सम्पूर्ण पापोंको ग्रहण कर लिया। अहा! कैसा अपूर्व आदर्श है? दूसरोंके पाप ग्रहण करनेसे ही तो गौराङ्ग पतित-पावन कहा सके। उनके पापोंको ग्रहण करके प्रभु बोले—'अब तुम दोनों निष्पाप हो गये। अब तुम मेरे अत्यन्त ही प्रिय परम भाग-वत वैष्णव बन गये। आजसे जो कोई तुम्हारे पुराने पापोंको स्मरण करके तुम्हारे प्रति घृणा प्रकट करेगा वह वैष्णवद्रोही समझा जायगा। उसे घोर वैष्णवापराधका पातक लगेगा।' यह कहते-कहते प्रभुने फिर दोनोंको गलेसे लगा लिया। वे भी प्रभुका प्रेमालिङ्गन पाकर मूर्छित होकर जलमें गिर पड़े। उस समय प्रभुके अत्यन्त ही अन्तरङ्ग भक्तोंको तपाये हुए सुवर्णके समान रंगवाला प्रभुका शरीर किञ्चित् कृष्णवर्णका प्रतीत होने लगा। पाप ग्रहण करनेसे वह काला हो गया। इसके अन-न्तर सभी भक्तोंने आनन्द और उल्लासके सहित खूब स्नान किया। मारे प्रेमके सभी भक्त पागल-से हो गये थे। स्नान करते-करते वे आपस-में एक-दूसरेके ऊपर जल उलीचने लगे। इस प्रकार बहुत देरतक सभी गङ्गाजीके त्रिभुवनपावन पयमें प्रसन्नतासहित क्रीड़ा करते रहे। अर्द्धरात्रिसे अधिक बीतनेपर सभी अपने-अपने घरोंको चले गये, किन्तु जगाई-मधाई दोनों भाई उस दिनसे अपने घर नहीं गये। वे श्रीवास पण्डितके ही घर रहने लगे।

जगाई-मधाईका पश्चात्ताप

न चाराधि राधाधवो माधवो वा
न वापूजि पुष्पादिभिश्चन्द्रचूडः ।
परेषां धने धन्धने नीतकालो
दयालो यमालोकने कः प्रकारः ॥*

(सु० र० भां० ३९१ । २११)

---

* हा ! मैंने न तो अपने जीवनमें श्रीराधारमणके चरणोंकी शरण ली और न भगवान् पार्वतीपतिके पादपद्मोंकी प्रेमके साथ पुष्पादिसे पूजा ही की। बस, दूसरोंकी विषयसामग्रियोंके अपहरणमें ही काल-यापन किया। हे दयालो प्रभो ! जब मेरा परलोकमें यमराजसे साक्षात्कार होगा तब मैं क्या कह सकूँगा ? वहां मेरी गुजर कैसे होगी ? हा ! मैंने अबतकका समय व्यर्थ ही बरबाद कर दिया।

जो हृदय पाप करते-करते मलिन हो जाता है, उसमें पश्चात्तापकी लपट कुछ असर नहीं करती। जिस प्रकार अत्यन्त काले वस्त्रमें स्याहीका दाग प्रतीत नहीं होता। जो वस्त्र जितना ही स्वच्छ होगा, उसमें मैलका दाग भी उतना ही अधिक प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होगा। इसी प्रकार पश्चात्तापकी ज्वाला स्वच्छ और सरल हृदयोंमें ही अधिक उठा करती है। जो जितना ही अधिक निष्पाप होगा, जिसने अपने पापोंको समझकर उनसे सदाके लिये मुँह मोड़ लिया होगा, उसे अपने पूर्वकृत कुकर्मोंपर उतना ही अधिक पश्चात्ताप होगा और वह पश्चात्ताप ही उसे प्रभुके पादपद्मोंतक पहुँचानेमें सहायक बन सकेगा। पाप करनेके पश्चात् जो उसके स्मरणसे हृदयमें एक प्रकारका ताप या दुःख होता है, उसे ही पश्चात्ताप कहते हैं। जिसे अपने कुकृत्योंपर दुःख नहीं, जिसे अपने झूठे और अनर्थ वचनोंका पश्चात्ताप नहीं, वह सदा इन्द्रियलोलुप संसारी योनियोंमें घूमनेवाला नारकीय जीव ही बना रहेगा। उसकी निष्कृतिका उपाय प्रभु कृपा करें तब भले ही हो सकता है। पश्चात्ताप हृदयके मलको धोकर उसे स्वच्छ बना देता है। पश्चात्ताप दुष्कर्मोंकी सर्वोत्तम ओषधि है, पश्चात्ताप प्राणियोंको परम पावन बनानेके लिये रसायन है। पश्चात्ताप संसार-सागरमें डूबते हुए पुरुषका एकमात्र सहारा है। वे पुरुष धन्य हैं, जिन्हें अपने पापों और दुष्कर्मोंके लिये पश्चात्ताप हुआ करता है।

जगाई-मधाई दोनों भाइयोंकी निताई और निमाई इन दोनों भाइयोंकी अहैतुकी कृपासे ऐसी कायापलट हुई कि इन्हें घरबार, कुटुम्ब-परिवार कुछ भी अच्छा नहीं लगता। ये सब कुछ छोड़कर सदा श्रीवास पण्डितके ही घरमें रहकर श्रीकृष्णकीर्तन और भगवन्नामका जप करने लगे। ये नित्यप्रति चार बजे उषाकालमें उठकर गङ्गास्नान करने जाते और नियमसे रोज दो लाख हरिनामका जप करते। इनकी आँखें सदा अश्रुओंसे भीगी ही रहतीं। पुरानी बातोंको याद कर-करके ये दोनों भाई सदा अधीर-से ही बने रहते। इन्हें खाना-पीना या

किसीसे बातें करना विषके समान जान पड़ता। ये न तो किसीसे बोलते और न कुछ खाते ही थे, दिन-रात आँखोंसे आँसू ही बहाते रहते। श्रीवास इनसे खानेके लिये बहुत अधिक आग्रह करते, किन्तु इनके गलेके नीचे ग्रास उतरता ही नहीं। नित्यानन्दजी समझा-समझाकर हार गये, किन्तु इन्होंने कुछ खाना स्वीकार ही नहीं किया। तब नित्यानन्दजी प्रभुको बुला लाये। प्रभुने अपना कोमल कर इन दोनोंकी पीठपर फेरते हुए कहा—'भाइयो! तुम्हारे सब पाप तो मैंने ले लिये। अब तुम निष्पाप होकर भी भोजन क्यों नहीं करते? क्या तुमने मुझे सचमुचमें अपने पाप नहीं दिये या मेरे ही ऊपर तुम्हारा विश्वास नहीं है।'

हाथ जोड़े हुए अत्यन्त दीनताके साथ इन दोनोंने कहा—'प्रभो! हमें आपके ऊपर पूर्ण विश्वास है, हम अपने पापोंके लिये नहीं रो रहे हैं, यदि हमें पापोंका फल भोगना होता, तब तो परम प्रसन्नता होती। हमें तो आपकी अहैतुकी कृपाके ऊपर रुदन आता है। आपने हम-जैसे पतित और नीचोंके ऊपर जो इतनी अपूर्व कृपा की है, उसका रह-रहकर स्मरण होता है और रोकनेपर भी हमारे अश्रु नहीं रुकते।' प्रभुने इन्हें भाँति-भाँतिसे आश्वासन दिलाया। जगाई तो प्रभुके आश्वासनसे थोड़ा-बहुत शान्त भी हुआ, किन्तु मधाईका पश्चात्ताप कम न हुआ। उसे रह-रहकर वह घटना याद आने लगी, जब उसने निरपराध नित्यानन्दजीके मस्तकपर निर्दयताके साथ प्रहार किया था। इसके स्मरणमात्रसे उसके रोंगटे खड़े हो जाते और वह जोरोंके साथ रुदन करने लगता। 'हाय! मैंने कितनी बड़ी नीचता की थी। एक महापुरुषको अकारण ही इतना भारी कष्ट पहुँचाया। यदि उस समय भगवान्का सुदर्शनचक्र आकर मेरा सिर काट लेता या नित्यानन्दजी ही मेरा वध कर डालते तो मैं कृतकृत्य हो जाता। वध करना या कटुवाक्य कहना तो अलग रहा, वे महामहिम अवधूत तो

उलटे मेरे कल्याणके निमित्त प्रभुसे प्रार्थना ही करते रहे और प्रसन्न-चित्तसे भगवन्नामका कीर्तन करते हुए हमारा भला ही चाहते रहे। इस प्रकार वह सदा इसी सोचमें रहता।

एक दिन एकान्तमें मधाईने जाकर श्रीपाद नित्यानन्दजीके चरण पकड़ लिये और रोते रोते प्रार्थना की—'प्रभो! मैं अत्यन्त ही नीच और पामर हूँ। मैंने घोर पाप किये हैं। उन सब पापोंको तो भुला भी सकता हूँ, किन्तु आपके ऊपर जो प्रहार किया था वह तो भुलानेसे भी नहीं भूलता। जितना ही उसे भुलानेकी चेष्टा करता हूँ, उतना ही वह मेरे हृदयमें और अधिक भीतर गड़ता जाता है। इसकी निष्कृतिका मुझे कोई उपाय बताइये। जबतक आप इसके लिये मुझे कोई उपाय न बतावेंगे, तबतक मुझे आन्तरिक शान्ति कभी भी प्राप्त न हो सकेगी।'

मधाईकी बात सुनकर नित्यानन्दजीने कहा—'भाई! मैं तुमसे सत्य-सत्य कहता हूँ, मेरे मनमें तुम्हारे प्रति लेशमात्र भी किसी प्रकारका दुर्भाव नहीं। मैंने तो तुम्हारे ऊपर उस समय भी क्रोध नहीं किया था। यदि तुम्हारे हृदयमें दुःख है तो इसके लिये तप करो। तपसे ही सब प्रकारके सन्ताप नष्ट हो जाते हैं। और तपसे ही दुःख, भय, शोक तथा मनःक्षोभ आदि सभी विकार दूर हो जाते हैं। तपस्वी भक्त ही यथार्थमें भगवन्नामका अधिकारी होता है। तुम गङ्गाजीका एक सुन्दर घाट बनवा दो, जिसपर सभी नर-नारी स्नान किया करें और तुम्हें शुभाशीर्वाद दिया करें। तुम वहीं रहकर अमानी तथा नम्र बनकर तप करते हुए निवास करो।'

नित्यानन्द प्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य करके मधाईने स्वयं अपने हाथोंसे परिश्रम करके गङ्गाजीका एक सुन्दर घाट बनाया। उसीपर एक कुटी बनाकर वह रहने लगा। वहाँ घाटपर स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध, मूर्ख-पण्डित, चाण्डाल-पतित जो भी स्नान करने आता, मधाई उसीके चरण पकड़कर अपने अपराधोंके लिये क्षमा-याचना करता। वह रोते-रोते

कहता,—'हमने जानमें, अनजानमें आपका कोई भी अपराध किया हो, हमारे द्वारा आपको कभी भी कैसा भी कष्ट हुआ हो, उसके लिये हम आपके चरणोंमें नम्र होकर क्षमा-याचना करते हैं।' सभी उसकी इस नम्रताको देखकर रोने लगते और उसे गलेसे लगाकर भाँति-भाँतिके आशीर्वाद देते।

शास्त्रोंमें बताया है, जिसे अपने पापोंपर हृदयसे पश्चात्ताप होता है, उसके चौथाई पाप तो पश्चात्ताप करते ही नष्ट हो जाते हैं। यदि अपने पापकर्मोंको लोगोंके सामने खूब प्रकट कर दे तो आधे पाप प्रकाशित करनेसे नष्ट हो जाते हैं और जो पापियोंके पापोंको अपने मनकी प्रसन्नताके लिये कथन करते हैं, चौथाई पाप उनके ऊपर चले जाते हैं। इस प्रकार पाप करनेवाला पश्चात्तापसे तथा लोगोंके सामने अमानी बनकर सत्यताके साथ पाप प्रकट करनेसे निष्पाप बन जाता है।

इस प्रकार मधाईमें दीनता और महापुरुषोंकी अहैतुकी कृपासे भगवद्भक्तोंके सभी गुण आ गये। भगवद्भक्त शीत, उष्ण आदि द्वन्द्वोंको सहन करनेवाले, सभी प्राणियोंके ऊपर करुणाके भाव रखनेवाले, सभी जीवोंके सुहृद्, किसीसे शत्रुता न करनेवाले, शान्त तथा सत्कर्मोंको सदा करते रहनेवाले होते हैं।* वे विषय-भोगोंकी इच्छा भूलकर भी कभी नहीं करते। उनमें सभी गुण आप-से-आप ही आ जाते हैं। क्यों न आवें, भगवद्भक्तिका प्रभाव ही ऐसा है। हृदयमें भगवद्भक्तिका सञ्चार होते ही सम्पूर्ण सद्गुण आप-से-आप ही भगवद्भक्तके पास आने लगते हैं। जैसा कि श्रीमद्भागवतमें कहा है—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिञ्चना।
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।

* तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम्।
अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः॥
(श्रीमद्भा० ३। २५। २१)

हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥*

(५ । १८ । १२)

इस प्रकार थोड़े ही दिनोंमें मधाईकी भगवद्भक्तिकी दूर-दूरतक ख्याति हो गयी। लोग उसके पुराने पापोंको ही नहीं भूल गये, किन्तु उसके पुराने मधाई नामका भी लोगोंको स्मरण नहीं रहा। मधाई अब 'ब्रह्मचारी' के नामसे प्रसिद्ध हो गये। अहा! भगवद्भक्तिमें कितनी भारी अमरता है? भगवन्नाम पापोंके क्षय करनेकी कैसी अचूक ओषधि है? इस रसायनके पान करनेसे पापी-से-पापी भी पुण्यात्मा बन सकता है। नवद्वीपमें 'मधाईघाट' आजतक भी उस महामहिम परम भागवत मधाईके नामको अमर बनाता हुआ भगवान्‌के इस आश्वासन-वाक्यका उच्च स्वरसे निर्घोष कर रहा है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(श्रीगीता ९ । ३०)

चाहे कितना भी बड़ा पापी क्यों न हो, उसने चाहे सभी पापोंका अन्त ही क्यों न कर डाला हो, वह भी यदि अनन्य होकर—और सभी आश्रय छोड़कर एकमात्र मेरेमें ही मन लगाकर मेरा ही स्मरण-ध्यान करता है तो उसे सर्वश्रेष्ठ साधु ही समझना चाहिये। क्योंकि उसकी भलीभाँति मुझमें ही स्थिति हो चुकी है।

---

* हे देवताओ! जिस भक्तकी विष्णु भगवान्‌के चरणकमलोंमें अहैतुकी भक्ति है उस भक्तके हृदयमें सम्पूर्ण दिव्य-दिव्य गुण आप-से-आप ही आ-आकर अपना घर बना लेते हैं जो अनित्य सांसारिक विषय-सुखोंमें ही निमग्न रहकर मनके रथपर सवार होकर विषय-बाजारमें विहार करता रहता है, ऐसे अभक्तके समीप महत्पुरुषोंके-से गुण कहां रह सकते हैं?

सज्जन-भाव

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृथाः
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्व विद्वज्जनम् ।
मान्यान्मानय विद्विषोऽप्यनुनय प्रख्यापय स्वान्गुणान्
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम् ॥*

(भर्तृ० नी० श० ७८)

---

* तृष्णाका छेदन करो, क्षमाको धारण करो, मदका परित्याग करो, पापोंमें प्रीति कभी मत करो, सत्य भाषण करो, साधु पुरुषोंकी मर्यादाका पालन करो, ज्ञानी और क्रियावान् पुरुषोंका सदा सत्सङ्ग करो, मान्य पुरुषोंका आदर करो, जो तुम्हारे साथ विद्वेष करें उनके साथ भी सद्व्यवहार ही करो। अपने सद्-आचरणोंद्वारा लोगोंके प्रेमके भाजन बनो, अपनी कीर्तिकी सदा रक्षा करो और दीन-दुखियोंपर दया करो—बस, ये ही सज्जन पुरुषोंके लक्षण हैं। अर्थात् जिनके जीवनमें ये ग्यारह गुण पाये जायँ वे ही सज्जन हैं।

महाप्रभु गौराङ्गदेवमें भगवत्-भावकी भावना तो उनके कतिपय अन्तरङ्ग भक्त ही रखते थे, किन्तु उन्हें परम भागवत वैष्णव विद्वान् और गुणवान् सज्जन पुरुष तो सभी लोग समझते थे। उनके सद्गुणोंके सभी प्रशंसक थे। जिन लोगोंका अकारण ईर्ष्या करना ही स्वभाव होता है, ऐसे खल पुरुष तो ब्रह्माजीकी भी बुराई करनेसे नहीं चूकते। ऐसे मलिन-प्रकृतिके निन्दक खलोंको छोड़कर अन्य सभी प्रकारके लोग प्रभुके उत्तम गुणोंके ही कारण उनपर आसक्त थे। उन्होंने अपने जीवनमें किसी भी शास्त्र-मर्यादाका उल्लङ्घन नहीं किया। सर्वसमर्थ होनेपर भी वे सभी लौकिक तथा वैदिक क्रियाओंको स्वयं करते थे और लोगोंको भी उनके लिये प्रोत्साहित करते थे, किन्तु वे कलिकालमें श्रीभगवन्नामको ही मुख्य समझते थे और सभी कर्मोंको गौण मानते हुए भी उन्होंने गार्हस्थ्य-जीवनमें न तो स्वयं ही उन सबका परित्याग किया और न कभी उनका खण्डन ही किया। वे स्वयं दोनों कालोंकी सन्ध्या, तर्पण, पितृश्राद्ध, पर्व, उत्सव, तीर्थ, व्रत एवं वैदिक संस्कारोंको करते तथा मानते थे, उन्होंने अपने आचरणों और चेष्टाओंद्वारा भी इन सबकी कहीं उपेक्षा नहीं की। श्रीवास, अद्वैताचार्य, मुरारी गुप्त, रमाई पण्डित, चन्द्रशेखर आचार्य आदि उनके सभी अन्तरङ्ग भक्त भी परम भागवत होते हुए इन सभी मर्यादाओंका पालन करते थे।

भावावेशके समयको छोड़कर वे कभी भी किसीके सामने अपनी बड़ाईकी कोई बात नहीं कहते थे। अपनेसे बड़ोंके सामने वे सदा नम्र ही बने रहते। श्रीवास, नन्दनाचार्य, चन्द्रशेखराचार्य, अद्वैताचार्य आदि अपने सभी भक्तोंको वे वृद्ध समझकर पहिलेसे प्रणाम करते थे।

संसारका एक नियम होता है कि किसी एक ही वस्तुके जब बहुत-से इच्छुक होते हैं, तो वे परस्परमें विद्वेष करने लगते हैं, हमें उस अपनी

इष्ट वस्तुके प्राप्त होनेकी तनिक भी आशा चाहे न हो तो भी हम उसके दूसरे इच्छुकोंसे अकारण द्वेष करने लगेंगे, ऐसा स्वाभाविक नियम है। संसारमें इन्द्रियोंके भोग्य-पदार्थोंकी और कीर्तिकी सभीको इच्छा रहती है। इसीलिये जिनके पास इन्द्रियोंके भोग्य-पदार्थोंकी प्रचुरता होती है और जिनकी संसारमें कीर्ति होने लगती है, उनसे लोग स्वाभाविक ही द्वेष-सा करने लगते हैं। सज्जन पुरुष तो सुखी लोगोंके प्रति मैत्री, दुखियोंके प्रति करुणा, पुण्यवानोंके प्रति प्रसन्नता और पापियोंके प्रति उपेक्षाके भाव रखते हैं, सर्वसाधारण लोग धनिकों और प्रतिष्ठितोंके प्रति उदासीन-से बने रहते हैं और अधिकांश दुष्ट-प्रकृतिके लोग तो सदा धनी-मानी सज्जनोंकी निन्दा ही करते रहते हैं। जहाँ चार लोगोंने किसीकी प्रशंसा की, बस, उसी समय उनकी अंदर छिपी हुई ईर्ष्या भभक उठती है और वे झूठी-सच्ची बातोंको फैलाकर जनतामें उनकी निन्दा करना आरम्भ कर देते हैं। ऐसे निन्दकोंके दलसे अवतारी पुरुष भी नहीं बचने पाये हैं। गौराङ्ग महाप्रभुकी भी बढ़ती हुई कीर्ति और उनके चारों ओर जनतामें फैले हुए यश-सौरभसे क्षुभित होकर निन्दक लोग उनकी भाँति-भाँतिसे निन्दा करने लगे। कोई तो उन्हें वाममार्गी बताता, कोई उन्हें ढोंगी कहकर अपने हृदयकी कालिमाको प्रकट करता और कोई-कोई तो उन्हें धूर्त और बाजीगरतक कह देता। प्रभु सबकी सुनते और हँस देते। उन्होंने कभी अपने निन्दकोंकी किसी बातका विरोध नहीं किया। उलटे वे स्वयं निन्दकोंकी प्रशंसा ही करते रहते। उनकी सहनशीलता और विद्वेष करनेवालोंके प्रति भी करुणाके भावों-का पता नीचेकी दो घटनाओंसे भलीभाँति पाठकोंको लग जायगा।

यह तो पाठकोंको पता ही है कि श्रीवास पण्डितके घर संकीर्तन सदा किवाड़ बंद करके ही होता था। सालभरतक सदा इसी तरह संकीर्तन

होता रहा। बहुत-से विद्वेषी और तमाशबीन देखने आते और किवाड़ोंको बंद देखकर संकीर्तनकी निन्दा करते हुए लौट जाते। उन्हीं ईर्ष्या रखनेवाले विद्वेषियोंमें गोपाल चापाल नामका एक क्षुद्र प्रकृतिका ब्राह्मण था। वह प्रभुकी बढ़ती हुई कीर्तिसे क्षुभित-सा हो उठा, उसने संकीर्तनको बदनाम करनेका अपने मनमें निश्चय किया। एक दिन रात्रिमें वह श्रीवास पण्डितके द्वारपर पहुँचा। उस समय द्वार बंद था और भीतर संकीर्तन हो रहा था। चापालने द्वारके सामने थोड़ी-सी जगह लीपकर वहाँ चण्डीकी पूजाकी सभी सामग्री रख दी। एक हाँडीमें लाल, पीली, काली बिन्दी लगाकर उसको सामग्रीके समीप रख दिया। एक शराबका पात्र तथा एक पात्रमें मांस भी रख दिया। यह सब रखकर वह चला गया। दूसरे दिन जब संकीर्तन करके भक्त निकले तो उन्होंने चण्डीपूजनकी सभी सामग्री देखी। खलोंका भी दल आकर एकत्रित हो गया और एक दूसरेको सुनाकर कहने लगे—'हम तो पहिले ही जानते थे, ये रात्रिमें किवाड़ बंद करके और स्त्रियोंको साथ लेकर जोर-जोरसे तो हरिध्वनि करते हैं और भीतर-ही-भीतर वाममार्गकी पद्धतिसे भैरवी-चक्रका पूजन करते हैं। ये सामने कालीकी पूजाकी सामग्री प्रत्यक्ष ही देख लो। जो लोग सज्जन थे, वे समझ गये, कि यह किसी धूर्तका कर्तव्य है। सभी एक स्वरसे ऐसा करनेवाले धूर्तकी निन्दा करने लगे। श्रीवास ताली पीट-पीटकर हँसने लगे और लोगोंसे कहने लगे—'देखो भाई! हम रात्रिमें ऐसे ही चण्डी-पूजा किया करते हैं। भद्रपुरुषोंको आज स्पष्ट ही ज्ञात हो गया! भक्तोंने उस सभी सामानको उठाकर दूर फेंक दिया और उस स्थानको गोमयसे लीपकर और गङ्गाजल छिड़ककर शुद्ध किया।

दूसरे ही दिन लोगोंने देखा गोपाल चापालके सम्पूर्ण शरीरमें गलित कुष्ठ हो गया है। उसके सम्पूर्ण शरीरमेंसे पीब बहने लगा।

इतनेपर भी घाव खुजाते थे, खुजलीके कारण वह हाय-हाय करके सदा चिल्लाता रहता था। नगरके लोगोंने उसे मुहल्लेमेंसे निकाल दिया, क्योंकि कुष्ठ छूतकी बीमारी होती है, वह बेचारा गङ्गाजीके किनारे एक नीमके पेड़के नीचे पड़ा रहता था। एक दिन प्रभुको देखकर उसने दीन-भावसे कहा—'प्रभो ! मुझसे बड़ा अपराध हो गया है। क्या मेरे इस अपराधको तुम क्षमा नहीं कर सकते ? तुम जगत्का उद्धार कर रहे हो, इस पापीका भी उद्धार करो। गाँव-नातेसे तुम मेरे भानजे लगते हो, अपने इस दीन-हीन मामाके ऊपर तुम कृपा क्यों नहीं करते ? मैं बहुत दुखी हूँ। प्रभो ! मेरा दुःख दूर करो।'

प्रभुने कहा—'कुछ भी हो, मैं अपने अपराधीको तो क्षमा कर सकता हूँ, किन्तु तुमने श्रीवास पण्डितका अपराध किया है। इसलिये तुम्हें क्षमा करनेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं है।' बेचारा चुप हो गया और अपनी नीचता तथा दुष्टताका फल कुष्ठके दुःखसे दुखी होकर वेदनाके सहित भोगता रहा।

थोड़े दिनोंके पश्चात् जब प्रभु संन्यास लेकर कुलियामें आये और यह कुष्ठी फिर इनके शरणापन्न हुआ तब इन्होंने उसे श्रीवास पण्डितके पास भेज दिया। श्रीवास पण्डितने कहा—'मुझे तो इनसे पहिले भी कभी द्वेष नहीं था और अब भी नहीं है, यदि प्रभुने इन्हें क्षमा कर दिया है, तो ये अब दुःखसे मुक्त हो ही गये।' देखते-ही-देखते उसका सम्पूर्ण शरीर नीरोग हो गया।

इसी प्रकार एक दिन एक और ब्राह्मण संकीर्तन देखनेके लिये आया। जब उसने किवाड़ोंको भीतरसे बंद देखा तब तो वह क्रोधके मारे आग-बबूला हो गया और कीर्तनवालोंको खरी-खोटी सुनाता हुआ अपने घर

लौट गया। दूसरे दिन गङ्गाजीके घाटपर जब उसने प्रभुको भक्तोंके सहित स्नान करते देखा तब तो उसने क्रोधमें भरकर प्रभुसे कहा—'तुम्हें अपने कीर्तनका बड़ा अभिमान है। दस-बीस भोले-भाले लोगोंको कठपुतलियोंकी तरह हाथके इशारेसे नचाते रहते हो। लोग तुम्हारी पूजा करते हैं इससे तुम्हें बड़ा अहंकार हो गया है। जाओ मैं तुम्हें शाप देता हूँ, कि जिस संसारी सुखके मदमें तुम इतने भूले हुए हो, वह तुम्हारा संसारी सुख शीघ्र ही नष्ट हो जाय।' ब्राह्मणके ऐसे वाक्यों को सुनकर सभी भक्त आश्चर्यके साथ उस ब्राह्मणके मुखकी ओर देखने लगे। कुछ लोगोंको थोड़ा क्रोध भी आ गया, प्रभुने उन सबको रोकते हुए हँसकर उन ब्राह्मण देवतासे कहा—'विप्रदेव! आपके चरणोंमें मैं प्रणाम करता हूँ। आपका शाप मुझे सहर्ष स्वीकार है।'

कुछ देरके पश्चात् ब्राह्मणका क्रोध शान्त हो गया। तब उसने अपने वाक्योंपर पश्चात्ताप प्रकट करते हुए विनीतभावसे कहा—'प्रभो! मैंने क्रोधके वशीभूत होकर आपसे ऐसे कुवाक्य कह दिये। आप मेरे अपराधको क्षमा करें।'

प्रभुने उसे आश्वासन देते हुए कहा—'विप्रवर! आपने मेरा कुछ भी अपकार नहीं किया और न आपने मुझसे कोई कुवाक्य ही कहा। आपने शाप न देकर यह तो मुझे वरदान ही दिया है। श्रीकृष्ण-प्राप्तिमें संसारी सुख ही तो बन्धनके प्रधान कारण हैं। आपने मुझे उनसे मुक्त होनेका जो वरदान प्रदान कर दिया, इससे मेरा कल्याण ही होगा। आप इसके लिये कुछ भी चिन्ता न करें।' ऐसा कहकर प्रभुने उस ब्राह्मणको प्रेमपूर्वक आलिङ्गन किया और वे भक्तोंके सहित अपने स्थान-को चले आये। इसीका नाम है विद्वेष करनेवालोंके प्रति भी शुद्ध भाव रखना। ऐसा व्यवहार महाप्रभु-जैसे महापुरुषोंके ही द्वारा सम्भव भी हो सकता है।

महाप्रभुकी नम्रता बड़ी ही अलौकिक थी। वे रास्तेमें कैसे भी चलें, स्त्रियोंसे कभी दृष्टि नहीं मिलाते थे। बड़े लोगोंसे सदा दीनता और सम्मानके सहित भाषण करते थे। भावावेशके समय तो वे अपने स्वरूपको ही भूल जाते थे। भावावेशके अतिरिक्त समयमें यदि उनकी कोई पूजा या चरण-वन्दना करता तो वे उससे बहुत अधिक असन्तुष्ट होते। भावावेशके अनन्तर यदि कोई कहता कि हमें आपके दुर्गारूपमें, कृष्णरूपमें, रामरूपमें अथवा बलदेव, वामन, नृसिंहके रूपमें दर्शन क्यों हुए थे तो आप कह देते—'तुम सदा उसी रूपका चिन्तन करते रहते हो। तुम्हारे इष्टदेवमें सभी सामर्थ्य है, वह जिसके शरीरमें भी चाहें प्रवेश होकर तुम्हें दर्शन दे जायँ। इसमें तुम्हारी भावना ही प्रधान कारण है। तुम्हें अपनी शुद्ध भावनासे ही ऐसे रूपोंके दर्शन होते हैं।'

एक बार ये भक्तोंके सहित लेटे हुए थे कि एक ब्राह्मणीने आकर इनके चरणोंमें अपना मस्तक रखकर इन्हें भक्तिभावसे प्रणाम किया। ब्राह्मणीको अपने चरणोंमें मस्तक रखते देखकर इन्हें बड़ा दुःख हुआ और उसी समय दौड़कर गङ्गाजीमें कूद पड़े। सभी भक्त इन्हें इस प्रकार गङ्गाजीमें कूदते देखकर हाहाकार करने लगे। शचीमाता छाती पीट-पीटकर रुदन करने लगीं। उसी समय नित्यानन्दजी और हरिदास भी प्रभुके साथ गङ्गाजीमें कूद पड़े और इन्हें निकालकर किनारेपर लाये।

इस प्रकार वे अपने जीवनको रागद्वेषादिसे बचाते हुए, क्षमाको धारण करते हुए, अभिमानसे रहित होकर, पापियोंके साथ भी प्रेमका बर्ताव करते हुए तथा विद्वेषियोंसे भी सुन्दर व्यवहार करते हुए अपनी सज्जनता, सहृदयता, सहनशीलता और सच्चरित्रतासे भक्तोंके लिये एक उच्चादर्शका पाठ पढ़ाते हुए अपने आचरणों द्वारा सबको आनन्दित करने लगे।

श्रीकृष्ण-लीलाभिनय

क्वचिद् रुदति वैकुण्ठचिन्तासबलचेतनः ।
क्वचिद्धसति तच्चिन्ताह्लाद उद्गायति क्वचित् ॥
नदति क्वचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्यति क्वचित् ।
क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह ॥*

(श्रीमद्भा० ७ । ४ । ३९-४०)

यदि एक शब्दमें कोई हमसे भक्तकी परिभाषा पूछे तो हम उसके सामने 'लोकबाह्य' इसी शब्दको उपस्थित कर देंगे । इस एक ही शब्दमें

* भगवत्-प्रेममें पागल हुए भक्तकी दशाका वर्णन करते हैं—कभी तो भगवत्-चिन्तनसे उसका हृदय क्षुब्ध-सा हो उठता है और भगवान्के वियोगजन्य दुःखके स्मरणसे वह रोने लगता है । कभी भगवत्-चिन्तनसे प्रसन्न होकर उनके रूप-सुधाका पान करते-करते हँसने लगता है, कभी जोरोंसे भगवन्नामोंका और गुणोंका गान करने लगता है । कभी उत्कण्ठाके सहित हुँकार मारने लगता है, कभी निर्लज्ज होकर नृत्य करने लगता है और कभी-कभी वह ईश्वर-चिन्तनमें अत्यन्त ही लवलीन होनेपर तन्मय होकर अपने-आप भी भगवान्की लीलाओंका अनुकरण करने लगता है ।

भक्त-जीवनकी, भक्तिमार्गके पवित्र पथके पथिककी पूरी परिभाषा परिलक्षित हो जाती है। भक्तोंके सभी कार्य अनोखे ही होते हैं। उन्हें लोककी परवा नहीं। बालकोंकी भाँति वे सदा आनन्दमें मस्त रहते हैं, उन्हें रोनेमें भी मजा आता है और हँसनेमें भी आनन्द आता है। वे अपने प्रियतमकी स्मृतिमें सदा बेसुध-से बने रहते हैं। जिस समय उन्हें कोई उनके प्यारे प्रीतमकी दो-चार उल्टी-सीधी बातें सुना दे, अहा, तब तो उनके आनन्दका कहना ही क्या है? उस समय तो उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंमें सभी सात्त्विक भावोंका उदय हो जाता है। यथार्थ स्थितिका पता तो उसी समय लगता है। आइये प्रेमावतार श्रीचैतन्यके शरीरमें सभी भक्तोंके लक्षणोंका दर्शन करें।

एक दिन श्रीवास पण्डितके घरमें प्रभुने भावावेशमें आकर 'वंशी-वंशी' कहकर अपनी वही पुरानी बाँसकी बाँसुरी माँगी। कुछ हँसते हुए श्रीवास पण्डितने कहा—'यहाँ बाँसुरी कहाँ? आपकी बाँसुरी तो गोपिकाएँ हर ले गयीं।' बस, इतना सुनना था कि प्रभु प्रेममें विह्वल हो गये, उनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें सात्त्विक भावोंका उद्दीपन होने लगा। वे गद्‌गद कण्ठसे बार-बार श्रीवास पण्डितसे कहते—'हाँ, सुनाओ। कुछ सुनाओ। वंशीकी लीला सुनाते क्यों नहीं? उस बेचारी पोले बाँसकी बाँसुरीने उन गोपिकाओंका क्या बिगाड़ा था, जिससे वे उसे हर ले गयीं। पण्डित! तुम मुझे उस कथा-प्रसङ्गको सुनाओ।' प्रभुको इस प्रकार आग्रह करते देखकर श्रीवास कहने लगे—'आश्विनका महीना था, शरद्-ऋतु थी। भगवान् निशानाथ अपने सम्पूर्ण कलाओंसे उदित होकर आकाशमण्डलको आलोकमय बना रहे थे। प्रकृति शान्त थी, विहङ्गवृन्द अपने-अपने घोसलोंमें पड़े शयन कर रहे थे। वृन्दावनकी निकुञ्जोंमें स्तब्धता छायी हुई थी। रजनीकी नीरवताका नाश करती हुई यमुना अपने नीले रंगके जलके

साथ हुंकार करती हुई धीरे-धीरे बह रही थी। उसी समय मोहनकी मनोहर मुरलीकी सुरीली तान गोपिकाओंके कानोंमें पड़ी।'

बस, इतना सुनना था कि प्रभु पछाड़ खाकर भूमिपर गिर पड़े और आँखोंसे अविरल अश्रु बहाते हुए श्रीवास पण्डितसे कहने लगे—'हाँ, फिर क्या हुआ ? आगे कहो ! कहते क्यों नहीं ? मेरे तो प्राण उस मुरलीकी सुरीली तानको सुननेके लिये लालायित हो रहे हैं।'

श्रीवास फिर कहने लगे—'उस मुरलीकी ध्वनि जिसके कानोंमें पड़ी जिसने वह मनमोहनी तान सुनी, वही बेसुध हो गयी। सभी थकी-सी, जकी-सी, भूली-सी, भटकी-सी हो गयीं। उन्हें तन-बदनकी तनिक भी सुधि न रही। उस समय—

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं
व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमाः
स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः॥

(श्रीमद्भा० १० । २९ । ४)

उस अनङ्गवर्धन करनेवाले मुरलीके मनोहर गानको सुनकर जिनके मनको श्रीकृष्णने अपनी ओर खींच लिया है, ऐसी उन गोकुलकी गोपियोंने सापत्न्य-भावसे अपने अनेकों उद्योगको एक दूसरीपर प्रकट नहीं किया। वे श्रीकृष्णकी उस जगन्मोहन तानमें अधीन हुई जिधरसे वह ध्वनि सुनायी पड़ी थी उसीको लक्ष्य करके जैसे बैठी हुई थीं वैसे ही उठकर चल दीं। उस समय जानेकी शीघ्रताके कारण उनके कानोंके हिलते हुए कमनीय कुण्डल बड़े ही सुन्दर मालूम पड़ते थे।

'जो गौ दुह रही थी वह दुहनीको वहीं पटककर चल दी, जिन्होंने दुहनेके लिये बछड़ा छोड़ दिया था उन्हें उसे बाँधनेतककी भी सुध न

रही। जो दूध औटा रही थीं वे उसे उफनता हुआ ही छोड़कर चल दीं। माता पुत्रोंको फेंककर, पत्नी पतियोंकी गोदमेंसे निकलकर, बहनें, भाइयोंको खिलाते छोड़कर उसी ओरको दौड़ने लगीं। श्रीवास कहते जाते थे, प्रभु भावावेशमें सुनते जाते थे। दोनों ही बेसुध थे। इस प्रकार श्रीकृष्ण-कथा कहते-कहते ही सम्पूर्ण रात्रि बीत गयी। भगवान् भुवनभास्कर भी घरके दूसरी ओर छिपकर इन लीलाओंका आस्वादन करने लगे। सूर्यके प्रकाशको देखकर प्रभुको कुछ बाह्यज्ञान हुआ। उन्होंने प्रेमपूर्वक श्रीवास पण्डितका जोरोंसे आलिङ्गन करते हुए कहा—'पण्डितजी! आज आपने हमें देवदुर्लभ रसका आस्वादन कराया। आज आपके श्रीमुखसे श्रीकृष्ण-लीलाओंके श्रवणसे मैं कृतकृत्य हो गया।' इतना कहकर प्रभु नित्यकर्मसे निवृत्त होनेके लिये चले गये।

दूसरे दिन प्रभुने सभी भक्तोंके सहित परामर्श किया कि सभी भक्त मिलकर श्रीकृष्ण-लीलाका अभिनय करें। स्थानका प्रश्न उठनेपर प्रभुने स्वयं अपने मौसा पं० चन्द्रशेखर आचार्यरत्नका घर बता दिया। सभी भक्तोंको वह स्थान बहुत ही अनुकूल प्रतीत हुआ। वह घर भी बड़ा था और वहाँपर सभी भक्तोंकी स्त्रियाँ भी बिना किसी सङ्कोचके जा-आ सकती थीं। भक्तोंके यह पूछनेपर कि कौन-सी लीला होगी और किस-किसको किस-किस पात्रका अभिनय करना होगा, इसके उत्तरमें प्रभुने कहा—'इसका अभीसे कोई निश्चय नहीं। बस, यही निश्चय है कि लीला होगी और पात्रोंके लिये आपसमें चुन लो। पात्रोंके पाठका कोई निश्चय नहीं है। उस समय जिसे जिसका भाव आ जाय, वह उसी भावमें अपने विचारोंको प्रकट करे। अभीसे निश्चय करनेपर तो बनावटी लीला हो जायगी। उस समय जैसी भी जिसे स्वाभाविक स्फुरणा हो, यह सुनकर सभी भक्त बड़े प्रसन्न हुए। प्रभुके अन्तरङ्ग भक्तोंको तो अनुभव होने लगा मानो कल वे प्रत्यक्ष वृन्दावन-लीलाके दर्शन करेंगे।

प्रभुने उसी समय पात्रोंका निर्णय किया। पात्रोंके चुननेमें भक्तोंमें खूब हँसी-दिल्लगी होती रही। सबसे पहले नाटक करानेवाले सूत्रधारका प्रश्न उठा। एक भक्तने कहा—'सूत्रधार तो कोई ऐसा मोटा-ताजा होना चाहिये जो जरूरत पड़नेपर मार भी सह सके। क्योंकि सूत्रधारको ही सबकी देख-रेख रखनी होती है।' यह सुनकर नित्यानन्दजी बोल उठे—'तो इस कामको हरिदासजीके सुपुर्द किया जावे। ये मार खानेमें भी खूब प्रवीण हैं।' सभी भक्त हँसने लगे, प्रभुने भी नित्यानन्दजीकी बातका समर्थन किया। फिर प्रभु स्वयं ही कहने लगे—'नारदजीके लिये तो किसी दूसरेकी जरूरत ही नहीं! साक्षात् नारदावतार श्रीवास पण्डित उपस्थित हैं ही।' इसी समय एक भक्त धीरेसे बोल उठा—'नारदो कलहप्रियः' नारदजी तो लड़ाई-झगड़ा पसंद करनेवाले हैं। इसपर हँसते हुए अद्वैताचार्यने कहा—'ये नारद भगवान् इससे अधिक और कलह क्या करावें? आज नवद्वीपमें जो इतना कोलाहल और हो-हल्ला मच रहा है, इसके आदिकारण तो ये नारदावतार श्रीवास महाराज ही हैं।' इतनेमें ही मुरारी बोल उठे—'अजी, नारदजीको एक चेला भी तो चाहिये, यदि नारदजी पसंद करें तो मैं इनका चेला बन जाऊँ!'

यह सुनकर गदाधर बोले—'नारदजीके पेटमें कुछ दर्द तो हो ही नहीं गया है, जो हिंगाष्टक-चूर्णके लिये वैद्यको चेला बनावें। उन्हें तो एक ब्रह्मचारी शिष्य चाहिये। तुम ठहरे गृहस्थी। तुम्हें लेकर नारदजी क्या करेंगे? उनके चेला तो नीलाम्बर ब्रह्मचारी बने ही बनाये हैं।'

प्रभुने मुस्कराते हुए कहा—'भुवनमोहिनी लक्ष्मीदेवीका अभिनय हम करेंगे। किन्तु हमारी सखी ललिता कौन बनेगी?' इसपर पुण्डरीक विद्यानिधि बोल उठे—'प्रभुकी ललिता तो सदा प्रभुके साथ छायाकी तरह रहती ही हैं। ये गदाधरजी ही तो ललिता सखी हैं।' इसपर सभी

भक्तोंने एक स्वरमें कहा—'ठीक है, जैसी अँगूठी वैसा ही उसमें नग जड़ा गया है।' इसपर प्रभु हँसकर कहने लगे—'तब बस ठीक है, एक बड़ी बूढ़ी बड़ाईकी भी हमें जरूरत थी सो उसके लिये श्रीपाद नित्यानन्दजी हैं ही।' इतनेमें ही अधीर होकर अद्वैताचार्य बोल उठे—'प्रभो! हमें एकदम भुला ही दिया क्या? अभिनयमें क्या बूढ़े कुछ न कर सकेंगे।'

हँसते हुए प्रभुने कहा—'आपको जो बूढ़ा बताता है, उसकी बुद्धि स्वयं बूढ़ी हो गयी है। आप तो भक्तोंके सिरमौर हैं। दान लेनेवाले वृन्दावनविहारी श्रीकृष्ण तो आप ही बनेंगे।' यह सुनकर सभी भक्त बड़े प्रसन्न हुए। सभीने अपना-अपना कार्य प्रभुसे पूछा। बुद्धिमन्तखाँ और सदाशिवके जिम्मे रङ्गमञ्च तैयार करनेका काम सौंपा गया। बुद्धिमन्तखाँ जमींदार और धनवान् थे, वे भाँति-भाँतिके साज-बाजके सामान आचार्यरत्नके घर ले आये। एक ऊँचे चबूतरापर रङ्ग-मञ्च बनाया गया। दायीं ओर स्त्रियोंके बैठनेकी जगह बनायी गयी और सामने पुरुषोंके लिये। नियत समयपर सभी भक्तोंकी स्त्रियाँ आचार्यरत्नके घर आ गयीं। मालिनीदेवी और श्रीविष्णुप्रियाके सहित शचीमाता भी नाट्याभिनयको देखनेके लिये आ गयीं। सभी भक्त क्रमशः इकट्ठे हो गये। सभी भक्तोंके आ जानेपर किवाड़ बंद कर दिये गये और लीला-अभिनय आरम्भ हुआ।

भीतर बैठे हुए आचार्य वासुदेव पात्रोंको रङ्ग-मञ्चपर भेजनेके लिये सजा रहे थे। इधर पर्दा गिरा। सबसे पहले मङ्गलाचरण हुआ। अभिनयमें गायन करनेके लिये पाँच आदमी नियुक्त थे। पुण्डरीक विद्यानिधि, चन्द्रशेखर आचार्यरत्न और श्रीवास पण्डितके रमाई आदि तीनों भाई। विद्यानिधिका कण्ठ बड़ा ही मधुर था। वे पहले गाते थे। उनके स्वरमें ये चारों अपना स्वर मिलाते थे। विद्यानिधिने सर्वप्रथम अपने कोमल कण्ठसे इस श्लोकका गायन किया—

जयति जननिवासो देवकीजन्मवादो
यदुवरपरिषत्स्वैर्दोर्भिरस्यन्नधर्मम् ।
स्थिरचरवृजिनघ्नः सुस्मितः श्रीमुखेन
व्रजपुरवनितानां वर्धयन् कामदेवम् ॥*

(श्रीमद्भा० १० । ९० । ४८)

इसके अनन्तर एक और श्लोक मङ्गलाचरणमें गाया गया, तब सूत्रधार रङ्ग-मञ्चपर आया। नाटकके पूर्व सूत्रधार आकर पहले नाटककी प्रस्तावना करता है, वह अपने किसी साथीसे बातों-ही-बातोंमें अपना अभिप्राय प्रकट कर देता है, जिसपर वह अपना अभिप्राय प्रकट करता है, उसे परिपार्श्वक कहते हैं। सूत्रधार (हरिदास) ने अपने परिपार्श्वक (मुकुन्द) के सहित रङ्ग-मञ्चपर प्रवेश किया। उस समय दर्शकोंमें कोई भी हरिदासजीको नहीं पहचान सकते थे, उनकी छोटी-छोटी दाढ़ोंके ऊपर सुन्दर पाग बँधी हुई थी, वे एक बहुत लम्बा-सा अँगरखा पहिने हुए थे और कंधेपर बहुत लंबी छड़ी रखी हुई थी। आते ही उन्होंने अपनी आजीविका प्रदान करनेवाली रंगभूमिको प्रणाम किया और दो सुन्दर पुष्पोंसे उसकी पूजा करते हुए प्रार्थना करने लगे—'हे रंगभूमि ! तू आज साक्षात् वृन्दावन ही बन जाओ।' इसके अनन्तर चारों ओर देखते हुए दर्शकोंकी ओर हाथ मटकाते हुए वे कहने लगे—'बड़ी आपत्ति है, यह नाटक करनेका काम भी कितना खराब है। सभीके मनको प्रसन्न करना होता है। कोई कैसी

---

* जो सब जीवोंका आश्रय है, जिन्होंने कहनेमात्रको देवकीके गर्भसे जन्म लिया, जिन्होंने सेवकसमान आज्ञाकारी बड़े-बड़े यदुश्रेष्ठोंके साथ अपने बाहुबलसे अधर्मका संहार किया, जो चराचर जगत्के दुःखको दूर करनेवाले हैं, जिनके सुन्दर हास्यशोभित श्रीमुखको देखकर व्रजबालाओंके हृदयमें कामोद्दीपन हुआ करता था, उन श्रीकृष्णकी जय हो।

भी इच्छा प्रकट कर दें, उसकी पूर्ति करनी ही होगी। आज ब्रह्माबाबाकी सभामें उन्हें प्रणाम करने गया था। रास्तेमें नारदबाबा ही मिल गये। मुझसे कहने लगे—'भाई! तुम खूब मिले। हमारी बहुत दिनोंसे प्रबल इच्छा थी कि कभी वृन्दावनकी श्रीकृष्णकी लीलाको देखें। कल तुम हमें श्रीकृष्णलीला दिखाओ। नारदबाबा भी अजीब हैं। भला मैं वृन्दावनकी परम गोप्य रहस्यलीलाओंका प्रत्यक्ष अभिनय कैसे कर सकता हूँ। परिपार्श्वक इस बातको सुनकर (आश्चर्य प्रकट करते हुए) कहने लगा—'महाशय! आप आज कुछ नशा-पत्ता तो करके नहीं आ रहे हैं? मालूम पड़ता है, मीठी विजया कुछ अधिक चढ़ा गये हो। तभी तो ऐसी भूली-भूली बातें कर रहे हो? भला नारद-जैसे ब्रह्मज्ञानी, जितेन्द्रिय और आत्माराम मुनि श्रीकृष्णकी शृंगारी लीलाओंके देखनेकी इच्छा प्रकट करें यह तो आप एकदम असम्भव बात कह रहे हैं।'

सूत्रधार (हरिदास)—'वाह साहब! मालूम पड़ता है, आप शास्त्रोंके ज्ञानसे एकदम कोरे ही हैं। श्रीमद्भागवतमें क्या लिखा है, कुछ खबर भी है? भगवान्‌के लीलागुणोंमें यही तो एक भारी विशेषता है कि मोक्ष पदवीपर पहुँचे हुए आत्माराम मुनितक उनमें भक्ति करते हैं।*

परिपार्श्वक—अच्छे आत्माराम हैं, मायासे रहित होनेपर भी मायिक लीलाओंको देखनेकी इच्छा करते रहते हैं।

सू०—तुम तो निरे घोंघाबसन्त हो। भला भगवान्‌की लीलाएँ मायिक कैसे हो सकती हैं? वे तो अप्राकृतिक हैं। उनमें तो मायाका लेश भी नहीं।

परि०—क्योंजी, मायाके बिना तो कोई क्रिया हो ही नहीं सकती, ऐसा हमने शास्त्रज्ञोंके मुखसे सुना है।

---

* आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः॥

सू०—'बस, सुना ही है, विचारा नहीं। 'विचारते तो इस प्रकार गुड़-गोबरको मिलाकर एक न कर देते। यह बात मनुष्योंकी क्रियाके सम्बन्धमें है, जो मायाबद्ध जीव हैं। भगवान् तो मायापति हैं। माया तो उनकी दासी है। वह उनके इशारेसे नाचती है। उनकी सभी लीलाएँ अप्राकृतिक, बिना प्रयोजनके केवल भक्तोंके आनन्दके ही निमित्त होती हैं।'

परि०—(कुछ विस्मयके साथ) हाँ, ऐसी बात है? तब तो नारदजी भले ही देखें। खूब ठाटसे दिखाओ। सालभरतक ऐसी तैयारी करो, कि नारदजी भी खुश हो जायँ। उन्हें ब्रह्मलोकसे आनेमें अभी दस-बीस वर्ष तो लग ही जायँगे।

सू०—तुम तो एकदम अकलके पीछे डंडा लिये ही फिरते रहते हो। वे देवर्षि ठहरे, संकल्प करते ही जिस लोकमें चाहें पहुँच सकते हैं?

परि०—मुझे इस बातका क्या पता था, यदि ऐसी बात है, तो अभी लीलाकी तैयारी करता हूँ। हाँ, यह तो बताओ किस लीलाका अभिनय करोगे?

सू०—मुझे तो दानलीला ही सर्वोत्तम जँचती है, तुम्हारी क्या सम्मति है?

परि०—लीला तो बड़ी सुन्दर है, मुझे भी उसका अभिनय पसंद है, किंतु एक बड़ा भारी द्वन्द्व है। अभिनय करनेवाली बालिकाएँ लापता है।

सू०—(कुछ विस्मयके साथ) 'वे कहाँ गयीं?'

परि०—वे गोपेश्वर शिवका पूजन करने वृन्दावन चली गयी हैं?

सू०—तुमने यह एक नयी आफतकी बात सुना दी। अब कैसे काम चलेगा?

परि०—(जल्दीसे) आफत काहेकी, मैं अभी जाता हूँ, बात-की-बातमें आता हूँ और उन्हें साथ-ही-साथ लिवाकर लाता हूँ।

सू०—(अन्यमनस्कभावसे) वे सब अभी हैं बच्ची, उनकी उम्र है कच्ची, वैसे ही बिना कहे चली गयीं, न किसीसे कह गयीं, न सुन गयीं। वहाँका पथ है दुर्गम भारी, कहीं फिरेंगी मारी-मारी। साथमें कोई बड़ी-बूढ़ी भी नहीं है।

परि०—'है क्यों नहीं बड़ाई बूढ़ी कैसी है ?'

सू०—(हँसकर) बूढ़ीको भी पूजनकी खूब सूझी, आँखोंसे दीखता नहीं। कोई धीरेसे धक्का मार दे तो तीन जगह गिरेगी, उसे रास्तेका क्या होश ?

इतनेहीमें नैपथ्यसे वीणाकी आवाज सुनायी दी और बड़े स्वरके सहित—'*श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव*' यह पद सुनायी दिया। सूत्रधार यह समझकर कि नारदजी आ गये, जल्दीसे अपने परिपार्श्वक (मुकुन्द) के साथ कन्याओंको बुलानेके लिये दौड़े गये। इतनेमें ही क्या देखते हैं कि हाथमें वीणा लिये हुए पीले वस्त्र पहिने सफेद दाढ़ीवाले नारदजी अपने शिष्यके सहित रंग-मञ्चपर '*श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव*' इस पदको गाते हुए धीरे-धीरे घूम रहे हैं। उस समय श्रीवास नारद-वेशमें इतने भले मालूम पड़ते थे कि कोई उन्हें पहचान ही नहीं सकता था कि ये श्रीवास पण्डित हैं। शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी रामनामी दुपट्टा ओढ़े कमण्डलु हाथमें लिये नारदजीके पीछे-पीछे घूम रहे थे।

स्त्रियाँ श्रीवासके इस रूपको देखकर विस्मित हो गयीं। शचीमाता-ने हँसकर मालिनीदेवीसे पूछा—'क्यों ? यही तुम्हारे पति हैं न ?' मालिनीदेवीने कुछ मुस्कराते हुए कहा—'क्या पता तुम ही जानो !'

श्रीवास पण्डितने वेश ही नारदका नहीं बना रखा था, सचमुच उन्हें उस समय नारदमुनिका वास्तविक आवेश हो आया था। उसी आवेश-में आपने अपने साथके शिष्यसे कहा—'ब्रह्मचारी ! क्या बात है ?

यहाँ तो नाटकका कोई रंग-ढंग दिखायी नहीं पड़ता ?' उसी समय सूत्रधारके साथ सुप्रभाके सहित गोपीवेशमें गदाधरने प्रवेश किया।

इन्हें देखकर नारदजीने पूछा—'तुम कौन हो ?'

सुप्रभा (ब्रह्मानन्द) ने कहा—भगवन्! हम ग्वालिनी हैं, वृन्दावनमें गोपेश्वर भगवान्के दर्शनके निमित्त जा रही हैं। आप महाराज! कौन हैं और कहाँ जा रहे हैं ?

नारदजीने कहा—मैं श्रीकृष्णका एक अत्यन्त ही अकिञ्चन किङ्कर हूँ, मेरा नाम नारद है ?

'नारद' इतना सुनते ही सुप्रभाके साथ सखीने तथा अन्य सभीने देवर्षि नारदको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। गोपी (गदाधर) नारदजीके चरणोंको पकड़कर रोते-रोते कहने लगी—'हे भक्तभयहारी भगवन्! जिस श्रीकृष्णने अपना काला रंग छिपाकर गौर वर्ण धारण कर लिया है, उन अपने प्राणप्यारे प्रियतमके प्रेमकी अधिकारिणी मैं कैसे बन सकूँगी ? यह कहते-कहते गोपी (गदाधर) नारदके पैरोंको पकड़कर जोरोंके साथ रुदन करने लगी। उसके कोमल गोल कपोलोंपरसे अश्रुओंकी धाराओंको बहते देखकर सभी भक्त दर्शक रुदन करने लगे।'

नारदजी गोपीको आश्वासन देते हुए कहने लगे—'तुम तो श्रीकृष्णकी प्राणोंसे भी प्यारी सहचरी हो। तुम व्रजमण्डलके घनश्यामकी मनमोहिनी मयूरी हो। तुम्हारे नृत्यको देखकर वे ऊपर रह ही नहीं सकते। उसी क्षण नीचे उतर आवेंगे। तुम अपने मनोहर सुखमय नृत्यसे मेरे सन्तप्त हृदयको शीतलता प्रदान करो।'

गोपी इतना सुननेपर भी रुदन ही करती रही। दूसरी ओर सुप्रभा अपने नृत्यके भावोंसे नारदके मनको मुदित करने लगी। उधर सूत्रधार (हरिदास) भी सुप्रभाके ताल-स्वरमें तालस्वर मिलाते हुए कंधेपर लट्ठ रखकर नृत्य करने लगे। वे सम्पूर्ण आँगनमें पागलकी तरह घूम-घूमकर

'कृष्ण भज कृष्ण भज कृष्ण भज बावरे। कृष्णके भजन बिनु खाउगे क्या पामरे ?' इस पदको गा-गाकर जोरोंसे नाचने लगे। पद गाते-गाते आप बीचमें रुककर इस दोहेको कहते जाते—

रैंनि गँवाई सोइके, दिवस गँवाया खाय।
हीरा जन्म अमोल था कौड़ी बदले जाय॥
कृष्ण भज कृष्ण भज कृष्ण भज बावरे।
कृष्णके भजन बिनु खाउगे क्या पामरे॥

गोपी नारदके चरणोंको छोड़ती ही नहीं थी, सुप्रभा (ब्रह्मानन्द) ने गोपी (गदाधर) से आग्रहपूर्वक कहा—'सखि ! पूजनके लिये बड़ी वेला हो गयी। सभी हमारी प्रतीक्षामें होगी, चलो चलें।'

सुप्रभाकी ऐसी बात सुनकर सखीने नारदजीकी चरणवन्दना की और उनसे जानेकी अनुमति माँगकर सुप्रभाके सहित दूसरी ओर चली गयी। उनके दूसरी ओर चले जानेपर नारदजी अपने ब्रह्मचारीसे कहने लगे—'ब्रह्मचारी ! चलो हम भी वृन्दावनकी ही ओर चलें। वहीं चलकर श्रीकृष्ण भगवान्‌की मनोहर लीलाओंके दर्शनसे अपने जन्मको सफल करें।'

'जो आज्ञा' कहकर ब्रह्मचारी नारदजीके पीछे-पीछे चलने लगा।

घरके भीतर महाप्रभु भुवनमोहिनी लक्ष्मीदेवीका वेष धारण कर रहे थे। उन्होंने अपने सुन्दर कमलके समान कोमल युगल चरणोंमें महावर लगाया। उन अरुण रंगके तलुओंमें महावरकी लालिमा फीकी-फीकी-सी प्रतीत होने लगी। पैरोंकी उँगलियोंमें आपने छल्ली और छल्ला पहने, खड़ला, छड़े और झाँझनोंके नीचे सुन्दर घुँघरू बाँधे। कमरमें करधनी बाँधी। एक बहुत ही बढ़िया लहँगा पहिना। हाथोंकी उँगलियोंमें छोटी-छोटी छल्ली और अँगूठेमें बड़ी-सी आरसी पहिनी। गलेमें मोहनमाला पचमनिया, हार, हमेल तथा अन्य बहुत-सी जड़ाऊ और कीमती मालाएँ धारण की। कानोंमें कर्णफूल और बाजुओंमें सोनेकी पहुँची पहिनी।

आचार्य वासुदेवने बड़ी ही उत्तमतासे प्रभुके लंबे-लंबे घुँघराले बालोंमें सीधी माँग निकाली और पीछेसे बालोंका जूड़ा बाँध दिया। बालोंके जूड़ेमें मालती, चम्पा और चमेली आदिके बड़ी ही सजावटके साथ फूल गूँथ दिये। एक सुन्दर-सी माला जूड़ेमें खोंस दी। माँगमें बहुत ही बारीकीसे सिन्दूर भर दिया। माथेपर बहुत छोटी-सी रोलीकी एक गोल बिन्दी रख दी। सुगन्धित पान प्रभुके श्रीमुखमें दे दिया। एक बहुत ही पतली कामदार ओढ़नी प्रभुको उढ़ा दी गयी। शृङ्गार करते-करते ही प्रभुको रुक्मिणीका आवेश हो आया। वे श्रीकृष्णके विरहमें रुक्मिणीभावसे अधीर हो उठे।

रुक्मिणीके पिताकी इच्छा थी कि वे अपनी प्यारी पुत्रीका विवाह श्रीकृष्णचन्द्रजीके साथ करें, किन्तु उनके बड़े पुत्र रुक्मीने रुक्मिणीका विवाह शिशुपालके साथ करनेका निश्चय किया था। इससे रुक्मिणी अधीर हो उठी। वह मन-ही-मन श्रीकृष्णचन्द्रजीको अपना पति बना चुकी थी। उसने मनसे अपना सर्वस्व भगवान् वासुदेवके चरणोंमें समर्पित कर दिया था। वह सोचने लगी—'हाय! वह नराधम शिशुपाल कल बारात सजाकर मेरे पिताकी राजधानीमें आ जायगा। क्या मैं अपने प्राणप्यारे पतिदेवको नहीं पा सकूँगी? मैंने तो अपना सर्वस्व उन्हींके श्रीचरणोंमें समर्पण कर दिया है। वे दीनवत्सल हैं, अशरणशरण हैं, घट-घटकी जाननेवाले हैं। क्या उनसे मेरा भाव छिपा होगा? वे अवश्य ही जानते होंगे। फिर भी उन्हें स्मरण दिलानेको एक विनयकी पाती तो पठा ही दूँ। फिर आना न आना उनके अधीन रहा! या तो इस प्राणहीन शरीरको शिशुपाल ले जायगा, या उसे खाली हाथों ही लौटना पड़ेगा। प्राण रहते तो मैं उस दुष्टके साथ कभी न जाऊँगी। इस शरीरपर तो उन भगवान् वासुदेवका ही अधिकार है। जीवित शरीरका तो वे ही उपभोग कर सकते हैं।' यह सोचकर वह अपने प्राणनाथके लिये प्रेम-पाती लिखनेको बैठी—

श्रुत्वा गुणान्भुवनसुन्दर शृण्वतां ते
निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् ।
रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं
त्वय्यच्युताविशति चित्तमपत्रपं मे ॥*

(श्रीमद्भा० १०।५२।३७)

इस प्रकार सात श्लोक लिखकर एक ब्राह्मणके हाथ उसने अपनी वह प्रणयरससे पूर्ण पाती द्वारिकाको भगवान्के पास भिजवायी। महाप्रभु भी उसी तरहसे हाथके नखोंके द्वारा रुक्मिणीके भावावेशमें अपने प्यारे श्रीकृष्णको प्रेम-पाती-सी लिखने लगे। वे उसी भावसे विलख-विलखकर रुदन करने लगे और रोते-रोते उन्हीं भावोंको प्रकट भी करने लगे। कुछ कालके अनन्तर वह भाव शान्त हुआ। बाहर रङ्ग मञ्चपर अद्वैताचार्य सुप्रभा और गोपीके साथ मधुर भावकी बातें कर रहे थे। हरिदास कंधेपर लट्ठ रखकर 'जागो-जागो' कहकर घूम रहे थे। सभी भक्त प्रेममें विभोर होकर रुदन कर रहे थे। इतनेमें ही जगन्मोहिनी रूपको धारण किये हुए प्रभुने रङ्ग-मञ्चपर प्रवेश किया। प्रभुके आगे बड़ाई वेशमें नित्यानन्दजी थे। नित्यानन्दजीके कंधेपर हाथ रखे हुए धीरे-धीरे प्रभु आ रहे थे। प्रभुके उस अद्भुत रूप-लावण्ययुक्त स्वरूपको देखकर सभी भक्त चकित हो गये। उस

* हे अच्युत ! तुम्हारे त्रिभुवन-सुन्दर स्वरूपकी ख्याति मेरे कर्णकुहरोंद्वारा हृदयमें पहुँच गयी है, उसने पहुँचते ही मेरे हृदयके सभी प्रकारके तापोंको शान्त कर दिया है। क्योंकि तुम्हारे जगन्मोहन रूपमें और आपके अचिन्त्य गुणोंमें प्रभाव ही ऐसा है, कि वह देखनेवालों तथा सुननेवालोंके सभी मनोरथोंको पूर्ण कर देते हैं। हे प्रणतपाल ! उस ख्यातिके ही सुननेसे मेरा निर्लज्ज मन तुम्हारेमें आसक्त हो गया है।

समयके प्रभुके रूपका वर्णन करना कविकी प्रतिभाके बाहरकी बात है। सभी इस बातको भूल गये कि प्रभुने ऐसा रूप बनाया है। भक्त अपनी-अपनी भावनाके अनुसार उस रूपमें पार्वती, सीता, लक्ष्मी, महाकाली तथा रासविहारिणी रसविस्तारिणी श्रीराधिकाजीके दर्शन करने लगे। जिस प्रकार समुद्र-मन्थनके पश्चात् भगवान्के भुवनमोहिनी रूपको देखकर देव, दानव, यक्ष, राक्षस सब-के-सब उस रूपके अधीन हो गये थे और देवाधिदेव महादेवजीतक कामासक्त होकर उसके पीछे दौड़े थे, उसी प्रकार यहाँ भी सभी भक्त विमुग्ध-से तो हो गये थे; किन्तु प्रभुके आशीर्वादसे किसीके हृदयमें कामके भाव उत्पन्न नहीं हुए। सभीने उस रूपमें मातृस्नेहका अनुभव किया। प्रभु लक्ष्मीके भावमें आकर भावमय सुन्दर पद गा-गाकर मधुर नृत्य करने लगे। उस समय प्रभुकी आकृति-प्रकृति, हाव-भाव, चेष्टा तथा वाणी सभी स्त्रियोंकी-सी ही हो गयी थी। वे कोकिल-कूजित कमनीय कण्ठसे बड़े ही भावमय पदोंका गान कर रहे थे। उनकी भाव-भङ्गीमें जादू भरा हुआ था, सभी भक्त उस अनिर्वचनीय अलौकिक और अपूर्व नृत्यको देखकर चित्रके लिखे-से स्तम्भित भावसे बैठे हुए थे। प्रभु भावावेशमें आकर नृत्य कर रहे थे। उनके नृत्यकी मधुरिमा अधिकाधिक बढ़ती ही जाती थी, दोनों आँखोंसे अश्रुओंकी दो अविच्छिन्न धारा-सी बह रही थी, मानो गङ्गा-यमुनाका प्रवाह सजीव होकर बह रहा हो। दोनों भृकुटियाँ ऊपर चढ़ी हुई थीं। कड़े, छड़े, झाँझन और नूपुरोंकी झनकारसे सम्पूर्ण रंग-मञ्च झंकृत-सा हो रहा था। प्रकृति स्तब्ध थी मानो वायु भी प्रभुके इस अपूर्व नृत्यको देखनेके लालचसे रुक गया हो। भीतर बैठी हुई सभी स्त्रियाँ विस्मयसे आँखें फाड़-फाड़कर प्रभुके अद्भुत रूप-लावण्यकी शोभा निहार रही थीं।

उसी समय नित्यानन्दजी बड़ाईके भावको परित्याग करके श्रीकृष्ण-भावसे क्रन्दन करने लगे। उनके क्रन्दनको सुनकर सभी भक्त व्याकुल

हो उठे और लंबी-लंबी साँसें छोड़ते हुए सब-के-सब उच्चस्वरसे हा गौर! हा कृष्ण! कहकर रुदन करने लगे। सभीकी रोदनध्वनिसे चन्द्रशेखरका घर गूँजने लगा। सम्पूर्ण दिशाएँ रोती हुई-सी मालूम पड़ने लगीं। भक्तोंको व्याकुल देखकर प्रभु भक्तोंके ऊपर वात्सल्यभाव प्रकट करनेके निमित्त भगवान्‌के सिंहासनपर जा बैठे। सिंहासनपर बैठते ही सम्पूर्ण घर प्रकाशमय बन गया। मानो हजारों सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र एक साथ ही आकाशमें उदय हो उठे हों। भक्तोंकी आँखोंके सामने उस दिव्यालोकके प्रकाशको सहन न करनेके कारण चकाचौंध-सा छा गया।

प्रभुने भगवान्‌के सिंहासनपर बैठे-ही-बैठे हरिदासजीको बुलाया। हरिदासजी लट्ठ फेंककर जल्दीसे जगन्माताकी गोदीके लिये दौड़े। प्रभुने उन्हें उठाकर गोदमें बैठा लिया। हरिदास महामाया आदिशक्तिकी क्रोड़में बैठकर अपूर्व वात्सल्यसुखका अनुभव करने लगे। इसके अनन्तर क्रमशः सभी भक्तोंकी बारी आयी। प्रभुने भगवतीके भावमें सभीको वात्सल्यसुखका रसास्वादन कराया और सभीको अपना अप्राप्य स्तनपान कराकर आनन्दित और पुलकित कराया। इसी प्रकार भक्तोंको स्तनपान कराते-कराते प्रातःकाल हो गया। उस समय भक्तोंको सूर्यदेवका उदय होना अरुचिकर-सा प्रतीत हुआ। प्रातःकाल होते ही प्रभुने भगवती-भावका संवरण किया। वे थोड़ी देरमें प्रकृतिस्थ हुए और उस वेषको बदलकर भक्तोंके सहित नित्यकर्मसे निवृत्त होनेके लिये गङ्गाकिनारेकी ओर चले गये। चन्द्रशेखरका घर प्रभुके चले जानेपर भी तेजोमय ही बना रहा और वह तेज धीरे-धीरे सात दिनमें जाकर बिल्कुल समाप्त हुआ।

इस प्रकार प्रभुने भक्तोंके सहित श्रीमद्भागवतकी प्रायः सभी लीलाओंका अभिनय किया।

भक्तोंके साथ प्रेम-रसास्वादन

सर्वथैव दुरूहोऽयमभक्तैर्भगवद्रसः ।
तत्पादाम्बुजसर्वस्वैर्भक्तैरेवानुरस्यते ॥*

प्रेमकी उपमा किससे दें ? प्रेम तो एक अनुपमेय वस्तु है। स्थावर, जङ्गम, चर, अचर, सजीव तथा निर्जीव सभीमें प्रेम समानरूपसे व्याप्त हो रहा है। संसारमें प्रेम ही तो ओतप्रोतभावसे भरा हुआ है। जो लोग आकाशको पोला समझते हैं, वे भूले हुए हैं। आकाश तो लोहेसे भी कहीं अधिक ठोस है। उसमें तो एक परमाणु भी और नहीं समा सकता, वह सद्वृत्ति और दुर्वृत्तियोंके भावोंसे ठूँस-ठूँसकर भरा हुआ है। प्रेम उन सभीमें समानरूपसे व्याप्त है। प्रेमको चूना-मसाला या जोड़नेवाला द्राविक पदार्थ समझना चाहिये। प्रेमके कारण ये सभी भाव टिके हुए हैं। किन्तु प्रेमकी उपलब्धि सर्वत्र नहीं होती। वह तो भक्तोंके ही शरीरोंमें पूर्णरूपसे प्रकट होता है। भक्त हो परस्परमें प्रेमरूपी रसायनका निरन्तर पान करते रहते हैं।

---

* जिन्होंने सांसारिक भोगोंको ही सब कुछ समझ रखा है, जो विषय-भोगोंमें ही आबद्ध हैं, ऐसे अभक्तोंको भगवद्रसका आस्वादन करना सर्वथा दुर्लभ है। जिन्होंने अपना सर्वस्व उस सांवलेके कोमल अरुण चरणोंमें समर्पित कर दिया है, जो सर्वतोभावेन उसीके बन गये है ऐसे ऐकान्तिक भक्त ही उस रसका आस्वादन कर सकते हैं।

उनकी प्रत्येक चेष्टामें प्रेम-ही-प्रेम होता है। वे सदा प्रेम-वारुणी पान करके लोकबाह्य उन्मत्त-से बने रहते हैं और अपने प्रेमी बन्धुओं तथा भक्तोंको भी उस वारुणीको भर-भर प्याले पिलाते रहते हैं। उस अपूर्व आसवका पान करके वे भी मस्त हो जाते हैं, निहाल हो जाते हैं, धन्य हो जाते हैं, लज्जा, घृणा तथा भयसे रहित होकर वे भी पागलोंकी भाँति प्रलाप करने लगते हैं। उन पागलोंके चरित्रमें कितना आनन्द है, कैसा अपूर्व रस है। उनकी मार-पीट, गाली-गलौज, स्तुति-प्रार्थना, भोजन तथा शयन सभी कामोंमें प्रेमका सम्पुट लगा होनेसे ये सभी काम दिव्य और अलौकिक-से प्रतीत होते हैं। उनके श्रवणसे सहृदय पुरुषोंको सुख होता है, वे भी उस प्रेमासवके लिये छटपटाने लगते हैं और उसी छटपटाहटके कारण वे अन्तमें प्रभु-प्रेमके अधिकारी बनते हैं।

महाप्रभु अब भक्तोंको साथ लेकर नित्यप्रति बड़ी ही मधुर-मधुर लीलाएँ करने लगे। जबसे जगाई-मधाईका उद्धार हुआ और वे अपना सर्वस्व त्याग कर श्रीवास पण्डितके यहाँ रहने लगे, तबसे भक्तोंका उत्साह अत्यधिक बढ़ गया है। अन्य लोग भी संकीर्तनके महत्त्वको समझने लगे हैं। अब संकीर्तनकी चर्चा नवद्वीपमें पहलेसे भी अधिक होने लगी है। निन्दक अब भाँति-भाँतिसे कीर्तनको बदनाम करनेकी चेष्टा करने लगे हैं। पाठक ! उन निन्दकोंको निन्दा करने दें। आप तो अब गौरकी भक्तोंके साथ की हुई अद्भुत लीलाओंका ही रसास्वादन करें।

मुरारी गुप्त प्रभुके सहपाठी थे, वे प्रभुसे अवस्थामें भी बड़े थे। प्रभु उन्हें अत्यधिक प्यार करते और उन्हें अपना बहुत ही अन्तरंग भक्त समझते। मुरारीका भी प्रभुके चरणोंमें पूर्णरीत्या अनुराग था। वे रामोपासक थे, अपनेको हनूमान् समझकर कभी-कभी भावावेशमें आकर हनूमान्‌जीकी भाँति हुंकार भी मारने लगते। वे सदा अपनेको प्रभुका सेवक ही समझते। एक दिन प्रभुने विष्णु-भावमें 'गरुड़'-'गरुड़'

कहकर पुकारा। बस, उसी समय मुरारीने अपने वस्त्रको दोनों ओर पंखोंकी तरह फैलाकर प्रभुको जल्दीसे अपने कंधेपर चढ़ा लिया और आनन्दसे इधर-उधर आँगनमें घूमने लगे। यह देखकर भक्तोंके आनन्दका ठिकाना नहीं रहा। उन्हें प्रभु साक्षात् चतुर्भुज नारायणकी भाँति गरुड़पर चढ़े हुए और चारों हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म इन चारों वस्तुओंको लिये हुए-से प्रतीत होने लगे। भक्त आनन्दके सहित नृत्य करने लगे। मालतीदेवी तथा शचीमाता आदि अन्य स्त्रियाँ प्रभुको मुरारीके कंधेपर चढ़ा हुआ देखकर भयभीत होने लगीं। कुछ कालके अनन्तर प्रभुको बाह्यज्ञान हुआ और वे मुरारीके कंधेसे नीचे उतरे।

मुरारी रामोपासक थे। प्रभु उनकी ऐकान्तिकी निष्ठासे पूर्णरीत्या परिचित थे। भक्तोंको उनका प्रभाव जतानेके निमित्त प्रभुने एक दिन उनसे एकान्तमें कहा—'मुरारी! यह बात बिलकुल ठीक है कि श्रीराम और श्रीकृष्ण दोनों एक ही हैं। उन्हीं भगवान्के अनन्त रूपोंमेंसे ये भी हैं। भगवान्के किसी भी नाम तथा रूपकी उपासना करो, अन्तमें सबका फल प्रभु-प्राप्ति ही है, किन्तु श्रीरामचन्द्रजीकी लीलाओंकी अपेक्षा श्रीकृष्ण-लीलाओंमें अधिक रस भरा हुआ है। तुम श्रीरामरूपकी लीलाओंकी अपेक्षा श्रीकृष्ण-लीलाओंका आश्रय ग्रहण क्यों नहीं करते? हमारी हार्दिक इच्छा है कि तुम निरन्तर श्रीकृष्ण-लीलाओंका ही रसास्वादन किया करो। आजसे श्रीकृष्णको ही अपना सर्वस्व समझकर उन्हींकी अर्चा-पूजा तथा भजन-ध्यान किया करो।'

प्रभुकी आज्ञा मुरारीने शिरोधार्य कर ली। पर उनके हृदयमें खलबली-सी मच गयी। वे जन्मसे ही रामोपासक थे। उनका चित्त ता रामरूपमें रमा हुआ था, प्रभु उन्हें कृष्णोपासना करनेके लिये आज्ञा देते हैं। इसी असमञ्जसमें पड़े हुए वे रात्रिभर आँसू बहाते रहे। उन्हें क्षण-

भरके लिये भी नींद नहीं आयी। पूरी रात्रि रोते-रोते ही बितायी। दूसरे दिन उन्होंने प्रभुके समीप जाकर दीनता और नम्रताके साथ निवेदन किया—'प्रभो ! यह मस्तक तो मैंने रामको बेच दिया है। जो माथा श्रीरामके चरणोंमें बिक चुका है, वह दूसरे किसीके सामने कैसे नत हो सकता है ? नाथ ! मैं आत्मघात कर लूँगा, मुझसे न तो रामोपासनाका परित्याग होगा और न आपकी आज्ञाका ही उल्लङ्घन करनेकी मुझमें सामर्थ्य है।' इतना कहकर मुरारी फूट-फूटकर रुदन करने लगे। प्रभु इनकी ऐसी इष्टनिष्ठा देखकर अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और जल्दीसे इनका गाढ़ आलिंगन करते हुए गद्गद कण्ठसे कहने लगे—'मुरारी ! तुम धन्य हो, तुम्हें अपने इष्टमें इतनी अधिक निष्ठा है, हमें भी ऐसा ही आशीर्वाद दो कि हमारी भी श्रीकृष्णके पादपद्मोंमें ऐसी ही ऐकान्तिक दृढ़ निष्ठा हो।'

एक दिन प्रभुने मुरारीसे किसी स्तोत्रका पाठ करनेके लिये कहा। मुरारीने बड़े ही लय और स्वरके साथ स्वरचित रघुवीराष्टकको सुनाया। उसके दो श्लोक यहाँ दिये जाते हैं—

राजत्किरीटमणिदीधितिदीपिताश-
मुद्यद्बृहस्पतिकविप्रतिमे वहन्तम्।
द्वे कुण्डलेऽङ्करहितेन्दुसमानवक्त्रं
रामं जगत्त्रयगुरुं सततं भजामि॥
उद्यद्विभाकरमरीचिविरोधिताब्ज-
नेत्रं सुबिम्बदशनच्छदचारुनासम्।
शुभ्रांशुरश्मिपरिनिर्जितचारुहासं
रामं जगत्त्रयगुरुं सततं भजामि॥†

(मुरारिकृ० चैतन्य च०)

† जिनके दीप्तिमान् मुकुटमें स्थित मणियोंसे सम्पूर्ण दिशाएँ उद्भासित हो रही हैं, जिनके कानोंमें बृहस्पति और शुक्राचार्यके समान दो कुण्डल शोभा दे

प्रभु इनके इस स्तोत्रपाठसे अत्यन्त ही प्रसन्न हुए और इनके मस्तकपर 'रामदास' शब्द लिख दिया। निम्नश्लोकमें इस घटनाका कैसा सुन्दर और सजीव वर्णन है—

इत्थं निशम्य रघुनन्दनराजसिंह-
श्लोकाष्टकं स भगवान् चरणं मुरारेः।
वैद्यस्य मूर्ध्नि विनिधाय लिलेख भाले
त्वं 'रामदास' इति भो भव मत्प्रसादात्॥

वे प्रभु राजसिंह श्रीरामचन्द्रजीके इन आठ श्लोकोंको सुनकर बड़े प्रसन्न हुए और वैद्यवर मुरारी गुप्तके मस्तकपर अपने श्रीचरणोंको रखकर उनसे कहने लगे—'तुम्हें मेरी कृपासे श्रीरामचन्द्रजीकी अविरल भक्ति प्राप्त हो।' ऐसा कहकर प्रभुने उनके मस्तकपर 'रामदास' ऐसा लिख दिया।

इस प्रकार प्रभुका असीम अनुग्रह प्राप्त करके आनन्दमें विभोर हुए मुरारी घर आये। आते ही इन्होंने भावावेशमें अपनी पत्नीसे खानेके लिये दाल-भात माँगा। पतिव्रता साध्वी पत्नीने उसी समय दाल-भात परोसकर इनके सामने रख दिया। अब तो ये ग्रासोंमें घी मिला-मिलाकर जो भी बाल-बच्चा अथवा कोई भी दीखता, उसे ही प्रेमपूर्वक खिलाते जाते और स्वयं भी खाते जाते। बहुत-सा अन्न

रहे हैं एवं जिनका मुखमण्डल कलंकरहित चन्द्रमाके समान शीतलता और सुख प्रदान करनेवाला है, ऐसे तीनों लोकोंके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीका हम भक्तिभावसे स्मरण करते हैं।

उदीयमान सूर्यकी किरणोंसे विकसित हुए कमलके समान जिनके आनन्ददायक बड़े-बड़े सुन्दर नेत्रयुगल हैं, बिम्बाफलके समान जिनके मनोहर अरुण रंगके ओष्ठद्वय हैं एवं मनको हरनेवाली जिनकी नुकीली नासिका है। जिनके मनोहर हास्यके सम्मुख चन्द्रमाकी किरणें भी लज्जित हो जाती हैं, ऐसे त्रिभुवनके गुरु श्रीरामचन्द्रजीका भक्तिभावसे हम भजन करते हैं।

पृथ्वीपर भी गिरता जाता। इस प्रकार ये कितना खा गये, इसका इन्हें कुछ भी पता नहीं। इनकी स्त्रीने जब इनकी ऐसी दशा देखी तब वह चकित रह गयी, किन्तु उस पतिप्राणा नारीने इनके काममें कुछ हस्तक्षेप नहीं किया। इसी प्रकार खा-पीकर सो गये। प्रातःकाल जब उठे तो क्या देखते हैं, महाप्रभु इनके सामने उपस्थित हैं। इन्होंने जल्दीसे उठकर प्रभुकी चरण-वन्दना की और उन्हें बैठनेके लिये एक सुन्दर आसन दिया। प्रभुके बैठ जानेपर मुरारीने विनीतभावसे इस प्रकार असमयमें पधारनेका कारण जानना चाहा। प्रभुने कुछ हँसते हुए कहा—'तुम्हीं तो वैद्य होकर आफत कर देते हो। लाओ कुछ ओषधि तो दो।'

आश्चर्य प्रकट करते हुए मुरारीने पूछा—'प्रभो! ओषधि कैसी? किस रोगकी ओषधि चाहिये? रातभरमें ही क्या विकार हो गया?'

प्रभुने हँसते हुए कहा—'तुम्हें मालूम नहीं है क्या विकार हो गया। अपनी स्त्रीसे तो पूछो। रातको तुमने मुझे कितना घृतमिश्रित दाल-भात खिला दिया। तुम प्रेमसे खिलाते जाते थे, मैं भला तुम्हारे प्रेमकी उपेक्षा कैसे कर सकता था? जितना तुमने खिलाया, खाता गया। अब अजीर्ण हो गया है और उसकी ओषधि भी तुम्हारे पास ही रखी है। यह देखो, यही इस अजीर्णकी ओषधि है।' यह कहते हुए प्रभु वैद्यकी खाटके समीप रखे हुए उनके उच्छिष्ट पात्रका जलपान करने लगे। मुरारी यह देखकर जल्दीसे प्रभुको ऐसा करनेसे निवारण करने लगे। किन्तु तबतक प्रभु आधेसे अधिक जल पी गये। यह देखकर मुरारी मारे प्रेमके रोते-रोते प्रभुके पादपद्मोंमें लोटने लगे।

एक दिन प्रभुने अत्यन्त ही स्नेहके सहित मुरारी गुप्तसे कहा—मुरारी! तुमने अपनी अहैतुकी भक्तिद्वारा श्रीकृष्णको अपने वशमें कर

लिया है। अपनी प्रेमरूपी डोरीसे श्रीकृष्णको इस प्रकार कसकर बाँध लिया है कि यदि वे उससे छूटनेकी भी इच्छा करें तो नहीं छूट सकते।' इतना सुनते ही कवि-हृदय रखनेवाले मुरारी गुप्तने अपनी प्रत्युत्पन्न-मतिसे उसी समय यह श्लोक पढ़कर प्रभुको सुनाया—

क्वाहं दरिद्रः पापीयान् क्व कृष्णः श्रीनिकेतनः।
ब्रह्मबन्धुरिति स्माहं बाहुभ्यां परिरम्भितः॥

(श्रीमद्भा० १०। ८१। १६)

सुदामाकी उक्ति है। सुदामा भगवान्‌की दयालुता और असीम कृपाका वर्णन करते हुए कह रहे हैं—भगवान्‌की दयालुता तो देखिये—कहाँ तो मैं सदा पाप-कर्मोंमें रत रहनेवाला दरिद्र ब्राह्मण और कहाँ सम्पूर्ण ऐश्वर्यके मूलभूत निखिल पुण्याश्रय श्रीकृष्ण भगवान्! तो भी उन्होंने केवल ब्राह्मणकुलमें उत्पन्न हुए मुझ जातिमात्रके ब्राह्मणको अपनी बाहुओंसे आलिङ्गन किया। इसमें मेरा कुछ पुरुषार्थ नहीं है, कृपालु कृष्णकी अहैतुकी कृपा ही इसका एकमात्र कारण है।' इस प्रकार प्रभु विविध प्रकारसे मुरारीके सहित प्रेम प्रदर्शित करते हुए अपना मनोविनोद करते रहते थे और मुरारीको उसके द्वारा अनिर्वचनीय आनन्द प्रदान करते रहते थे। अब अद्वैताचार्यके सम्बन्धकी भी बातें सुनिये।

अद्वैताचार्य प्रभुसे ही अवस्थामें बड़े नहीं थे, किन्तु सम्भवतया प्रभुके पूज्य पिता श्रीजगन्नाथ मिश्रसे भी कुछ बड़े होंगे। विद्यामें तो ये सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे। प्रभुने जिनसे मन्त्र-दीक्षा ली थी वे ईश्वरपुरी आचार्यके गुरुभाई थे। इस कारण वयोवृद्ध, विद्यावृद्ध, कुलवृद्ध और सम्बन्धवृद्ध होनेके कारण प्रभु इनका गुरुकी ही तरह आदर-सत्कार किया करते थे। यह बात आचार्यके लिये असह्य थी। वे प्रभुको अपने चरणोंमें नत होकर प्रणाम करते देखकर बड़े लज्जित होते और अपनेको

बार-बार धिक्कारते। वे प्रभुसे दास्य-भावके इच्छुक थे। प्रभु उनके ऊपर दास्य-भाव न रखकर गुरु-भाव प्रदर्शित किया करते थे, इसी कारण वे दुखी होकर हरिदासजीके साथ शान्तिपुर चले गये और वहीं जाकर विद्यार्थियोंको अद्वैत-वेदान्त पढ़ाने लगे और भक्ति-शास्त्रका अभ्यास छोड़कर ज्ञानचर्चा करने लगे।

प्रभु इनके मनोगत भावोंको समझ गये। एक दिन आपने नित्यानन्दजीसे कहा—'श्रीपाद! आचार्य इधर बहुत दिनोंसे नवद्वीप नहीं पधारे, चलो शान्तिपुर चलकर ही उनके दर्शन कर आवें।' नित्यानन्दजीको भला इसमें क्या आपत्ति होनी थी? दोनों ही शान्तिपुरकी ओर चल पड़े। दोनों ही एक-से मतवाले थे, जिन्हें शरीरकी सुधि नहीं, उन्हें भला रास्तेका क्या पता रहेगा? चलते-चलते दोनों ही रास्ता भूल गये। भूलते-भटकते दोनों गङ्गाजीके किनारे ललितपुरमें पहुँचे। ललितपुरमें पहुँचकर गङ्गाजीके किनारे इन्हें एक घर दिखायी दिया। लोगोंसे पूछा—'क्योंजी, यह किसका घर है?' लोगोंने कहा—'यह घर गृहस्थी-संन्यासीका है।' यह उत्तर सुनकर प्रभु बड़े जोरोंसे खिलखिलाकर हँस पड़े और नित्यानन्दजीसे कहने लगे—'श्रीपाद! यह कैसे आश्चर्यकी बात! गृहस्थी भी और फिर संन्यासी भी। गृहस्थी-संन्यासी तो हमने आजतक कभी नहीं देखा। चलो देखें तो सही, गृहस्थी-संन्यासी कैसे होते हैं?' नित्यानन्दजी यह सुनकर उसी घरकी ओर चल पड़े। प्रभु भी उनके पीछे-पीछे चलने लगे। उस घरके द्वारपर पहुँचकर दोनोंने काषाय-वस्त्र पहिने संन्यासी-वेषधारी पुरुषको देखा। नित्यानन्दजीने उन्हें नमस्कार किया। प्रभुने संन्यासी समझकर उन्हें श्रद्धासहित प्रणाम किया। संन्यासीके सहित एक परम सुन्दर तेजस्वी तेईस वर्षके ब्राह्मण कुमारको अपने घरपर आते देखकर संन्यासीजीने उनकी यथायोग्य अभ्यर्चना की और बैठनेको आसन दिया। परस्परमें बहुत-सी बातें होती रहीं। प्रभु तो सदा प्रेमके भूखे ही

बने रहते थे। उन्होंने चारों ओर देखते हुए संन्यासीजीसे कहा—'संन्यासी महाराज ! कुछ कुटियामें हो तो जलपान कराइये।' संन्यासी-जीके घरमें दो स्त्रियाँ थीं। उनसे संन्यासीजीने जलपान लानेके लिये कहा। तबतक नित्यानन्दजीके सहित प्रभु जल्दीसे गङ्गा-स्नान करके आ गये और अपने-अपने आसनोंपर दोनों ही बैठ गये। आषाढ़का महीना था। संन्यासीजीकी स्त्री सुन्दर-सुन्दर आम और छिले हुए कटहलके कोये दो पात्रोंमें सजाकर लायीं। दो कटोरोंमें सुन्दर दुग्ध भी था। प्रभु जल्दी-जल्दी कटहल और आमोंको खाने लगे। वे संन्यासी महाशय वाममार्गी थे। यह हम पहले ही बता चुके हैं, उस समय बंगालमें वाममार्ग-पन्थका प्राबल्य था। स्त्रीने पूछा—'क्या 'आनन्द' भी थोड़ी-सी लाऊँ ?' संन्यासीजीने संकेतद्वारा उसे मना कर दिया। स्त्री भीतर चली गयी। एक बड़े आमका खाते हुए प्रभुने नित्यानन्दजीसे पूछा—'श्रीपाद ! 'आनन्द' क्या वस्तु होती है ? क्या संन्यासियोंकी भाषा भी पृथक् होती है ? या गृहस्थी-संन्यासियोंकी यह भाषा है ? तुम तो गृहस्थी-संन्यासी नहीं हो फिर भी जानते ही होगे।'

प्रभुके इस प्रश्नसे नित्यानन्दजी हँसने लगे। प्रभुने फिर पूछा—'श्रीपाद ! हँसते क्यों हो, ठीक-ठीक बताओ ? आनन्द क्या है ? कोई मीठी चीज हो तो मँगाओ, दूधके पश्चात् मीठा मुँह होगा।'

आमके रसको चूसते हुए नित्यानन्दजीने कहा—'प्रभो ! ये लोग वाममार्गी हैं। मदिराको 'आनन्द' कहकर पुकारते हैं।' यह सुनकर प्रभुको बड़ा दुःख हुआ। वे चारों ओर घिरे हुए सिंहकी भाँति देखने लगे। इतनेमें ही स्त्रीके बुलानेपर संन्यासी महाशय भीतर चले गये। उसी समय प्रभु जलपानके बीचमेंसे ही उठकर दौड़ पड़े। नित्यानन्दजी भी पीछे-पीछे दौड़े ! इन दोनोंको जलपानके बीचमें ही भागते देखकर संन्यासीजी भी इन्हें लौटानेके लिये चले। प्रभु जल्दीसे गङ्गाजीमें कूद पड़े

और तैरते हुए शान्तिपुरकी ओर चलने लगे। नित्यानन्दजी तो तैरनेके आचार्य ही थे, वे भी प्रभुके पीछे-पीछे तैरने लगे। गङ्गाजीके बीचमें ही प्रभुको आवेश आ गया। दो कोसके लगभग तैरकर ये शान्तिपुरके घाटपर पहुँचे और घाटसे सीधे ही आचार्यके घर पहुँचे। दूरसे ही हरिदासजीने प्रभुको देखकर उनकी चरण-वन्दना की, किंतु प्रभुको कुछ होश नहीं था, वे सीधे अद्वैताचार्यके ही समीप पहुँचे। उन्हें देखते ही प्रभुने कहा—'क्यों ! फिर सूखा ज्ञान बघारने लगे।' आचार्यने कहा—'सूखा ज्ञान कैसे है, ज्ञान तो सर्वश्रेष्ठ है। भक्ति तो स्त्रियोंके लिये है।' इतना सुनते ही प्रभु जोरोंसे अद्वैताचार्यजीको पीटने लगे। सभी लोग आश्चर्यके साथ इस अद्‌भुत लीलाको देख रहे थे। किसीकी भी हिम्मत नहीं होती थी कि प्रभुको इस कामसे निवारण करे। प्रभु भी बिना कुछ सोचे-विचारे बूढ़े आचार्यकी पीठपर थप्पड़-घूसे मार रहे थे। ज्यों-ज्यों मार पड़ती, त्यों-ही-त्यों अद्वैत और अधिक प्रसन्न होते। मानो प्रभु अपने प्रेमकी मारद्वारा ही अद्वैताचार्यके शरीरमें प्रेमका सञ्चार कर रहे हैं। अद्वैताचार्यके चेहरेपर दुःख, शोक या विषण्णता अणुमात्र भी नहीं दिखायी देती थी। उलटे वे अधिकाधिक हर्षोन्मत्त-से होते जाते थे।

खटपट और मारकी आवाज सुनकर भीतरसे आचार्यकी धर्मपत्नी सीतादेवी भी निकल आयीं। उन्होंने प्रभुको आचार्यके शरीरपर प्रहार करते देखा तो वे घबड़ा गयीं और अधीर होकर कहने लगीं—'हैं, हैं, प्रभु ! आप यह क्या कर रहे हैं। बूढ़े आचार्यके ऊपर आपको दया नहीं आती ?' किन्तु प्रभु किसीकी कुछ सुनते ही न थे। आचार्य भी प्रेममें विभोर हुए मार खाते जाते और नाचते-नाचते गौर-गुणगान करते जाते। इस प्रकार थोड़ी देरके पश्चात् प्रभुको मूर्छा आ गयी और वे बेहोश होकर गिर पड़े। बाह्यज्ञान होनेपर उन्होंने आचार्यको हर्षके सहित नृत्य करते

और अपने चरणोंमें लोटते हुए देखा, तब आप जल्दीसे उठकर कहने लगे—'श्रीहरि, श्रीहरि; मुझसे कोई अपराध तो नहीं हो गया ? मैंने अचेतनावस्थामें कोई चञ्चलता तो नहीं कर डाली। आप तो मेरे पितृतुल्य हैं। मैं तो भाई अच्युतके समान आपका पुत्र हूँ। अचेतनावस्थामें यदि कोई चञ्चलता मुझसे हो गयी हो, तो उसे आप क्षमा कर दें।' इतना कहकर ये चारों ओर देखने लगे। सामने सीतादेवीको खड़ी हुई देखकर आप उनसे कहने लगे—'माताजी ! बड़ी जोरकी भूख लग रही है। जल्दीसे भोजन बनाओ।' यह कहकर आप नित्यानन्दजीसे कहने लगे—'श्रीपाद ! चलो, जबतक हम जल्दीसे गङ्गास्नान कर आवें और तबतक माताजी भात बना रक्खेंगी।' इनकी बात सुनकर आचार्य, हरिदास तथा नित्यानन्दजी इनके साथ गङ्गाजीकी ओर चल पड़े। चारोंने मिलकर खूब प्रेमपूर्वक स्नान किया। स्नान करनेके अनन्तर सभी लौटकर आचार्यके घर आ गये। आचार्यके पूजा-गृहमें जाकर प्रभुने भगवान्‌के लिये साष्टाङ्ग प्रणाम किया। उसी समय आचार्य प्रभुके चरणोंमें लोट गये। आचार्यके चरणोंमें हरिदासजी लोटे। इस प्रकार आचार्यको अपने चरणोंमें देखकर प्रभु जल्दीसे कानोंपर हाथ रखते हुए उठे और अपने दाँतोंसे जीभ काटते हुए कहने लगे—'श्रीहरि,श्रीहरि, आप यह हमारे ऊपर कैसा अपराध चढ़ा रहे हैं ? हम तो आपके पुत्रके समान हैं।'

भोजन तैयार था, सभीने साथ बैठकर बड़े ही प्रेमके साथ भोजन किया। रात्रिभर नित्यानन्दजीके सहित प्रभुने आचार्यके घरपर ही निवास किया। दूसरे दिन आप गङ्गाको पार करके उस पार कालना नामक स्थानमें पहुँचे। वहाँपर परम वैष्णव गौरीदासजी घरबार छोड़कर एकान्तमें गङ्गाजीके किनारे रहकर भजन-भाव करते थे। प्रभु विचित्र वेशसे उनके पास पहुँचे। प्रभुके कंधेपर नाव खेनेका एक डाँड़ रखा

हुआ था, वे मल्लाहोंकी तरह हिलते-हिलते गौरीदासजीके समीप पहुँचे। गौरीदासजीने प्रभुकी प्रशंसा तो बहुत दिनोंसे सुन रखी थी, किन्तु उन्हें प्रभुके दर्शनोंका सौभाग्य अभीतक नहीं प्राप्त हुआ था। प्रभुका परिचय पाकर उन्होंने इनकी पूजा की और वन्य सामग्रियोंसे उनका सत्कार किया। प्रभुने उन्हें वह डाँड़ देते हुए कहा—'आप इसके द्वारा संसारसागरमें डूबे हुए लोगोंका उद्धार कीजिये और उन्हें संसारसागरसे पार उतारिये।' उसे प्रभुकी प्रसादी समझकर उन्होंने उसे सहर्ष स्वीकार किया। उनके परलोकगमनके अनन्तर उस डाँड़के अधिपति उनके पट्टशिष्य—श्रीहृदय चैतन्य महाराज हुए। उन्होंने उस डाँड़की बड़ी महिमा बढ़ायी। उनके उत्तराधिकारी महात्मा श्रीश्यामानन्दजीने तो सम्पूर्ण उड़ीसा प्रान्तमें ही गौर-धर्मका बड़ा भारी प्रचार किया। सम्पूर्ण उड़ीसा-देशमें जो आज गौर धर्मका इतना अधिक प्रचार है, उसका सब श्रेय महात्मा श्यामानन्दजीको ही है। उन्होंने लाखों उड़ीसा-प्रान्तनिवासियोंको गौर-भक्त बनाकर उन्हें भगवन्नामोपदेश किया। सचमुच प्रभु-प्रदत्त वह डाँड़ लोगोंको संसारसागरसे पार उतारनेका एक प्रधान कारण बन सका। कालनासे चलकर प्रभु फिर नवद्वीपमें ही आकर रहने लगे। आचार्य भी बीच-बीचमें प्रभुके दर्शनोंको नवद्वीप आते थे।

इसी प्रकार एक दिन श्रीवास पण्डित अपने घरमें पितृश्राद्ध करके पितरोंकी प्रसन्नताके निमित्त विष्णुसहस्रनामका पाठ कर रहे थे। उसी समय प्रभु वहाँ आ उपस्थित हुए। पाठ सुनते-सुनते ही प्रभुको वहाँ फिर नृसिंहावेश हो आया और वे नृसिंहावेशमें आकर हुंकार देने लगे और चारों ओर इधर-उधर दौड़ने लगे। प्रभुकी हुंकार और गर्जनाको सुनकर सभी लोग भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। लोगोंको भयभीत देखकर श्रीवास

पण्डितने प्रभुसे भाव-संवरण करनेकी प्रार्थना की । श्रीवासकी प्रार्थनापर प्रभु मूर्छित होकर गिर पड़े और थोड़ी देरमें प्रकृतिस्थ हो गये ।

एक बार वनमाली आचार्य नामका एक कर्मकाण्डी ब्राह्मण अपने पुत्रसहित प्रभुके पास आया और उनके पादपद्मोंमें प्रणाम करके उसने अपनी निष्कृतिका उपाय पूछा । प्रभुने उसके ऊपर कृपा प्रदर्शित करते हुए कहा—'इस कलिकालमें कर्मकाण्डकी क्रियाओंका सांगोपाङ्ग होना बड़ा दुस्साध्य है । अन्य युगोंकी भाँति इस युगमें द्रव्य-शुद्धि, शरीर-शुद्धि बन ही नहीं सकती । इसलिये इस युगमें तो बस, एकमात्र भगवन्नाम ही आधार है ।' जैसा कि सभी शास्त्रोंमें बताया गया है—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥

प्रभुके उपदेशानुसार वह कर्मकाण्डी ब्राह्मण परम भागवत वैष्णव बन गया ।

एक दिन प्रभु विष्णु-मण्डपपर बैठकर बलदेवजीके आवेशमें आकर 'मधु लाओ', 'मधु लाओ' इस प्रकार कहने लगे । नित्यानन्दजी समझ गये कि प्रभुको बलदेवजीका आवेश हो आया है, इसलिये उन्होंने एक घड़ा गङ्गाजल लाकर प्रभुके सम्मुख रख दिया । जल पीकर प्रभु जोरोंके साथ नृत्य करने लगे और जिस प्रकार बलदेवजीने यमुनाकर्षण-लीला की थी, उसीका अभिनय करने लगे । उस समय वनमाली आचार्यको प्रभुके हाथमें सोनेके हल और लांगल दिखायी देने लगे । चन्द्रशेखर आचार्यको प्रभु बलरामके रूपमें दीखने लगे ।

इस प्रकार प्रभु अपने अन्तरङ्ग भक्तोंको भाँति-भाँतिकी अलौकिक और प्रेममय लीलाएँ दिखाने लगे ।

भगवत्-भजनमें बाधक भाव

भगवन्नाम सभी प्रकारके सुखोंको देनेवाला है। इसमें अधिकारी-अनधिकारीका कोई भी भेद-भाव नहीं। सभी वर्णके, सभी जातिके, सभी प्रकारके स्त्री-पुरुष भगवन्नामका सहारा लेकर भगवान्के पाद-पद्मोंतक पहुँच सकते हैं। देश, काल, स्थान, विधि तथा पात्रापात्रका भगवन्नाम-में कोई नियम नहीं। सभी देशोंमें, सभी समयमें, सभी स्थानोंमें शुद्ध-अशुद्ध कैसी भी अवस्थामें हो, चाहे भले ही जप करनेवाला बड़ा भारी दुराचारी ही क्यों न हो, भगवन्नाममें इन बातोंका भेदभाव नहीं। नाम-जप तो सभीको, सभी अवस्थाओंमें कल्याणकारी ही है। फिर भी भगवन्नाममें

दश बड़े भारी अपराध* बताये गये हैं। पूर्वजन्मोंके शुभकर्मोंसे, महात्माओंके सत्सङ्गसे अथवा भगवत्कृपासे जिसकी भगवन्नाममें निष्ठा जम गयी हो, उसे बड़ी सावधानीके साथ इन दश अपराधोंसे बचे रहना चाहिये। महाप्रभु अपने सभी भक्तोंको नामापराधसे बचे रहनेका सदा उपदेश करते रहते थे। वे भक्तोंकी सदा देख-रेख रखते। किसी भी भक्तको किसीकी निन्दा करते देखते, तभी उसे सचेत करके कहने लगते—'देखो, तुम भूल कर रहे हो। भगवद्भजनमें दूसरोंकी निन्दा करना तथा भक्तोंके प्रति द्वेषके भाव रखना महान् पाप है। जो अभक्त हैं, उनकी उपेक्षा करो, उनके सम्बन्धमें कुछ सोचो ही नहीं। उनसे अपना सम्बन्ध ही मत रखो और जो भगवद्भक्त हैं, उनकी चरण-रजको सदा अपने सिरका आभूषण समझो। उसे अपने शरीरका सुन्दर सुगन्धित अङ्गराग समझकर सदा भक्तिपूर्वक शरीरमें मला करो।' इसीलिये प्रभुके भक्तोंमें आपसमें बड़ा ही भारी स्नेह था। भक्त एक दूसरेको देखते ही आपसमें लिपट जाते। कोई किसीके पैरोंको ही पकड़ लेता, कोई किसीकी चरण-धूलिको ही अपने मस्तकपर मलने लगता और कोई भक्तको दूरसे ही देखकर धूलिमें लोटकर साष्टाङ्ग प्रणाम ही करने लगता। भक्तोंकी शिक्षाके निमित्त वे भगवन्नामापराधकी बड़ी भारी भर्त्सना करते और जबतक जिसके समीप वह अपराध हुआ है,

* (१) सत्पुरुषोंकी निन्दा, (२) भगवन्नामोंमें भेद-भाव, (३) गुरुका अपमान, (४) शास्त्र-निन्दा, (५) भगवन्नाममें अर्थवाद, (६) नामका आश्रय ग्रहण करके पापकर्मोंमें प्रवृत्त होना, (७) धर्म, व्रत, जप आदिके साथ भगवन्नामकी तुलना करना, (८) जो भगवन्नामको सुनना न चाहते हों उन्हें नामका उपदेश करना, (९) नामका माहात्म्य श्रवण करके नाममें प्रेम न होना, (१०) अहंता-ममता तथा विषयभोगोंमें लगे रहना—ये दश नामापराध हैं।

उसके समीप क्षमा न करा लेते तबतक उस अपराधीके अपराधको क्षमा हुआ ही नहीं समझते थे। गोपाल चापालने श्रीवास पण्डितका अपराध किया था, इसी कारण उसके सम्पूर्ण शरीरमें गलित कुष्ठ हो गया था, वह अपने दुःखसे दुखी होकर प्रभुके शरणापन्न हुआ और अपने अपराधको स्वीकार करते हुए उसने क्षमा-याचनाके लिये प्रार्थना की। प्रभुने स्पष्ट कह दिया—'इसकी एक ही ओषधि है, जिन श्रीवास पण्डितका तुमने अपराध किया है, उन्हींके चरणोदकका पान करो तो तुम्हारा अपराध क्षमा हो सकता है। मुझमें वैष्णवापराधीको क्षमा करनेकी सामर्थ्य नहीं है।' गोपाल चापालने ऐसा ही किया। श्रीवासके चरणोदकको निष्कपट भावसे प्रेमपूर्वक पीनेहीसे उसका कुष्ठ चला गया।

नामापराधी चाहे कोई भी हो प्रभु उसीको यथोचित दण्ड देते और अधिकारी हुआ तो उसका प्रायश्चित भी बताते थे। यहाँतक कि अपनी जननी श्रीशचीदेवीके अपराधको भी उन्होंने क्षमा नहीं किया और जबतक जिनका अपराध हुआ था, उनसे क्षमा नहीं करा ली तबतक उनपर कृपा ही नहीं की।

बात यह थी कि महाप्रभुके ज्येष्ठ भ्राता विश्वरूपजी अद्वैताचार्यजीके ही पास पढ़ा करते थे। वे आचार्यको ही अपना सर्वस्व समझते और सदा उनके ही समीप बने रहते थे, केवल रोटी खानेभरके लिये घर जाते थे। अद्वैताचार्य उन्हें 'योगवाशिष्ठ' पढ़ाया करते थे। वे बाल्यकालसे ही सुशील, सदाचारी, मेधावी तथा संसारी विषयोंसे एकदम विरक्त थे। योगवाशिष्ठके श्रवणमात्रसे उनके हृदयका छिपा हुआ त्याग-वैराग्य एकदम उभड़ पड़ा और वे सर्वस्व त्यागकर परिव्राजक बन गये। अपने सर्वगुणसम्पन्न प्रिय पुत्रको असमयमें गृह त्यागकर सदाके लिये चले जानेके कारण माताको अपार दुःख हुआ और उसने विश्वरूपके वैराग्यका मूल कारण अद्वैताचार्यको

मूल कारण अद्वैताचार्यको ही समझा। वात्सल्यप्रेमके कारण भूली हुई भोली-भाली माताने सोचा—'अद्वैताचार्यने ही ज्ञानकी पोथी पढ़ा-पढ़ाकर मेरे प्राणप्यारे पुत्रको परिव्राजक बना दिया।' जब माता बहुत रुदन करने लगी और अद्वैताचार्यजीके समीप भाँति-भाँतिका विलाप करने लगी तब अद्वैताचार्यजीने यों ही बातों-ही-बातोंमें समझाते हुए कह दिया था—'शोक करनेकी क्या बात है। विश्वरूपने कोई बुरा काम थोड़े ही किया है, उसने तो अपने इस शुभ काममें अपने कुलको आगे-पीछेकी २१ पीढ़ियोंको तार दिया। हम तो समझते हैं पढ़ना-लिखना उसीका सार्थक हुआ। जिन्हें पोथी पढ़ लेनेपर भी ज्ञान नहीं होता, वे पठित-मूर्ख हैं। ऐसे पुस्तकके कीड़े बने हुए पुरुष पुस्तक पढ़ लेनेपर भी उसके असली मर्मसे वञ्चित ही रहते हैं।' बेचारी माताके तो कलेजेका टुकड़ा निकल गया था, उसे ऐसे समयमें ये इतनी ऊँची ज्ञानकी बातें कैसे प्रिय लग सकती थीं। इन बातोंसे उसके मनमें इन्हीं भावोंका दृढ़ निश्चय हो गया कि विश्वरूपके गृहत्यागमें आचार्यकी जरूर सम्मति है। वह आचार्यसे अत्यधिक स्नेह करता था, इनकी आज्ञाके बिना वह जा ही नहीं सकता। इन भावोंको माताने मनमें ही छिपाये रखा। किसीके सामने इन्हें प्रकट नहीं किया।

अब जब निमाई भी आचार्यके संसर्गमें अधिक रहने लगे और आचार्य ही सबसे अधिक भगवद्भावसे इनकी पूजा-स्तुति करने लगे, तो बेचारी दुःखिनी मातासे अब नहीं रहा गया। कहावत है—'दूधका जला छाछको भी फूँक-फूँककर पीता है।' माताका हृदय पहलेसे ही घायल बना हुआ था। विश्वरूप उसके हृदयमें पहले ही एक बड़ा भारी घाव कर गये थे, वह अभी पुरने भी नहीं पाया था कि निमाई भी उसीके पथका अनुसरण करते हुए दिखायी देने लगे। निमाई अब भक्तोंको छोड़कर एक क्षणभरके लिये भी संसारी कामोंको करना पसंद नहीं

करते। वे विष्णुप्रियाजीसे अब बातें ही नहीं करते हैं, सदा भक्तमण्डली-में बैठे हुए श्रीकृष्ण-कथा ही कहते-सुनते रहते हैं, नातीका मुख देखनेके लिये उतावली बैठी हुई माताको अपने पुत्रका ऐसा बर्ताव रुचिकर प्रतीत नहीं हुआ। इसके मूलमें भी उसे आचार्य अद्वैतका ही हाथ दीखने लगा। माता अब अपने मनोगत भावोंको अधिक न छिपा सकीं। उनकी मनोव्यथा लोगोंसे बातें करते-करते आप-से-आप ही हृदयको फोड़कर बाहर निकल पड़ती। वे आँसू बहाते-बहाते अधीर होकर कहने लगतीं—'इन वृद्ध आचार्यको मुझ दुःखिनी विधवाके ऊपर दया भी नहीं आती। मेरे एक पुत्रको तो इन्होंने संन्यासी बना दिया। मेरे पति मुझे बीचमें ही धोखा देकर सदाके लिये चल बसे। मुझ बिल-खती हुई दुःखिनीके ऊपर उन्हें तनिक भी दया नहीं आयी। अब मेरे जीवनका सहारा, मुझ अन्धीकी एकमात्र आधार लकड़ी यह निमाई ही है। इसे छोड़कर मेरे लिये सभी संसार सूना-ही-सूना है। मेरे आगे-पीछे बस यही एक आश्रय है, इसे भी आचार्य संन्यासी बनाना चाहते हैं। सदा इसे लेकर कीर्तन ही करते रहते हैं। मेरा निमाई कितना सीधा है। अद्वैताचार्यने और उनके साथी भक्तोंने उसे ईश्वर बता-बताकर विरक्त बना दिया है, वह घरकी ओर कुछ ध्यान ही नहीं देता। सदा भक्तोंके ही साथ घूमा करता है।'

माताकी इन बातोंसे श्रीवास आदि भक्तोंको तथा अद्वैताचार्यजीको मन-ही-मन कुछ दुःख होता था। प्रभु भी भक्तोंके मनोभावोंको ताड़ गये। भक्तोंको शिक्षा देनेके निमित्त प्रभुने माताके ऊपर कुछ क्रोध प्रकट करते हुए उस वैष्णव-निन्दारूपी पापका प्रायश्चित्त कराया।

एक दिन प्रभु भगवदावेशमें भगवन्मूर्तियोंको एक ओर हटाकर भगवान्‌के सिंहासनपर आरूढ़ हुए और उपस्थित सभी भक्तोंसे वरदान माँगनेके लिये कहा। भक्तोंने अपने-अपने इच्छानुसार किसीने अपने

पिताकी दुष्टता छुड़ानेका, किसीने स्त्रीकी बुद्धि शुद्ध हो जानेका, किसीने पुत्रका, और किसीने भगवद्भक्तिका वर माँगा। प्रभुने आवेशमें ही आकर सभीको उन-उनका अभीष्ट वरदान दिया। उसी समय श्रीवास पण्डितने अति दीन भावसे कहा—'प्रभो! ये शचीमाता सदा दुःखिनी ही बनी रहती हैं। ये दुःखके कारण सदा अश्रु ही बहाती रहती हैं। भगवन्! इनके ऊपर भी ऐसी कृपा होनी चाहिये कि इनका शोक-सन्ताप सब दूर हो जाय।'

प्रभुने उसी प्रकार सिंहासनपर बैठे-ही-बैठे भगवदावेशमें ही कहा—'शचीमातापर कृपा कभी नहीं हो सकती। इसने वैष्णवापराध किया है। अपने अपराध करनेवालेको तो मैं क्षमा कर भी सकता हूँ, किन्तु वैष्णवोंका अपराध करनेवालेको क्षमा करनेकी मुझमें सामर्थ्य नहीं।'

श्रीवास पण्डितने अत्यन्त दीन भावसे कहा—'प्रभो! भला यह भी कभी हो सकता है कि जिस माताने आपको गर्भमें धारण किया है, उसका अपराध ही क्षमा न हो सके। आपको गर्भमें धारण करनेसे तो ये जगज्जननी बन गयीं। इनके लिये क्या अपना और क्या पराया? सभी तो इनके पुत्र हैं। जिसे चाहें जो कुछ ये कह सकती हैं।'

प्रभुने कहा—'कुछ भी हो, वैष्णवोंका अपराध करनेवाला चाहे कोई भी हो उसकी निष्कृति नहीं हो सकती। साक्षात् देवाधिदेव महादेवजी भी वैष्णवोंका अपराध करनेपर तत्क्षण ही नष्ट हो सकते हैं।'

श्रीवास पण्डितने कहा—'प्रभो! कुछ भी तो इनके अपराध-विमोचनका उपाय होना चाहिये।'

प्रभुने कहा—'शचीमाताका अपराध अद्वैताचार्यके प्रति है। यदि आचार्यकी चरण-धूलि माता सिरपर चढ़ावे और आचार्य ही इसे हृदयसे क्षमा कर दें तब यह कृपाकी अधिकारिणी बन सकती है।'

उस समय आचार्य दूसरे स्थानमें थे, सभी भक्त आचार्यके समीप गये और वहाँ जाकर उन्होंने सभी वृत्तान्त कहा। प्रभुकी बातें सुनकर आचार्य प्रेममें विभोर होकर अश्रु-विमोचन करने लगे। वे रोते-रोते कहने लगे—'यही तो प्रभुकी भक्तवत्सलता है। भला, जगन्माता शचीदेवीका अपराध हो ही क्या सकता है? यह तो प्रभु हमलोगोंको शिक्षा देनेके लिये इस लीलाका अभिनय करा रहे हैं। यदि प्रभुकी ऐसी ही इच्छा है और इस उपदेशप्रद अभिनयका प्रधान पात्र प्रभु मुझे ही बनाना चाहते हैं, तो मैं हृदयसे कहता हूँ, माताके प्रति मेरे मनमें किसी प्रकारका बुरा भाव नहीं है। यदि आप मुझे प्रभुकी आज्ञासे 'क्षमा कर दी' ऐसा कहनेके लिये ही विवश करते हैं तो मैं कहे देता हूँ। वैसे तो माताने मेरा कोई अपराध किया ही नहीं है, यदि प्रभुकी दृष्टिमें यह अपराध है तो मैं उसे हृदयसे क्षमा करता हूँ। रही चरण-धूलिकी बात सो शचीमाता तो जगद्वन्द्य हैं। उनकी चरण-धूलि ही भक्तोंके शरीरका अङ्गराग है। भला, माताको मैं अपने पैर कैसे छुआ सकता हूँ।' इस प्रकार भक्तोंमें झगड़ा हो ही रहा था कि इतनेमें ही शचीदेवी भी वहाँ आ पहुँचीं और उन्होंने जल्दीसे अद्वैताचार्यकी चरण-धूलि अपने मस्तकपर चढ़ा ली। इस बातसे भक्तोंकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। वे आनन्दके साथ नृत्य करने लगे। भक्तोंमें एक दूसरेके प्रति जो कुछ थोड़ा-बहुत मनोमालिन्य था, वह इस घटनासे एकदम समूल नष्ट हो गया और भक्त परस्पर एक दूसरेको प्रेमसे गले लगा-लगाकर आलिंगन करने लगे।

इसी प्रकार नवद्वीपमें एक देवानन्द पण्डित थे। वे वैसे तो बड़े भारी पण्डित थे, शास्त्रोंका ज्ञान उन्हें यथावत् था। श्रीमद्भागवतके पढ़ानेके लिये दूर-दूर तक इनकी ख्याति थी। बहुत दूर-दूरसे विद्यार्थी इनके पास श्रीमद्भागवत और गीता पढ़नेके लिये आते थे। ये स्वभावके बुरे नहीं थे, संसारी सुखोंसे उदासीन और विरक्त थे किन्तु अभीतक

इनके हृदयमें प्रेमका अंकुर उदित नहीं था। हृदयमें प्रेमका बीज तो पड़ा हुआ था, किन्तु श्रद्धा और साधु-कृपारूपी जलके बिना क्षेत्र शुष्क ही पड़ा था। सूखे खेतमें बीज अङ्कुरित कैसे हो सकता है, जबतक कि वह सुन्दर वारिसे सींचा न जाय? दयार्द्र-हृदय गौराङ्गने एक दिन नगर-भ्रमण करते समय उनके ऊपर भी कृपा की। उनके ऊपर वाक्-प्रहार करके उनके सूखे और जमे हुए हृदयरूपी क्षेत्रको पहले तो जोत दिया, फिर कृपारूपी जलसे सींचकर उसे स्निग्ध और उत्पन्न होने योग्य बना दिया।

देवानन्दको श्रीमद्भागवत पढ़ाते देखकर प्रभु क्रोधित भावसे कहने लगे—'ओ पण्डित! श्रीमद्भागवतके अर्थोंका अनर्थ क्यों किया करता है? तू भागवतके अर्थोंको क्या जाने? श्रीमद्भागवत तो साक्षात् श्रीकृष्णका विग्रह ही है। जिनके हृदयमें प्रेम नहीं, भक्ति नहीं, साधु-महात्मा और ब्राह्मण-वैष्णवोंके प्रति श्रद्धा नहीं, वह श्रीमद्भागवतकी पुस्तकके छूनेका अधिकारी ही नहीं। भागवत, गङ्गाजी, तुलसी और भगवद्भक्त—ये भगवान्के रूप ही हैं। जो शुष्क-हृदयके हैं, जिनके अन्तःकरणमें भक्ति नहीं, वे इनके द्वारा क्या लाभ उठा सकते हैं? वैसे ही ज्ञानकी बातें बघारता रहता है या कुछ समझता भी है? ऐसे पढ़नेसे क्या लाभ? ला तेरी पुस्तकको फाड़कर श्रीगङ्गाजीके प्रवाहमें प्रवाहित कर दूँ।' इतना कहकर प्रभु भावावेशमें उनकी पुस्तक फाड़नेके लिये दौड़े। भक्तोंने यह देखकर प्रभुको पकड़ लिया और शान्त किया। प्रभुको भावावेशमें देखकर भक्त उन्हें आगे ले गये। लौटते हुए प्रभु फिर देवानन्दके स्थानपर आये। उस समय प्रभु भावावेशमें नहीं थे, उन्होंने देवानन्दजीको वह बात याद दिलायी, जब वे एक बार श्रीमद्भागवतका पाठ पढ़ा रहे थे और श्रीवास पण्डित भी पाठ सुनने आये थे। जिस श्रीमद्भागवतके अक्षर-अक्षरमें ठूँस-ठूँसकर प्रेमरस भरा हुआ है, ऐसी भागवतका जब श्रीवासजीने पाठ सुना तो वे प्रेममें

बेहोश होकर मूर्छित हो गये, आपके भक्तोंने उन्हें उठाकर बाहर डाल दिया था और आपने इसमें कुछ भी आपत्ति नहीं की। महाभागवत श्रीवास पण्डितके भावोंको जब आपने ही नहीं समझा तब आपके शिष्य तो समझते ही क्या ? आपने उस समय एक भगवद्भक्तका बुरी तरहसे तिरस्कार कराया, यह आपके ऊपर अपराध चढ़ा।

देवानन्द विरक्त थे, विद्वान् थे, शास्त्रज्ञ थे, फिर भी उन्होंने प्रभुके क्रोधयुक्त वचनोंका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। भगवत्कृपासे उनकी बुद्धि शुद्ध हो गयी। उन्हें अपनी भूलका अनुभव होने लगा। वे प्रभुके शरणापन्न हुए और उन्होंने अपने पूर्वके भूल तथा अज्ञानमें किये जानेवाले अपराधके लिये श्रीवास पण्डितसे क्षमा-याचना की। जब प्रभुकी उनके ऊपर कृपा हो गयी, तब उनके भगवद्भक्त होनेमें क्या देर थी ? वे उस दिनसे परमभक्त बन गये।

प्रभु अपने भक्तोंको भजनकी प्रणाली और भजन किस प्रकारके बनकर करना चाहिये इसकी शिक्षा सदा दिया करते थे। एक दिन आप भक्तोंको भगवन्नामका माहात्म्य बता रहे थे। माहात्म्य बताते हुए उन्होंने कहा—'भक्तको अपने लिये तृणसे भी नीचा समझना चाहिये और वृक्षोंसे भी अधिक सहनशील। स्वयं तो कभी मानकी इच्छा करे नहीं, किन्तु दूसरोंको सदा सम्मान प्रदान करते रहना चाहिये। इस प्रकार होकर निरन्तर भगवन्नामोंका ही चिन्तन-स्मरण करते रहना चाहिये। सबसे अधिक सहनशीलतापर ध्यान देना चाहिये। जिसमें सहनशीलता नहीं, वह चाहे कितना भी बड़ा विद्वान्, तपस्वी और पण्डित ही क्यों न हो, कभी भी भगवत्कृपाका अधिकारी नहीं बन सकता। सहनशीलताका पाठ वृक्षोंसे लेना चाहिये। वृक्ष किसीसे कटु वचन नहीं बोलते, उन्हें जो ईंट-पत्थर मारता है तो उसपर रोष न करके उलटे प्रहार करनेवालेको पके हुए

फल ही देते हैं। भूख-प्यास लगनेपर भोजन तथा जलकी याचना नहीं करते। सदा एकान्तमें ही रहते हैं। इसी प्रकार भक्तको जनसंसद्से पृथक् रहकर किसीसे किसी बातकी याचना न करते हुए अमानी और सहनशील बनकर भगवत्-चिन्तन करते रहना चाहिये।'

इसके अनन्तर आपने—

हरेर्नाम हरेर्नाम हरेर्नामैव केवलम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥*

इस श्लोककी व्याख्या भक्तोंको बतायी। तीन बार मना करनेसे यह अभिप्राय है कि, कलियुगमें इससे सरल और सुगम उपाय कोई दूसरा है ही नहीं।

एक हृदयहीन जड़-बुद्धिवाला विद्यार्थी भी प्रभुकी इस व्याख्याको सुन रहा था। उसने कहा—'यह तो सब शास्त्रोंमें अर्थवाद है। नाम-की प्रशंसामें वैसे ही बहुत-सी चढ़ा-बढ़ाकर बातें कह दी हैं। वास्तवमें कोरे नामसे कुछ नहीं होता। लोगोंकी नाममें प्रवृत्ति हो, इसलिये ऐसे वाक्य कह दिये हैं।' इतना सुनते ही प्रभुने अपने दोनों कान बंद कर लिये और 'श्रीहरि' 'श्रीहरि' कहकर वे सभी भक्तोंसे कहने लगे—'भगवन्नाममें अर्थवाद कहनेवालेको पातक लगता ही है, सुननेवालेको भी पाप होता है। इसलिये चलो हम सभी गङ्गाजीमें सचैल स्नान करें तभी इस भगवन्नाममें अर्थवाद सुननेवाले पापसे मुक्त हो सकेंगे।' यह कहकर प्रभु भक्तोंके सहित गङ्गास्नानके लिये चले गये। सभी भक्तोंने श्रद्धा-भक्तिके सहित सुरसरिके सुन्दर-सुशीतल नीरमें स्नान किया। स्नान कर लेनेके अनन्तर प्रभुने सभी भक्तोंके सम्मुख भक्तिकी महिमाका वर्णन

---

* कलियुगमें केवल हरिनाम ही सार है। जीवोंके उद्धारके निमित्त भगवन्नामको छोड़कर कलिकालमें दूसरा कोई और सुगम उपाय है ही नहीं।

किया। प्रभु भक्तोंको लक्ष्य करके उन्हें समझाते हुए कहने लगे–'भाई! तुम्हीं सोचो, जो अखिलकोटि ब्रह्माण्डनायक हैं, जिनके एक-एक रोम-कूपमें असंख्यों ब्रह्माण्ड समा सकते हैं, उन्हें कोई योगके ही द्वारा प्राप्त करना चाहे तो, वे उसके वशमें केवल श्वास रोकनेसे ही कैसे आ सकते हैं? कोई कहे कि हम तत्त्वोंकी संख्या कर-करके उनका पता लगा लेंगे, तो यह उसकी कोरी मूर्खता है। भला, जो बुद्धिसे अतीत हैं जिनके लिये चारों वेद नेति-नेति कहकर कथन कर रहे हैं उनका ज्ञान सांख्यके द्वारा हो ही कैसे सकता है? अब रही धर्मकी बात, सो धर्म तो उलटा बन्धनका ही हेतु है। धर्मसे तो तीनों लोकोंके विषय-सुखोंकी ही प्राप्ति हो सकती है। वह भी एक प्रकारसे सुवर्णकी बेड़ी ही है। कोई जपसे अथवा केवल त्यागसे ही उन्हें प्रसन्न करना चाहे तो वे कैसे प्रसन्न हो सकते हैं? त्याग कोई कर ही क्या सकता है? उनकी कृपाके बिना कुछ भी नहीं हो सकता। भक्तिसे हीन होकर जप, तप, पूजा, पाठ, यज्ञ, दान, अनुष्ठान आदि कैसे भी सत्कर्म क्यों न किये जायँ, सभी व्यर्थ हैं। इस बातको भगवान्‌ने उद्धवसे स्वयं ही कहा है—

न साधयति मां योगो न सांख्यं धर्म उद्धव।
न स्वाध्यायस्तपस्त्यागो यथा भक्तिर्ममोर्जिता॥*

(श्रीमद्भा० ११।१४।२०)

इस प्रकार भक्तोंको भगवद्भक्तिकी शिक्षा देते हुए प्रभु सभीको अपूर्व सुख और आनन्द पहुँचाते हुए नवद्वीपमें भाँति-भाँतिकी लीलाएँ करने लगे।

---

* हे उद्धव! जिस प्रकार मेरे प्रति बढ़ी हुई भक्ति मुझे वशमें कर सकती है उस प्रकार अष्टाङ्गयोग, सांख्य-शास्त्रोंका अध्ययन, धर्म, स्वाध्याय तथा तप आदि क्रियाएं मुझे वश करनेमें समर्थ नहीं हो सकतीं।

नदियामें प्रेम-प्रवाह और काजीका अत्याचार

नामैकं यस्य वाचि स्मरणपथगतं श्रोत्रमूलं गतं वा
शुद्धं वाशुद्धवर्णं व्यवहितिसहितं तारयत्येव सत्यम् ।
तच्चेद्देहद्रविणजनतालोभपाखण्डमध्ये
निक्षिप्तं स्यान्न फलजनकं शीघ्रमेवात्र विप्र ॥*

(पद्मपुराण)

प्रेम ही 'जीवन' है । जिस जीवनमें प्रेम नहीं, वह जीवन नहीं जंजाल है । जहाँ प्रेम है, वही वास्तविक प्रेमकी छटा दृष्टिगोचर होती है । कहीं प्रेमियोंका सम्मिलन देखिये, प्रेमियोंकी वार्ता सुनिये अथवा प्रेमियोंके हास-परिहास, खान-पान अथवा उनके मेलों-उत्सवोंमें सम्मिलित हूजिये, तब आपको पता चलेगा कि वास्तविक जीवन कैसा होता है और उसमें कितना मजा है, कितनी मिठास है । उस मिठासके सामने संसारके जितने मीठे कहे जानेवाले पदार्थ हैं, सभी फीके-फीके से

---

* जिसकी जिह्वासे एक बार भगवान्के मधुर नामका उच्चारण हो गया है, या स्मरणके द्वारा हृदयमें स्फुरित हो गया है अथवा कानसे सुन ही लिया है, फिर चाहे उस नामका उच्चारण शुद्ध हुआ हो या अशुद्ध अथवा व्यवधानसहित हो तो भी उस नामके उच्चारण, स्मरण अथवा श्रवणसे मनुष्य अवश्य ही तर जाता है। किन्तु उस नामका व्यवहार शुद्ध भावनासे होना चाहिये । यदि शरीर, धन, स्त्री, लोभ अथवा पाखण्डके लिये नामका आश्रय लिया जायगा तो (नाम लेना व्यर्थ तो जायगा नहीं उससे फल तो अवश्य ही होगा किन्तु) वह शीघ्र फल देनेवाला न हो सकेगा ।

प्रतीत होने लगते हैं। किसी भाग्यवान् पुरुषके शरीरमें ही प्रेम प्रकट होता है और उसकी छत्रछायामें जितने भी प्राणी आकर आश्रय ग्रहण करते हैं वे सभी पावन बन जाते हैं, उन्हें भी वास्तविक जीवनका सुख मिल जाता है। प्रेमी जिस स्थानमें निवास करता है, वह भूमि पावन बन जाती है, जिस स्थानमें वह क्रीड़ा करता है, वह स्थान तीर्थ बन जाता है, और जिन पुरुषोंके साथ वह लीला करता है, वे बड़भागी पुरुष भी सदाके लिये अमर बन जाते हैं। जिस नवद्वीपमें प्रेमावतार गौरचन्द्र उदित होकर अपनी सुखद शीतल किरणोंके प्रकाशसे संसारी तापोंसे आक्रान्त प्राणियोंको शीतलता प्रदान कर रहे हों उस भाग्यवती नगरीके उस समयके आनन्दका वर्णन कर ही कौन सकता है? महाप्रभुके कीर्तनारम्भसे सम्पूर्ण नवद्वीप एक प्रकारसे आनन्दका घर ही बन गया था। वहाँ हर समय श्रीकृष्ण-कीर्तनकी सुमधुर ध्वनि ही सुनायी पड़ती थी।

जगाई-मधाईके उद्धारसे लोग संकीर्तनका महत्त्व समझने लगे। हजारों लोग सदा प्रभुके दर्शनोंके लिये आते। वे प्रभुके लिये भाँति-भाँतिकी भेंटें लाते। कोई तो सुन्दर पुष्पोंकी मालाएँ लाकर प्रभुके गलेमें पहिनाता, कोई स्वादिष्ट फलोंको ही उपहारस्वरूप प्रभुके सामने रखता। बहुत-से सुन्दर-सुन्दर पकवान अपने घरोंसे लाकर प्रभुको भेंट करते। प्रभु उनमेंसे थोड़ा-सा लेकर सभीके मनको प्रसन्न कर देते सभी आकर पूछते—'प्रभो! हमलोग भी कुछ कर सकते हैं? क्या हमलोगोंको भी कृष्णकीर्तनका अधिकार है?'

प्रभु कहते—'कृष्ण-कीर्तन सब कोई कर सकता है। इसमें तो अधिकारी-अनधिकारीका प्रश्न ही नहीं। भगवन्नामके तो सभी अधिकारी हैं। नाममें विधि-निषेध अथवा ऊँच-नीचका विचार ही नहीं। आपलोग प्रेमपूर्वक श्रीकृष्ण-कीर्तन कर सकते हैं।'

इसपर लोग पूछते—'प्रभो ! हमलोग तो जानते भी नहीं कीर्तन कैसे किया जाता है। हमें आजतक संकीर्तनकी शिक्षा ही नहीं मिली और न हमने इसकी पद्धति किसी पुस्तकमें ही पढ़ी।'

प्रभु हँसकर कहने लगते—'नाम-संकीर्तनमें सीखना ही क्या है, यह तो बड़ा सरल मार्ग है। इसके लिये विज्ञता अथवा बहुज्ञताकी आवश्यकता नहीं। सभी कोई इसे कर सकते हैं। देखो, इस प्रकार ताली बजाकर—

हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन॥

इस मन्त्रको या और किसी मन्त्रको जिसमें भगवान्‌के नामोंका ही कीर्तन हो, गाते गये, दस-पाँच अपने साथी इकट्ठे कर लिये और सभी मिलकर नाम-संकीर्तन करने लगे। तुमलोग नियमपूर्वक महीनेभरतक करो तो सही, फिर देखना कितना आनन्द आता है।' लोग प्रभुके मुखसे भगवन्नाम-माहात्म्य और कीर्तनकी महिमा सुनते और वहीं उन्हें दिखा-दिखाकर संकीर्तन करने लगते। जहाँ वे भूल करते प्रभु उन्हें फौरन बता देते। इस प्रकार उनसे जो भी पूछने आते, उन सभीको भगवन्नामसंकीर्तनका ही उपदेश करते। लोग महाप्रभुकी आज्ञा शिरोधार्य करके अपने-अपने घरोंको चले आते और दूसरे ही दिनसे संकीर्तन आरम्भ कर देते। पहिले तो लोग ताली बजा-बजाकर ही कीर्तन करते थे, किन्तु ज्यों-ज्यों उन्हें आनन्द आने लगा, त्यों-ही-त्यों उनके संकीर्तनके साथ खोल-करताल तथा झाँझ-मृदंग आदि वाद्योंका भी समावेश होने लगा। एकको कीर्तन करते देखकर दूसरेको भी उत्साह होने लगा और उसने भी दस-पाँच लोगोंको इकट्ठा करके अपनी एक छोटी संकीर्तन-मण्डली बना ली और दोनों समय नियमसे संकीर्तन करने लगे। इस प्रकार प्रत्येक मुहल्लेमें बहुत-सी संकीर्तन-मण्डलियाँ स्थापित हो गयीं। अच्छे-अच्छे घरोंके लोग सन्ध्या-समय

अपने सभी परिवारवालोंको साथ लेकर संकीर्तन करते। जिसमें-स्त्री-पुरुष, छोटे-बड़े सभी सम्मिलित होते।

भक्त सदा आनन्दमें छके-से रहते। परस्पर एक दूसरेका आलिङ्गन करते। दो भक्त जहाँ भी रास्तेमें मिलते, वहीं एक दूसरेसे लिपट जाते। कोई दूसरेको साष्टाङ्ग प्रणाम ही करते, वह जल्दीसे उनकी चरण-रज लेनेको दौड़ता। कभी दस-बीस भक्त मिलकर संकीर्तनके पदोंका ही गायन करने लगते। कोई बाजारमें सबके सामने नृत्य करते ही निकलते। इस प्रकार भक्तिरूपी नदियामें सदा प्रेमकी तरङ्गें ही उठती रहतीं। रात्रि-दिन शंख, घड़ियाल, तुरही, खोल, करताल, झाँझ, मृदङ्ग तथा अन्यान्य प्रकारके वाद्योंसे सम्पूर्ण नवद्वीप नगर गूँजता ही रहता।

महाप्रभु भक्तोंको साथ लेकर रात्रिभर संकीर्तन ही करते रहते। प्रातःकाल घंटे-दो-घंटेके लिये सोते। उठते ही भक्तोंको साथ लेकर गङ्गा-स्नान करनेके लिये चले जाते। भक्तोंको तो लोगोंने सदासे ही 'बावले' की उपाधि दे रखी है। इन बावले भक्तोंका स्नान भी विचित्र प्रकारका होता। ये लोग सदा अफीमचीकी तरह पिनकमें ही बने रहते। मद्यपके समान नशेमें ही झूमते रहते और पागलोंके समान ही बड़बड़ाया करते स्नान करते-करते किसीने किसीकी धोती ही फेंक दी है, तो कोई किसीके ऊपर जल ही उलीच रहा है। कोई तैरकर उस पार जा रहा है, तो कोई प्रवाहके विरुद्ध ही तैरनेका दुस्साहस कर रहा है। इस प्रकार घंटोंमें इनका स्नान समाप्त होता। तब प्रभु सब भक्तोंके सहित घर आते। देवपूजन, तुलसीपूजन आदि कर्मोंको करते। तबतक विष्णुप्रिया भोजन बनाकर तैयार कर लेतीं। जल्दीसे आप भोजनोंपर बैठ जाते। भक्तोंको बिना साथ लिये इन्हें भोजन अच्छा ही नहीं लगता था, इसलिये दस-पाँच भक्त सदा इनके साथ ही भोजन करते। भोजन करते-करते कभी तो

मातासे कहते-'अम्मा ! तेरी बहूके हाथमें जाने क्या जादू है, सभी चीजोंमें बड़ी भारी मिठास आ जाती है। और तो और, साग भी तो मीठा लगता है।' पास बैठे हुए भक्तसे कहने लगते—'क्योंजी ! ठीक है न ? तुम्हें सागमें भी मिठास मालूम पड़ती है ?' यह सुनकर सभी भक्त हँसने लगते। विष्णुप्रियाजी भी मन-ही-मन मुस्कराने लगतीं।

भोजनके अनन्तर आप थोड़ी देर विश्राम करते। तीसरे पहर फिर धीरे-धीरे सभी भक्त प्रभुके घरपर आकर एकत्रित हो जाते। तब प्रभु उनके साथ श्रीकृष्ण-कथाएँ कहने लगते। कभी कोई श्रीमद्भागवतका ही प्रकरण छिड़ गया है। कभी कोई 'गीतगोविन्द' के पदकी ही व्याख्या कर रहा है। किसी दिन पद्मपुराणकी ही कथा हो रही है, इस प्रकार नाना शास्त्रोंकी चर्चा प्रभुके यहाँ होती रहती। सायंकालके समय भक्तों-को साथ लेकर प्रभु नगर-भ्रमण करनेके लिये निकलते। इस प्रकार इनका सभी समय भक्तोंके सहवासमें ही व्यतीत होता। क्षणभर भी भक्तोंका पृथक् होना इन्हें असह्य-सा प्रतीत होता। भक्तोंकी भी प्रभुके चरणोंमें अहैतुकी भक्ति थी। वे प्रभुके संकेतके अनुसार चेष्टाएँ करते। वे सदा प्रभुके मुखकी ही ओर देखते रहते, कि किस समय प्रभुके मुख-पर कैसे भावोंके लक्षण प्रतीत होते हैं। उन्हीं भावोंके अनुसार वे क्रियाएँ करने लगते। इस कारण ईर्ष्या करना ही जिनका स्वभाव है, जो दूसरेके अभ्युदय तथा गौरवको देख ही नहीं सकते, ऐसे खल पुरुष सदा प्रभुकी निन्दा किया करते। प्रभु उन लोगोंकी बातोंके ऊपर ध्यान ही नहीं देते थे। जब कोई भक्त किसीके सम्बन्धकी ऐसी बातें छेड़ भी देता तो आप उसी समय उसे डाँटकर कह देते '*अन्यस्य दोषगुण-चिन्तनमाशु त्यक्त्वा सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम्*' दूसरोंकी निन्दा-स्तुति करना छोड़कर तुम निरन्तर श्रीकृष्ण-कीर्तनमें ही अपने मनको क्यों नहीं लगाते। इस कारण प्रभुके सम्मुख किसीकी निन्दा-स्तुति करने-की भक्तोंको हिम्मत ही नहीं होती थी।

प्रभुके बढ़ते हुए प्रभावको देखकर द्वेषी लोगोंने मुसलमानोंको भड़काया। वे जानते थे कि हम निमाई पण्डितका वैसे तो कुछ बिगाड़ नहीं सकते। उनके कहनेमें हजारों आदमी हैं। हाँ, यदि शासकोंकी ओरसे इन्हें पीड़ा पहुँचायी जावेगी, तब तो इनका सभी गौरहरिपना ठीक हो जायगा। उस समय मुसलमानोंका शासन था। इसलिये मुसलमानोंकी शिकायतोंपर विशेष ध्यान दिया जाता था। इसलिये खलोंने मुसलमानोंको ही बहकाना शुरू किया—'निमाई पण्डित अशास्त्रीय काम करता है। उसकी देखा-देखी सम्पूर्ण नगरमें कीर्तन होने लगा है। दिन-रात्रि कीर्तनकी ही ध्वनि सुनायी पड़ती है। इस कोलाहलके कारण रात्रिमें लोगोंको निद्रा भी तो नहीं आने पाती। काजीसे कहकर इन लोगोंको दण्ड दिलाना चाहिये। न जाने ये सब मिलकर क्या कर बैठें?' मुसलमानोंको भी यह बात जँच गयी। वे भला हिन्दूधर्मका अभ्युदय कब देख सकते थे? इसलिये सभीने मिलकर काजीके यहाँ संकीतनके विरुद्ध अभियोग चलाया।

उस समय बङ्गाल-सूबेमें अभियोगोंके निर्णय करनेका काम काजियोंके ही अधीन था। जमींदार, राजा अथवा मण्डलेश्वर कुछ गाँवोंका बादशाहसे नियत समयके लिये ठेका ले लेते और जितनेमें ठेका लेते उतने रुपये तो कर उगाहकर बादशाहको दे देते, जो बचते उसे अपने पास रख लेते। दीवानी और फौजदारीके जितने मामले होते उनका फैसला काजी किया करते। बादशाहकी ओरसे स्थान-स्थानपर काजी नियुक्त थे। उस समय बङ्गालके नवाब हुसेनशाह थे। वे बङ्गालके स्वतन्त्र शासक थे। उनकी ओरसे फौजदार चाँदखाँ नामके काजी नवद्वीपमें भी नियुक्त थे। बादशाहके दरबारमें इनका बड़ा सम्मान था। कुछलोगोंका कहना है, ये हुसेनशाहके विद्यागुरु थे। कुछ भी हो, चाँदखाँ सहृदय, समझदार और शान्तिप्रिय मनुष्य थे। हिन्दुओंसे वे अकारण नहीं चिढ़ते थे। नीलाम्बर चक्रवर्तीके दौहित्र नेके नातेसे वे महाप्रभुसे भी परिचित थे। इसलिये लोगोंके बार-

बार शिकायत करनेपर भी उन्होंने महाप्रभुके विरुद्ध कोई कार्रवाई करनी नहीं चाही। जब लोगोंने नित्यप्रति उनसे संकीर्तनकी शिकायत करनी आरम्भ कर दी और उनपर अत्यधिक जोर डाला गया तब उनकी भी समझमें यह बात आ गयी कि 'हाँ, ये लोग दिन-रात्रि बाजे बजा-बजाकर शोर मचाते रहते हैं। ऐसा भी क्या भजन-कीर्तन ? यदि भजन ही करना है, तो धीरे-धीरे करें।' यही सोचकर वे एक दिन अपने दल-बलके सहित कीर्तनवालोंको रोकनेके लिये चले। बहुत-से लोग प्रेममें उन्मत्त होकर संकीर्तन कर रहे थे। इनके आदमियोंने उनसे कीर्तन बंद कर देनेके लिये कहा। किन्तु वे भला किसकी सुननेवाले थे ? मना करनेपर भी वे बराबर कीर्तन करते ही रहे। इसपर काजीको गुस्सा आ गया और उसने घुसकर कीर्तन करनेवालोंके खोल फोड़ दिये और भक्तोंसे डाँटकर कहने लगे—'खबरदार, आजसे किसीने इस तरह शोर मचाया तो सभीको जेलखाने भेज दूँगा।' बेचारे भक्त डर गये। उन्होंने संकीर्तन बंद कर दिया। इसी प्रकार जहाँ-जहाँ भी संकीर्तन हो रहा था, काजीके आदमी वहाँ-वहाँ जाकर संकीर्तनको बंद कराने लगे। सम्पूर्ण नगरमें हाहाकार मच गया। लोग संकीर्तनके सम्बन्धमें भाँति-भाँतिकी बातें कहने लगे। कोई तो कहता—'भाई ! यहाँ मुसलमानी शासनमें संकीर्तन हो ही नहीं सकता। हम तो इस देशको परित्याग करके किसी ऐसे देशमें जाकर रहेंगे, जहाँ सुविधापूर्वक संकीर्तन कर सकें।' कोई कहते—'अजी ! जोर-जोरसे नाम लेनेमें ही क्या लाभ ? यदि काजी मना करता है, तो धीरे-धीरे ही नाम-जप कर लिया करेंगे। किसी प्रकार भगवन्नामजप होना चाहिये।' इस प्रकार भयभीत होकर लोग भाँति-भाँतिकी बातें कहने लगे।

दूसरे दिन सभी मिलकर महाप्रभुके निकट आये और उन्होंने रात्रिमें जो-जो घटनाएँ हुईं सब कह सुनायीं और अन्तमें कहा—प्रभो !

आप तो हमसे संकीर्तन करनेके लिये कहते हैं, किन्तु हमारे ऊपर संकीर्तन करनेसे ऐसी-ऐसी विपत्तियाँ आती हैं। अब हमारे लिये क्या आज्ञा होती है? आपकी आज्ञा हो तो हम इस देशको छोड़कर किसी ऐसे देशमें चले जायँ, जहाँ सुविधापूर्वक संकीर्तन कर सकें। या आज्ञा हो तो संकीर्तन करना ही बंद कर दें। बहुत-से लोग तो डरके कारण भागे भी जा रहे हैं।'

प्रभुने कुछ दृढ़ताके साथ रोषमें आकर कहा—'तुमलोगोंको न तो देशका ही परित्याग करना होगा और न संकीर्तनको ही बंद करना! तुम लोग जैसे करते रहे हो, उसी तरह संकीर्तन करते रहो। मैं उस काजीको और उसके साथियोंको देख लूँगा, वे कैसे संकीर्तनको रोकते हैं? तुमलोग तनिक भी न घबड़ाओ।' प्रभुके ऐसे आश्वासनको सुनकर सभी भक्त अपने-अपने घरोंको चले गये। बहुत-से तो प्रभुके आज्ञानुसार पूर्ववत् ही संकीर्तन करते रहे। किन्तु उनके मनमें सदा डर ही बना रहता था। बहुतोंने उसी दिनसे संकीर्तन करना बंद ही कर दिया।

लोगोंको डरा हुआ देखकर प्रभुने सोचा कि इस प्रकार काम नहीं चलनेका। लोग काजीके डरसे भयभीत हो गये हैं। जबतक मैं काजीका दमन न करूँगा, तबतक लोगोंका भय दूर न होगा। यह सुनकर पाठक आश्चर्य करेंगे कि काजीके पास अस्त्र-शस्त्रोंसे सुसज्जित बहुत-सी सेना है, बादशाहकी ओरसे उसे अधिकार प्राप्त है। उसके पास राजबल, धनबल सैन्यबल तथा अधिकारबल आदि सभी मौजूद हैं। उसका दमन अहिंसाप्रिय, शान्त स्वभाववाले, अस्त्र-शस्त्रहीन, खोल-करतालकी लयके साथ नृत्य करनेवाले निमाई पण्डित कैसे कर सकेंगे? इस प्रश्नका उत्तर पाठकोंको अगले अध्यायमें आप-से-आप ही मिल जायगा।



श्रीचैतन्यमहाप्रभुका हरि-नाम-संकीर्तन-दल

काजीकी शरणापत्ति

वन्दे स्वैराद्भुतेऽहं तं चैतन्यं यत्प्रसादतः ।
यवनाः सुमनायन्ते कृष्णनामप्रजल्पकाः ॥*

(चै० च० आ० १७।१)

बिना मुकुटके राजा भी होते हैं और बिना शस्त्रके सेना भी लड़ सकती है। जो मुकुटधारी राजा अथवा महाराजा होते हैं, उनका तो प्रायः जनताके ऊपर भयसे आधिपत्य होता है, वे भीतरसे उससे द्वेष भी रख सकते हैं और जनता कभी-कभी उनके विरुद्ध बलवा भी कर सकती है, किन्तु जो बिना मुकुटके राजा होते हैं उनका तो जनताके हृदयोंपर आधिपत्य होता है। वे तो प्रेमसे ही सभी लोगोंको अपने वशमें कर सकते हैं। चाहे मुकुटधारी राजाकी सेना रणक्षेत्रसे भयके कारण भाग आवे, चाहे उसकी पराजय ही हो जाय, किन्तु जिनका जनताके हृदयोंके ऊपर आधिपत्य है, जनताके अन्तःकरणपर जिनके शासनकी प्रेम-मुहर लगी हुई है उनके सैनिक चाहे शस्त्रधारी हों अथवा बिना शस्त्रके, बिना जय प्राप्त किये मैदानसे भागते ही नहीं। क्योंकि वे अपने प्राणोंकी कुछ

---

* जिनकी अनुकम्पासे यवन भी सच्चरित्र होकर श्रीकृष्णके सुमधुर नामोंका जप करनेवाले बन जाते हैं, उन स्वच्छन्द अद्भुत चेष्टाएँ करनेवाले श्रीमहाप्रभु चैतन्यदेवके चरणकमलोंमें हम प्रणाम करते हैं।

भी परवा नहीं करते। जिसे अपने प्राणोंकी कुछ भी परवा नहीं, जो मृत्युका नाम सुनकर तनिक भी विचलित न होकर उसका सर्वदा स्वागत करनेके लिये प्रस्तुत रहता है, उसके लिये संसारमें कोई काम दुरूह नहीं। उसे इन बाह्य शस्त्रोंकी उतनी अधिक अपेक्षा नहीं, उसका तो साहस ही शस्त्र है। वह निर्भीक होकर अपने साहसरूपी शस्त्रके सहारे अन्यायके पक्ष लेनेवालेका पराभव कर सकता है। फिर भी वह अपने विरोधीके प्रति किसी प्रकारके बुरे विचार नहीं रखता। वह सदा उसके हितकी ही बात सोचता रहता है, अन्तमें उसका भी कल्याण हो जाता है। प्रेममें यही तो विशेषता है। प्रेममार्गमें कोई शत्रु ही नहीं। घृणा, द्वेष, कपट, हिंसा अथवा अकारण कष्ट पहुँचानेके विचारतक उस मार्गमें नहीं उठते, वहाँ तो ये ही भाव रहते हैं।—

सर्वे कुशलिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥*

(श्रीवाल्मीकि-माहात्म्य)

इसीका नाम 'निष्क्रिय प्रतिरोध' 'सविनय अवज्ञा' अथवा 'सत्याग्रह' है। महाप्रभु गौराङ्गदेवने संकीर्तन रोकनेके विरोधमें इसी मार्गका अनुसरण करना चाहा। काजीकी नीच प्रवृत्तियोंके दमन करनेके निमित्त उन्होंने इसी उपायका अवलम्बन किया। सब लोगोंसे उन्होंने कह दिया—'आप लोग घबड़ायँ नहीं, मैं स्वयं काजी के सामने संकीर्तन करता हुआ निकलूँगा, देखें, वह मुझे संकीर्तनसे किस प्रकार रोकता है?' प्रभुके ऐसे आश्वासनसे सभीको परम प्रसन्नता हुई और सभी अपने-अपने घरोंको चले गये।

---

* सभी सुखी हों, सब स्वस्थ हों, सभी कल्याणमार्गके पथिक बन सकें, कोई भी दुखी न हो।

दूसरे दिन महाप्रभुने नित्यानन्दजीको आज्ञा दी कि सम्पूर्ण नगरमें इस संवादको सुना आओ कि 'हम आज सायंकालके समय काजीकी आज्ञाके विरुद्ध नगरमें संकीर्तन करते हुए निकलेंगे। सन्ध्याके समय सभी लोग हमारे घरपर एकत्रित हों और प्रकाशके लिये एक-एक मशाल भी साथ लेते आवें।' नित्यानन्दजी तो बहुत दिनसे यही बात चाहते भी थे। उनकी इच्छा थी कि 'एक दिन महाप्रभु सम्पूर्ण नगरमें संकीर्तन करते हुए निकलें तो लोगोंको पता चल जाय कि संकीर्तनमें कितना माधुर्य है। उन्हें विश्वास था कि जो लोग संकीर्तनका विरोध करते हैं, यदि वे लोग एक दिन भी गौराङ्गके प्रेम-नृत्यको देख लेंगे, तो वे सदाके लिये गौराङ्गके तथा उनके संकीर्तनके भक्त बन जायँगे। महाप्रभुके खुलकर कीर्तन करनेसे भयभीत भक्तोंका भय भी दूर भाग जायगा और अन्य लोगोंको भी फिर संकीर्तन करनेका साहस होगा। बहुत-से लोग हृदयसे संकीर्तनके समर्थक हैं, किन्तु काजीके भयसे उनकी कीर्तन करनेकी हिम्मत नहीं होती। प्रभुके प्रोत्साहनकी ही आवश्यकता है।' इन बातोंको नित्यानन्दजी मन-ही-मनमें बहुत दिनोंसे सोच रहे थे। किन्तु उन्होंने किसीपर अपने इन भावोंको प्रकट नहीं किया। आज स्वयं महाप्रभुको नगर-कीर्तन करनेके लिये उद्यत देखकर उनके आनन्दका पारावार नहीं रहा। वे हाथमें घण्टा लेकर नगरके मुहल्ले-मुहल्ले और गली-गलीमें घर-घर घूम-घूमकर इस शुभ संवादको सुनाने लगे। पहले वे घण्टेको जोरोंसे बजा देते। घण्टेकी ध्वनि सुनकर बहुत-से स्त्री-पुरुष वहाँ एकत्रित हो जाते तब नित्यानन्दजी हाथ उठाकर कहते—'भाइयो! आज शामको श्रीगौरहरि अपने सुमधुर संकीर्तनसे सम्पूर्ण नगरके लोगोंको पावन बनावेंगे। नगरवासी नर-नारियोंकी चिरकालकी मनोवाञ्छा आज पूरी होगी। सभी लोगोंको आज प्रभुके अद्भुत और अलौकिक नृत्यके रसास्वादनका सौभाग्य प्राप्त होगा। सभी भाई संकीर्तनकारी भक्तोंके स्वागतके निमित्त अपने-अपने घरोंको सुन्दरताके साथ सजावें और शामको सभी एक-एक मशाल लेकर

प्रभुके घरपर आवें। वहाँ किसी प्रकारका शोर-गुल न मचावें। बस, संकीर्तनका सुख लूटते हुए अपने जीवनको कृतकृत्य बनावें।'

सभी लोग इस मुनादीको सुनते और आनन्दसे उछलने लगते। सामूहिक कार्योंमें एक प्रकारका स्वाभाविक जोश आ जाता है। उस जोशमें सभी प्रकारके लोग एक अज्ञात शक्तिके कारण खिंचे-से चले आते हैं, जिनसे कभी किसी शुभकामकी आशा नहीं की जाती वे भी जोशमें आकर अपनी शक्तिसे बहुत अधिक कार्य कर जाते हैं, इसीलिये तो कलिकालमें सभी कार्योंके लिये संघशक्तिको ही प्रधानता दी गयी है।

नवद्वीपमें ऐसा नगर-कीर्तन पहले कभी हुआ ही नहीं था। वहाँके नर-नारियोंके लिये यह एक नूतन ही वस्तु थी। लोग बहुत दिनोंसे निमाईके नृत्य और कीर्तनकी बातें तो सुनते थे, किन्तु उन्होंने आजतक कभी निमाईका नृत्य तथा कीर्तन देखा नहीं था। श्रीवास पण्डितके घरके भीतर संकीर्तन होता था और उसमें खास-खास भक्तोंके अतिरिक्त और कोई जा ही नहीं सकता था, इसीलिये नगरवासियोंकी कीर्तनानन्द देखनेकी इच्छा मन-ही-मनमें दब-सी जाती। आज नगर-कीर्तनकी बात सुनकर सभीकी दबी हुई इच्छाएँ उभड़ पड़ीं। लोग अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार संकीर्तनके स्वागतके निमित्त भाँति-भाँतिकी तैयारियाँ करने लगे। कहावत है 'खरबूजेको देखकर खरबूजा रंग बदलने लगता है।' जब भगवद्भक्त अपने-अपने घरोंको वन्दनवार, कदलीस्तम्भ और ध्वजा-पताकाओंसे सजाने लगे, तब उनके समीप रहनेवाले शाक्त अथवा विभिन्न पन्थवाले लोग भी शोभाके लिये अपने-अपने दरवाजोंके सामने झंडियाँ लगाने लगे, जिससे हमारे घरके कारण नगरकी सजावटमें बाधा न पड़े। किसी जोशीले नये कामके लिये सभी लोगोंके हृदयोंमें स्वाभाविक ही सहानुभूति उत्पन्न हो

जाती है। उस कार्यकी धूम-धामसे तैयारियाँ होते देखकर विपक्षी भी उसमें सहयोग देने लगते हैं। उस समय उनके विरोधी भाव दूर हो जाते हैं, कारण कि उग्र विचारोंका प्रभाव तो सभी प्रकारके लोगोंके ऊपर पड़ता है। इसलिये जो लोग अपनी नीच प्रकृतिके कारण संकीर्तन तथा श्रीगौराङ्गसे अत्यन्त ही द्वेष मानते थे, उन अकारण जलनेवाले खल पुरुषोंके घरोंको छोड़कर सभी प्रकारके लोगोंने अपने-अपने घरोंको भलीभाँति सजाया। नगरकी सुन्दर सड़कोंपर छिड़काव किया गया। स्थान-स्थानपर धूप, गुग्गुल आदि सुगन्धित वस्तुएँ जलायी गयीं। सड़कके दोनों ओर भाँति-भाँतिकी ध्वजाएँ फहरायी गयीं। स्थान-स्थानपर पताकाएँ लटक रही थीं। सड़कके किनारेके दुमंजले-तिमंजले मकान लाल, पीली, हरी, नीली आदि विविध प्रकारकी रंगीन साड़ियोंसे सजाये गये थे। कहीं कागजकी पताकाएँ फहरा रही तो कहीं रंगीन कपड़ोंकी ही झंडियाँ शोभा दे रही हैं। भक्तोंने अपने-अपने द्वारोंपर मंगलसूचक कोरे घड़े जलसे भर-भरकर रख दिये हैं। द्वारोंपर गहरोंके सहित केलेके वृक्ष बड़े ही सुन्दर तथा सुहावने दिखायी देते थे। लोगोंका उत्साह इतना अधिक बढ़ गया था कि वे बार-बार यही सोचते थे कि हम संकीर्तनके स्वागतके निमित्त क्या-क्या कर डालें। संकीर्तन-मण्डल किधर होकर निकलेगा और कहाँ जाकर उसका अन्त होगा, इसके लिये कोई पथ तो निश्चित हुआ ही नहीं था। सभी अपनी-अपनी भावनाके अनुसार यही समझते थे, कि हमारे द्वारकी ओर होकर संकीर्तन-मण्डल जरूर आवेगा। सभीका अनुमान था, हमें संकीर्तन-कारी भक्तोंके स्वागत-सत्कार करनेका सौभाग्य अवश्य प्राप्त हो सकेगा। इसलिये वे महाप्रभुके सभी साथियोंके स्वागतार्थ भाँति-भाँतिकी सामग्रियाँ सजा-सजाकर रखने लगे। इस प्रकार सम्पूर्ण नवद्वीपमें चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द छा गया! इतनी सजावट–तैयारियाँ किसी महोत्सवपर अथवा किसी महाराजके आनेपर भी नगरमें नहीं होती थी।

चारों ओर धूम-धाम मची हुई थी। भक्तोंके हृदय मारे प्रेमके बाँसों उछल रहे थे। तैयारियाँ करते-करते ही बात-की-बातमें सन्ध्या हो गयी।

महाप्रभु भी घरके भीतर संकीर्तनकी तैयारियाँ कर रहे थे। उन्होंने विशेष-विशेष भक्तोंको बुलाकर नगर-संकीर्तनकी सभी व्यवस्था समझा दी। कौन आगे रहेगा, कौन उसके पीछे रहेगा और कौन सबसे पीछे रहेगा, ये सभी बातें बता दीं। किस सम्प्रदायमें कौन प्रधान नृत्यकारी होगा, इसकी भी व्यवस्था कर दी।

अब प्रभुके अन्तरङ्ग भक्त गदाधरने महाप्रभुका शृंगार किया। प्रभुके घुँघराले काले-काले बालोंमें भाँति-भाँतिके सुगन्धित तैल डालकर उसका जूरा बाँधा गया, उसमें मालती, चम्पा आदिके सुगन्धित पुष्प गूँथे गये। नासिकापर ऊर्ध्व-पुण्ड्र लगाया गया। केसर-कुंकुमकी महीन बिन्दियोंसे मस्तक तथा दोनों कपोलोंके ऊपर पत्रावली बनायी गयी। उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गकी सजावट इस प्रकार की गयी कि एक बार कामदेव भी देखकर लज्जित हो उठता। महाप्रभुने एक बहुत ही बढ़िया पीताम्बर अपने शरीरपर धारण किया। नीचेतक लटकती हुई थोड़ी किनारीदार चुनी हुई पीले रंगकी धोती बड़ी ही भली मालूम होती थी। गदाधरने घुटनोंतक लटकनेवाला एक बहुत ही बढ़िया हार प्रभुके गलेमें पहिना दिया। उस हारके कारण प्रभुका तपाये हुए सुवर्णके समान शरीर अत्यन्त ही शोभित होने लगा। मुखमें सुन्दर पानकी बीरी लगी हुई थी, इससे बायीं तरफका कपोल थोड़ा उठा हुआ-सा दीखता था। दोनों अरुण अधर पानकी लालिमासे और भी रक्तवर्णके बन गये थे। उन्हें बिम्बा-फलकी उपमा देनेमें भी संकोच होता था। कमानके समान दोनों कुटिल भ्रुकुटियोंके मध्यमें चारों ओर केसर लगाकर बीचमें एक बहुत ही छोटी कुंकुमकी बिन्दी लगा दी थी। पीतवर्णके शरीरमें वह लाल बिन्दी लाल रंगके हीरेकी कनीकी भाँति दूरसे

ही चमक रही थी। इस प्रकार भलीभाँति श्रृंगार करके प्रभु घरसे बाहर निकले। प्रभुके बाहर निकलते ही द्वारपर जो अपार भीड़ खड़ी प्रभुकी प्रतीक्षा कर रही थी, उसमें एकदम कोलाहल होने लगा। मानो समुद्रमें ज्वार आ गया हो। सभी जोरोंसे 'हरि बोल' 'हरि बोल' कहकर दिशा-विदिशाओंको गुँजाने लगे। लोग प्रभुके दर्शनोंके लिये उतावले हो उठे। एक-दूसरेको धक्का देकर सभी पहले प्रभुके पाद-पद्मोंके निकट पहुँचना चाहते थे। प्रभुने अपने दोनों हाथ उठाकर भीड़को शान्त हो जानेका संकेत किया। देखते-ही-देखते सर्वत्र सन्नाटा छा गया। उस समय ऐसा प्रतीत होने लगा मानो यहाँ कोई है ही नहीं। गदाधरने प्रभुके दोनों चरणोंमें नूपुर बाँध दिये। फिर क्रमशः सभी भक्तोंने अपने-अपने पैरोंमें नूपुर पहिन लिये। बायें पैरको ठमकाकर प्रभुने नूपुरोंकी ध्वनि की। प्रभुके ध्वनि करते ही एक साथ ही सहस्रों भक्तोंने अपने-अपने नूपुरोंको बजाया। भीड़में आनन्दकी तरङ्गें उठने लगीं।

भीड़में स्त्री-पुरुष, बालक-वृद्ध तथा युवा सभी प्रकारके पुरुष थे। जाति-पाँतिका कोई भी भेद-भाव नहीं था। जो भी चाहे आकर संकीर्तन-समाजमें सम्मिलित हो सकता था। किसीके लिये किसी प्रकारकी रोक-टोक नहीं थी। भीड़में जितने भी आदमी थे, प्रायः सभीके हाथोंमें एक-एक मशाल थी। लोगोंकी सूझ ही तो ठहरी। प्रकाशके लिये मशाल न लेकर उस दिन मशाल ले चलनेका एक प्रकारसे माहात्म्य ही बन गया था मानो सभी लोग मिलकर अपनी-अपनी शक्तिके अनुसार छोटे-बड़े आलोकके द्वारा नवद्वीपके चिरकालके छिपे हुए अज्ञानान्धकारको खोज-खोजकर भगा देनेके ही लिये कटिबद्ध होकर आये हैं। किसीके हाथमें बड़ी मशाल थी, किसीके छोटी। किसी-किसीने तो दोनों हाथोंमें दो-दो मशालें ले रखी थीं। छोटे-छोटे बच्चे छोटी-छोटी मशालें लिये हुए 'हरि बोल' 'हरि बोल' कहकर उछल रहे थे।

गो-धूलिका सुखमय समय था। आकाश-मण्डलमें स्थित भगवान् दिवानाथ गौरचन्द्रके असह्य रूप-लावण्यसे पराभव पाकर अस्ताचलमें मुँह छिपानेके लिये उद्योग कर रहे थे। लज्जाके कारण उनका सम्पूर्ण मुखमण्डल रक्तवर्णका हो गया था। इधर आकाशमें अर्धचन्द्र उदित होकर पूर्णचन्द्रके पृथ्वीपर अवतीर्ण होनेकी घोषणा करने लगे। शुक्लपक्ष था, चाँदनी रात्रि थी, ग्रीष्मकालका सुखद समय था। सभी प्रेममें उन्मत्त हुए 'हरि बोल' 'हरि बोल' कहकर चिल्ला रहे थे। प्रभुने भक्तोंको नियमपूर्वक खड़े हो जानेका संकेत किया। सभी लोग पीछे हट गये। संकीर्तन करनेवाले भक्त आगे खड़े हुए। प्रभुने भक्त-मण्डलीको चार सम्प्रदायोंमें विभक्त किया। सबसे आगे वृद्ध सेनापति भक्ति-सेनाके महारथी भीष्मपितामहके तुल्य श्रीअद्वैताचार्यका सम्प्रदाय था। उस सम्प्रदायके वे ही अग्रणी थे। इनके पीछे श्रीवास पण्डित अपने दलबलके सहित डटे हुए थे। श्रीवास पण्डितके सम्प्रदायमें छटे हुए कीर्तनकलामें कुशल सैकड़ों भक्त थे। इनके पीछे महात्मा हरिदासका सम्प्रदाय था। सबसे पीछे महाप्रभु अपने प्रधान-प्रधान भक्तोंके सहित खड़े हुए। प्रभुके दायीं ओर नित्यानन्दजी और बायीं ओर गदाधर पण्डित शोभायमान थे।

सब लोगोंके यथायोग्य खड़े हो जानेपर प्रभुने नूपुर बजाकर इशारा किया। बस, प्रभुका संकेत पाना था कि खोल-करतालोंकी मधुर ध्वनिसे आकाशमण्डल गूँजने लगा। प्रेम-वारुणीमें पागल-से बने हुए भक्त ताल-स्वरके सहित गा-गाकर नृत्य करने लगे। उस समय किसीको न तो अपने शरीरकी सुधि रही और न बाह्य जगत्का ही ज्ञान रहा। जिस प्रकार भूत-पिशाचसे पकड़े जानेवाले मनुष्य होश-हवास भुलाकर नाचने-कूदने लगते हैं, उसी प्रकार भक्तगण प्रेममें विभोर होकर नृत्य करने लगे, किन्तु कोई भी तालस्वरके विपरीत नहीं जाता था। इतने भारी कोलाहल-में भी सभी ताल-स्वरके नियमोंका भलीभाँति पालन कर रहे थे। सभीके

पैर एक साथ ही उठते थे। घुँघरुओंकी रुनझुन-रुनझुन ध्वनिके साथ खोल-करताल और झाँझमजीरोंकी आवाजें मिलकर विचित्र प्रकारकी ही स्वर-लहरीकी सृष्टि कर रही थीं। एक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदायसे बिल्कुल पृथक् ही पदोंका गायन करता था। वाद्य बजानेवाले भक्त नृत्य करते-करते वाद्य बजा रहे थे। खोल बजानेवाले बजाते-बजाते दोहरे हो जाते और पृथ्वीपर लेट-लेटकर खोल बजाने लगते। करताल बजानेवाले चारों ओर हाथ फेंक-फेंककर जोरोंसे करताल बजाते। झाँझ और मजीराकी मीठी-मीठी ध्वनि सभीके हृदयोंमें खलबली-सी उत्पन्न कर रही थी। नृत्य करनेवालेको चारों ओरसे घेरकर भक्त खड़े हो जाते और वह स्वच्छन्द रीतिसे अनेक प्रकारके कीर्तनके भावोंको दर्शाता हुआ नृत्य करने लगता। उसके सम्प्रदायके सभी भक्त उसके पैरोंके साथ पैर उठाते और उसकी नूपुर-ध्वनिके सहित अपनी नूपुर-ध्वनिको मिला देते। बीच-बीचमें सम्पूर्ण लाग एक साथ जोरोंसे बोल उठते 'हरि बोल' 'हरि बोल' 'गौरहरि बोल।' अपार भीड़मेंसे उठी हुई यह आकाश-मण्डलको कँपा देनेवाली ध्वनि बहुत देरतक अन्तरिक्षमें गूँजती रहती। भक्त फिर उसी प्रकार संकीर्तनमें मग्न हो जाते।

सबसे पीछे नित्यानन्द और गदाधरके साथ प्रभु नृत्य कर रहे थे। महाप्रभुका आजका नृत्य देखने ही योग्य था। मानो आकाश-मण्डलमे देवगण अपने-अपने विमानोंमें बैठे हुए प्रभुका नृत्य देख रहे हों। प्रभु उस समय भावावेशमें आकर नृत्य कर रहे थे। घुटुओंतक लटकी हुई उनकी मनोहर माला पृथ्वीको स्पर्श करने लगती। कमरको लचाकर, हाथोंको उठाकर, ऊर्ध्व दृष्टि किये हुए प्रभु नृत्य कर रहे थे! उनके दोनों कमल-नयनोंसे प्रेमाश्रु बह-बहकर कपोलोंके ऊपरसे लुढ़क रहे थे। तिरछी आँखोंकी कोरोंमेंसे शीतल अश्रुओंके कण बह-बहकर जब कपोलोंपर कढ़ी हुई पत्रावलीके ऊपर होकर नीचे गिरते तब उस समयके मुख-मण्डलकी शोभा देखते ही बनती थी। वे गद्गद-कण्ठसे गा रहे थे 'तुम्हार चरणे

मन लागुरे, हे सारंगधर'—सारङ्गधर कहते-कहते प्रभुका गला भर आता और सभी भक्त एक स्वरमें बोल उठते 'हरि बोल' 'गौरहरि बोल'। प्रभु फिर सम्हल जाते और फिर उसी प्रकार कोकिल-कण्ठसे गान करने लगते। वे हाथ फैलाकर, कमर लचाकर, भौंहें मरोड़कर, सिरको नीचा-ऊँचा करके भाँति-भाँतिसे अलौकिक भावोंको प्रदर्शित करते। सभी दर्शक काठकी पुतलियोंके समान प्रभुके मुखकी ओर देखते-के-देखते ही रह जाते। प्रभुके आजके नृत्यसे कठोर-से-कठोर हृदयमें भी प्रेमका सञ्चार होने लगा। कीर्तनके महाविरोधियोंके मुखोंमेंसे भी हठात् निकल पड़ने लगा—'धन्य है, प्रेम हो तो ऐसा हो!' कोई कहता—'इतनी तन्मयता तो मनुष्य-शरीरमें सम्भव नहीं।' दूसरा बोल उठता—'निमाई तो साक्षात् नारायण हैं।' कोई कहता—'हमने तो ऐसा सुख अपने जीवनमें आजतक कभी पाया नहीं।' दूसरा जल्दीसे बोल उठता—'तुमने क्या किसीने भी ऐसा सुख आजतक कभी नहीं पाया। यह सुख तो देवताओंको भी दुर्लभ है। वे भी इसके लिये सदा लालायित बने रहते हैं।'

प्रभु संकीर्तन करते हुए गङ्गाजीके घाटकी ओर जा रहे थे। रास्तेमें मनुष्योंकी अपार भीड़ थी। उस भीड़मेंसे चींटीका भी निकल जाना सम्भव नहीं था। भगवद्भक्त सद्गृहस्थ अपने-अपने दरवाजोंपर आरती लिये हुए खड़े थे। कोई प्रभुके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा करता, कोई भक्तोंको माला पहिनाता, कोई बहुमूल्य इत्र-फुलेलकी शीशी-की-शीशी प्रभुके ऊपर उड़ेल देता। कोई इत्रदानमेंसे इत्र छिड़क-छिड़ककर भक्तोंको तराबोर कर देता। अटा, अटारी और छज्जे तथा द्वारोंपर खड़ी हुई स्त्रियाँ प्रभुके ऊपर वहींसे पुष्पोंकी वृष्टि करतीं। कुमारी कन्याएँ अपने आँचलोंमें भर-भरकर धानके लावा भक्तोंके ऊपर बिखेरतीं। कोई सुन्दर सुगन्धित चन्दन ही छिड़क देती, कोई अक्षत, दूब तथा पुष्पोंको ही फेंककर भक्तोंका स्वागत करती। इस प्रकार सम्पूर्ण पथ पुष्पमय हो गया। लावा, अक्षत,

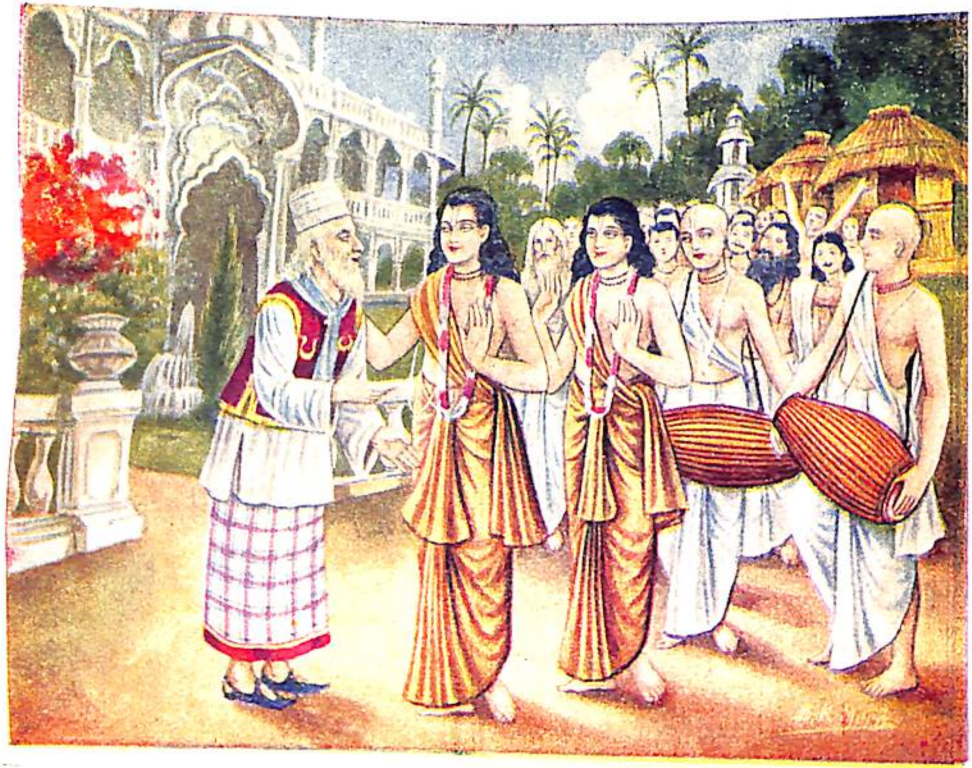
पुष्प और फलोंसे रास्ता पट-सा गया। प्रभु उन्मत्त हुए नृत्य कर रहे थे। उन्हें बाह्य जगत्‌का कुछ पता ही नहीं था। सभी संसारी विषयोंका चिन्तन छोड़कर संकीर्तनकी प्रेम-धारामें वे बहने लगे। उन्हें न तो काजीका पता रहा और न उसके अत्याचारोंका ही। सभी प्रभुके नृत्यको देखकर आपा भूले हुए थे। इस प्रकारका नगर-कीर्तन यह सबसे पहला ही था। सभीके लिये एक नयी बात थी, फिर मुसलमान शासकके शासनमें ऐसा करनेकी हिम्मत ही किसकी हो सकती थी? किन्तु आज तो प्रभुके प्रभावसे सभी अपनेको स्वतन्त्र समझने लगे थे! उनके हृदयोंपर तो एकमात्र प्रभुका साम्राज्य था, वे उनके तनिक-से इशारेपर सिर कटानेतकको तैयार थे। इस प्रकार संकीर्तन-समाज अपने नृत्य-गान तथा जय-जयकारोंसे नगरवासियोंके हृदयमें एक प्रकारके नव-जीवनका सञ्चार करता हुआ गङ्गाजीके उस घाटपर पहुँचा, जहाँ प्रभु नित्यप्रति स्नान करते थे। वहाँसे प्रभु भक्तमण्डलीके सहित मधाई घाट-पर गये। मधाई-घाटसे सीधे ही वेलपुखरा—जहाँ काजी रहता था उसकी ओर चले। अब सभीको स्मरण हो उठा कि प्रभुको आज काजीका भी उद्धार करना है। सभी उसके अत्याचारोंको स्मरण करने लगे। कुछ लोग तो यहाँतक आवेशमें आ गये कि खूब जोरोंके साथ चिल्लाने लगे—'इस काजीको पकड़ लो।' 'जानसे मार डालो' 'इसने हिन्दू-धर्मपर बड़े-बड़े अत्याचार किये हैं।' प्रभुको इन बातोंका कुछ भी पता नहीं था। उन्हें किसी मनुष्यसे या किसी सम्प्रदाय-विशेषसे रत्तीभर भी द्वेष नहीं था। वे तो अन्यायके द्वेषी थे, सो भी अन्यायीके साथ वे लड़ना नहीं चाहते थे। वे तो प्रेमास्त्रद्वारा ही उसका पराभव करना चाहते थे। वे संहारके पक्षपाती न होकर उद्धारके पक्षमें थे। इसलिये मार-काटका नाम लेनेवाले पुरुष उनके अभिप्रायको न समझनेवाले अभक्त पुरुष ही थे। उन उत्तेजनाप्रिय अज्ञानी मनुष्योंने तो यहाँतक किया कि वृक्षोंकी शाखाएँ तोड़-तोड़कर वे काजीके घरमें घुस गये और

उसकी फुलवारी तथा बागके फल-फूलोंको नष्ट-भ्रष्ट करने लगे। काजीके आदमियोंने पहलेसे ही काजीको डरा दिया था। उससे कह दिया था—'निमाई पण्डित हजारों मनुष्योंको साथ लिये हुए तुम्हें पकड़नेके लिये आ रहा है। वे लोग तुम्हें जानसे मार डालेंगे।' कमजोर हृदय-वाला काजी अपार लोगोंके कोलाहलसे डर गया। उसकी फौजने भी डरकर जवाब दे दिया। बेचारा चारों ओरसे अपनेको असहाय समझ-कर घरके भीतर जा छिपा।

जब प्रभुको इस बातका पता चला कि कुछ उपद्रवी लोग जनताको भड़काकर उसमें उत्तेजना पैदा कर रहे हैं और काजीको क्षति पहुँचाने-का उद्योग कर रहे थे, तो उन्होंने उसी समय संकीर्तन बंद कर देनेकी आज्ञा दे दी। प्रभुकी आज्ञा पाते ही सभी भक्तोंने अपने-अपने वाद्य नीचे उतारकर रख दिये। नृत्य करनेवाले रुक गये। पद गानेवालोंने पद बंद कर दिये। क्षणभरमें ही वहाँ सन्नाटा-सा छा गया। प्रभुने दिशाओंको गुँजाते हुए मेघ-गम्भीर स्वरमें कहा—'खबरदार! किसीने काजीको तनिक भी क्षति पहुँचानेका उद्योग किया तो उससे अधिक अप्रिय मेरा और कोई न होगा। सभी एकदम शान्त हो जाओ।'

प्रभुका इतना कहना था कि सभी उपद्रवी अपने-अपने हाथोंसे शाखा तथा ईंट-पत्थर फेंककर चुपचाप प्रभुके समीप आ बैठे। सबको शान्तभावसे बैठे देखकर प्रभुने काजीके नौकरोंसे कहा—'काजीसे हमारा नाम लेना और कहना कि आपको उन्होंने बुलाया है, आपके साथ कोई भी अभद्र व्यवहार नहीं कर सकता, आप थोड़ी देरको बाहर चलें।'

प्रभुकी बात सुनकर काजीके सेवक घरमें छिपे हुए काजीके पास गये और प्रभुने जो-जो बातें कही थीं वे सभी जाकर काजीसे कह दीं। प्रभुके ऐसे आश्वासनको सुनकर और इतनी अपार भीड़को चुपचाप शान्त देखकर काजी बाहर निकला। प्रभुने भक्तोंके सहित काजीकी



काजी-उद्धार

अभ्यर्थना की और प्रेमपूर्वक उसे अपने पास बिठाया। प्रभुने कुछ हँसते हुए प्रेमके स्वरमें कहा—'क्यों जी, यह कहाँकी रीति है कि हम तो आपके द्वारपर अतिथि होकर आये हैं और आप हमें देखकर घरमें जा छिपे !'

काजीने कुछ लज्जित होकर विनीतभावसे प्रेमके स्वरमें कहा—'मेरा सौभाग्य, जो आप मेरे घरपर पधारे। मैंने समझा था, आप क्रोधित होकर मेरे यहाँ आ रहे हैं, इसीलिये क्रोधित अवस्थामें आपके सम्मुख होना ठीक नहीं समझा।'

प्रभुने हँसते हुए कहा—'क्रोध करनेकी क्या बात थी ? आप तो यहाँ के शासक हैं, मैं आपके ऊपर क्रोध क्यों करने लगा ?'

यह बात हम पहले ही बता चुके हैं कि शचीदेवीके पूज्य पिता तथा महाप्रभुके नाना नीलाम्बर चक्रवर्तीका घर इसी बेलपुखरिया मुहल्लेमें काजीके पास ही था। काजी चक्रवर्ती महाशयसे बड़ा स्नेह रखते थे। इसीलिये काजीने कहा—'देखो निमाई ! गाँव-नातेसे चक्रवर्ती मेरे चाचा लगते हैं, इसलिये तुम मेरे भानजे लगे। मैं तुम्हारा मामा हूँ, मामाके ऊपर भानजा यदि अकारण क्रोध भी करे तो मामाको सहना पड़ता है। मैं तुम्हारे क्रोधको सह लूँगा। तुम जितना चाहो, मेरे ऊपर क्रोध कर लो।'

प्रभुने हँसते हुए कहा—'मामाजी ! मैं इस सम्बन्धको कब अस्वीकार करता हूँ ? आप तो मेरे बड़े हैं। आपने तो मुझे गोदमें खिलाया है। मैं तो आपके सामने बच्चा हूँ, मैं आपपर क्रोध क्यों करूँगा?'

काजीने कुछ लजाते हुए कहा—'शायद इसीलिये कि मैंने तुम्हारे संकीर्तनका विरोध किया है ?'

प्रभुने कुछ मुस्कराकर कहा—'इससे मैं क्यों क्रोध करने लगा ? आप भी तो स्वतन्त्र नहीं हैं, आपको बादशाहकी जैसी आज्ञा मिली

होगी या आपके अधीनस्थ कर्मचारियोंने जैसा कहा होगा वैसा ही आपने किया होगा। यदि कीर्तन करनेवालोंको दण्ड ही देना आपने निश्चय किया हो, तो हम सभी उसी अपराधको कर रहे हैं, हमें भी खुशीसे दण्ड दीजिये। हम इसीलिये तैयार होकर आये हैं।'

काजीने कहा—'बादशाहकी तो ऐसी कोई आज्ञा नहीं थी, किन्तु तुम्हारे बहुत-से पण्डितोंने ही आकर मुझसे शिकायत की थी कि यह अशास्त्रीय काम है। पहले 'मङ्गलचण्डी' के गीत गाये जाते थे। अब निमाई पण्डित भगवन्नामके गोप्य मन्त्रोंको खुल्लमखुल्ला गाता फिरता है और सभी वर्णोंको उपदेश करता है। ऐसा करने से देशमें दुर्भिक्ष पड़ेगा; इसीलिये मैंने संकीर्तनके विरोधमें आज्ञा प्रकाशित की थी। कुछ मुल्ला और काजी भी इसे बुरा समझते थे।'

प्रभुने यह सुनकर पूछा—'अच्छा, तो आप अब लोगोंको संकीर्तनसे क्यों नहीं रोकते ?'

काजी इस प्रश्नको सुनकर चुप हो गया। थोड़ी देर सोचते रहनेके बाद बोला—'यह बड़ी गुप्त बात है, तुम एकान्तमें चलो तो कहूँ ?'

प्रभुने कहा—'यहाँ सब अपने ही आदमी हैं। इन्हें आप मेरा अन्तरङ्ग ही समझिये। इनके सामने आप संकोच न करें। कहिये, क्या बात है ?'

प्रभुके ऐसा कहनेपर काजीने कहा—'गौरहरि ! मुझे तुम्हें गौरहरि कहनेमें अब संकोच नहीं होता। भक्त तुम्हें गौरहरि कहते हैं इसलिये तुम सचमुचमें हरि हो। तुम जब कृष्ण-कीर्तन करते थे, तब कुछ मुल्लाओंने मुझसे शिकायत की थी कि यह निमाई 'कृष्ण-कृष्ण' कहकर सभीको बरबाद करता है। इसका कोई उपाय कीजिये। तब मैंने विवश होकर

उस दिन एक भक्तके घरमें जाकर खोल फोड़ा था और संकीर्तनके विरुद्ध लोगोंको नियुक्त किया था, उसी दिन रातको मैंने एक बड़ा भयंकर स्वप्न देखा। मानो एक बड़ा भारी सिंह मेरे समीप आकर कह रहा है कि 'यदि आजसे तुमने संकीर्तनका विरोध किया तो उस खोलकी तरह ही मैं तुम्हारा पेट फोड़ दूँगा।' यह कहकर वह अपने तीक्ष्ण पंजोंसे मेरे पेटको विदारण करने लगा। इतनेमें ही मेरी आँखें खुल गयीं! मेरी देहपर उन नखोंके चिह्न अभीतक प्रत्यक्ष बने हुए हैं।' यह कहकर काजीने अपने शरीरका वस्त्र उठाकर सभी भक्तोंके सामने वे चिह्न दिखा दिये।

काजीके मुखसे ऐसी बात सुनकर प्रभुने काजीका जोरोंसे आलिङ्गन किया और उसके ऊपर अनन्त कृपा प्रदर्शित करते हुए बोले—'मामाजी! आप तो परम वैष्णव बन गये। हमारे शास्त्रोंमें लिखा है कि जो किसी भी बहानेसे, हँसीमें, दुःखमें अथवा वैसे ही भगवान्‌के नामोंका उच्चारण कर लेता है उसके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं*। आपने तो कई बार 'हरि' 'कृष्ण' इन सुमधुर नामोंका उच्चारण किया है। इन नामोंके उच्चारणके ही कारण आपकी बुद्धि इतनी निर्मल हो गयी है।'

प्रभुका प्रेमालिङ्गन पाकर काजीका रोम-रोम खिल उठा। उसे अपने शरीरमें एक प्रकारके नवजीवनका-सा सञ्चार होता हुआ दिखायी देने लगा। वह अपनेमें अधिकाधिक स्निग्धता, कोमलता और पवित्रताका अनुभव करने लगा। तब प्रभुने कहा—'अच्छा तो मामाजी! आपसे मुझे यही बात कहनी है कि अब आप संकीर्तनका विरोध कभी न करें।'

---

* साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
(श्रीमद्भा० ६।२।१४)

गद्गद-कण्ठसे काजी कहने लगा—'गौरहरि ! तुम साक्षात् नारायणस्वरूप हो, तुम्हारे सामने मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि मैं अपने कुल-परिवारको छोड़ सकता हूँ, कुटुम्बी तथा जातिवालोंका परित्याग कर सकता हूँ, किन्तु आजसे संकीर्तनका कभी भी विरोध नहीं करूँगा। तुम लोगोंसे कह दो, वे बेखटके कीर्तन करें।'

काजीकी ऐसी बात सुनकर उपस्थित सभी भक्त मारे प्रसन्नताके उछलने लगे। प्रभुने एक बार फिर काजीको गाढालिङ्गन प्रदान किया और आप भक्तोंके सहित फिर उसी प्रकार आगे चलने लगे। प्रभुके पीछे-पीछे प्रेमके अश्रु बहाते हुए काजी भी चलने लगा और लोगोंके 'हरि बोल' कहनेपर वह भी 'हरि बोल' की उच्च ध्वनि करने लगा। इस प्रकार संकीर्तन करते हुए प्रभु केलाखोलवाले श्रीधर भक्तके घरके सामने पहुँचे। भक्तवत्सल प्रभु उस अकिञ्चन दीन-हीन भक्तके घरमें घुस गये। गरीब भक्त एक ओर बैठा हुआ भगवान्के सुमधुर नामोंका उच्चस्वरसे गायन कर रहा था। प्रभुको देखते ही वह मारे प्रेमके पुलकित हो उठा और जल्दीसे प्रभुके पाद-पद्मोंमें गिर पड़ा। श्रीधरको अपने पैरोंके पास पड़ा देखकर प्रभु उससे प्रेमपूर्वक कहने लगे—'श्रीधर ! हम तुम्हारे घर आये हैं, कुछ खिलाओगे नहीं ?' बेचारा गरीब-कंगाल सोचने लगा—'हाय ! प्रभु तो ऐसे असमयमें पधारे कि इस दीन-हीन कंगालके घरमें दो मुट्ठी चबेना भी नहीं। अब प्रभुको क्या खिलाऊँ।' भक्त यह सोच ही रहा था कि उसके पासके ही फूटे लोहेके पात्रमें रखे हुए पानीको उठाकर प्रभु कहने लगे—श्रीधर ! तुम सोच क्या रहे हो ? देखते नहीं हो, अमृत भरकर तो तुमने इस पात्रमें हो रख रखा है।' यह कहते-कहते प्रभु उस समस्त जलको पान कर गये। श्रीधर रो-रोकर कह रहा था—'प्रभो ! यह जल आपके योग्य नहीं है, नाथ ! इस फूटे पात्रका जल अशुद्ध है।' किन्तु प्रभु कब सुननेवाले थे। उनके लिये भक्तकी सभी

वस्तुएँ शुद्ध और परम प्रिय हैं। उनमें योग्यायोग्य और अच्छी-बुरीका भेदभाव नहीं। सभी भक्त श्रीधरके भाग्यकी सराहना करने लगे और प्रभुकी भक्तवत्सलताकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे। श्रीधर भी प्रेममें विह्वल होकर पृथ्वीपर गिर पड़े।

काजी यहाँतक प्रभुके साथ-ही-साथ आया था। अब प्रभुने उससे लौट जानेके लिये कहा। वह प्रभुके प्रति नम्रतापूर्वक प्रणाम करके लौट गया। उस दिनसे उसने ही नहीं, किन्तु उसके सभी वंशके लोगोंने संकीर्तनका विरोध करना छोड़ दिया। नवद्वीपमें अद्यावधि चाँदखाँ काजीका वंश विद्यमान है। काजीके वंशके लोग अभीतक श्रीकृष्ण-संकीर्तनमें योगदान देते हैं। वेलपुकर या ब्राह्मणपुकर-स्थानमें अभीतक चाँदखाँ काजीकी समाधि बनी हुई है। उस महाभागवत सौभाग्यशाली काजीकी समाधिके निकट अब भी जाकर वैष्णवगण वहाँकी धूलिको अपने मस्तकपर चढ़ाकर अपनेको कृतार्थ मानते हैं। वह प्रेम-दृश्य उसकी समाधिके समीप जाते ही, भावुक भक्तोंके हृदयोंमें सजीव होकर ज्यों-का-त्यों ही नृत्य करने लगता है। धन्य है महाप्रभु गौराङ्गदेवके ऐसे प्रेमको, जिसके सामने विरोधी भी नतमस्तक होकर उसकी छत्र-छायामें अपनेको सुखी बनाते हैं और धन्य है ऐसे महाभाग काजीको जिसे मामा कहकर महाप्रभु प्रेमपूर्वक गाढालिङ्गन प्रदान करते हैं।

भक्तोंकी लीलाएँ

तत्तद्भावादिमाधुर्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते ।
नात्र शास्त्रं न युक्तिञ्च तल्लोभोत्पत्तिलक्षणम् ॥*

प्रकृतिसे परे जो भाव हैं, उन्हें शास्त्रोंमें अचिन्त्य बताया गया है। वहाँ जीवोंकी साधारण प्राकृतिक बुद्धिसे काम नहीं चलता, उन भावोंमें

---

* भक्तोंके शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर इन रसोंके आश्रित माधुर्यके श्रवणसे जिनकी बुद्धि शास्त्रोंकी और युक्तियोंकी अपेक्षा नहीं रखती, वहां समझना चाहिये कि भक्तको भगवान्‌की लीलाओंके प्रति लोभ उत्पन्न होने लगा। अर्थात् रागानुगा भक्तिकी उत्पत्ति हो जानेपर शास्त्रवाक्योंकी तथा युक्तियोंकी अपेक्षा नहीं रहती।

अपनी युक्ति लड़ाना व्यर्थ-सा ही है। यह तो प्रकृतिके परेके भावोंकी बात है। बहुत-सी प्राकृतिक घटनाएँ भी ऐसी होती हैं, जिनके सम्बन्धमें मनुष्य ठीक-ठीक कुछ कह ही नहीं सकता। क्योंकि कोई मनुष्य पूर्ण नहीं है। पूर्ण तो वही एकमात्र परमात्मा है। मनुष्यकी बुद्धि सीमित और संकुचित है। जितनी ही जिसकी बुद्धि होगी, वह उतना ही अधिक सोच सकेगा। तर्ककी कसौटीपर कसकर किसी बातकी सत्यता सिद्ध नहीं हो सकती। किसी बातको किसीने तर्कसे सत्य सिद्ध कर दिया, किन्तु उसीको उससे बड़ा तार्किक एकदम खण्डन कर सकता है। अतः इसमें श्रद्धा ही मुख्य कारण है; जिस स्थानपर जिसकी जैसी भी श्रद्धा जम गयी, उसे वहाँ वही सत्य और ठीक मालूम पड़ने लगेगा। रागानुगा भक्तिकी उत्पत्ति हो जानेपर मनुष्यको अपने इष्टकी लीलाओंके प्रति लोभ उत्पन्न हो जाता है। लोभी अपने कार्यके सामने विघ्न-बाधाओंकी परवा ही नहीं करता। वह तो आँख मूँदे चुपचाप बढ़ा ही चलता है। भक्तोंकी श्रद्धामें और साधारण लोगोंकी श्रद्धामें आकाश-पातालका अन्तर है, भक्तोंको जिन बातोंमें कभी शंकाका ध्यानतक भी नहीं होता, उन्हीं बातोंको साधारण लोग ढोंग, पाखण्ड, झूठ अथवा अर्थवाद कहकर उसकी उपेक्षा कर देते हैं। वे करते रहें, भक्तोंको इससे क्या? जब वेशास्त्र और युक्तियोंतककी अपेक्षा नहीं रखते तब साधारण लोगोंकी उपेक्षाकी ही परवा क्यों करने लगे। महाप्रभुके संकीर्तनके समय भी भक्तोंको बहुत-सी अद्भुत घटनाएँ दिखायी देती थीं, जिनमेंसे दो-चार नीचे दी जाती हैं।

एक दिन प्रभुने श्रीवासके घर संकीर्तनके पश्चात् आमकी एक गुठलीको लेकर आँगनमें गाड़ दिया। देखते-ही-देखते उसमेंसे अङ्कुर उत्पन्न हो गया और कुछ ही क्षणमें वह अङ्कुर बढ़कर पूरा वृक्ष बन गया। भक्तोंने आश्चर्यके सहित उस वृक्षको देखा। उसी समय उसपर फल भी दीखने लगे और वे बात-की-बातमें पके हुए-से दीखने लगे।

प्रभुने उन सभी फलोंको तोड़ लिया। और सभी भक्तोंको एक-एक बाँट दिया। आमोंको देखनेसे ही तबीयत प्रसन्न होती थी, बड़े-बड़े सिंदूरिया-रंगके वे आम भक्तोंके चित्तोंको स्वतः ही अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। उनमेंसे दिव्य गन्ध निकल रही थी। भक्तोंने उनको प्रभुका प्रसाद समझकर प्रेमसे पाया। उन आमोंमें न तो गुठली थी, न छिलका। बस, चारों ओर ओतप्रोतभावसे अद्भुत माधुर्यमय रस-ही-रस भरा था। एक आमके खानेसे ही पेट भर जाता, फिर भक्तोंको अन्य कोई वस्तु खानेकी अपेक्षा नहीं रहती। रहनी भी न चाहिये, जब प्रेम-वाटिकाके सुचतुर माली महाप्रभु गौराङ्गके हाथसे लगाये हुए वृक्षका भक्ति-रससे भरा हुआ आम खा लिया तब इन सांसारिक खाद्य-पदार्थोंकी आवश्यकता ही क्या रहती है? इस प्रकार यह आम्र-महोत्सव श्रीवासके घर बारहों महीने होता था, किन्तु जिसे इस बातका विश्वास नहीं होता, एक अभक्तको उस आम्रके दर्शन भी नहीं होते थे, मिलना तो दूर रहा। आजतक भी नवद्वीपमें एक स्थान आम्रघट्ट या आम्रघाटा नामसे प्रसिद्ध होकर उन आमोंका स्मरण दिला रहा है। उन सुन्दर, सुस्वादु और दर्शनीय तथा बिना गुठली-छिलकाके आमोंके स्मरणसे हमारे तो मुँहमें सचमुचमें पानी भर आया।

एक दिन संकीर्तनके समय मेघ आने लगे। आकाशमें बड़े-बड़े बादल आकर चारों ओर घिर गये। असमयमें आकाशको मेघाच्छन्न देखकर भक्त कुछ भयभीत-से हुए। उन्होंने समझा सम्भव है, मेघ हमारे इस संकीर्तनके आनन्दमें विघ्न उपस्थित करें। प्रभुने भक्तोंके भावोंको समझकर उसी समय एक हुंकार मारी। प्रभुके हुंकार सुनते ही मेघ इधर-उधर हट गये और आकाश बिल्कुल साफ हो गया।

अब एक घटना ऐसी है, जिसे सुनकर सभी संसारी प्राणी क्या अच्छे-अच्छे परमार्थ-मार्गके पथिक भी आश्चर्यचकित हो जायँगे। इस

घटनासे पाठकोंको पता चल जायगा कि भगवद्भक्तिमें कितना माधुर्य है। जिसे भगवत्कृपाका अनुभव होने लगा है, ऐसे अनन्य भक्तके लिये माता-पिता, दारा-पुत्र तथा अन्यान्य सभी बन्धु-बान्धव के प्रति तनिक भी मोह नहीं रह जाता। वह अपने इष्टदेवको ही सर्वस्व समझता है। इष्टदेवकी प्रसन्नतामें ही उसे प्रसन्नता है, वह अपने आराध्यदेवकी प्रसन्नताके निमित्त सबका त्याग कर सकता है। दुष्कर-से-दुष्कर समझे जानेवाले कार्यको प्रसन्नतापूर्वक कर सकता है।

एक दिन सभी भक्त मिलकर श्रीवासके आँगनमें प्रेमके सहित संकीर्तन कर रहे थे। उस दिन न जाने क्यों, सभी भक्त संकीर्तनमें एक प्रकारके अलौकिक आनन्दका अनुभव करने लगे। सभी भक्त नाना वाद्योंके सहित प्रेममें विभोर हुए शरीरकी सुधि भुलाकर नृत्य कर रहे थे। इतनेहीमें प्रभु भी संकीर्तन में आकर सम्मिलित हो गये। प्रभुके संकीर्तनमें आ जानेसे भक्तोंका आनन्द और भी अधिक बढ़ने लगा। प्रभु भी सब कुछ भूलकर भक्तोंके सहित नृत्य करने लगे। प्रभुके पीछे-पीछे श्रीवास भी नृत्य कर रहे थे। इतनेमें ही एक दासीने धीरेसे आकर श्रीवासको भीतर चलनेका संकेत किया। दासीके संकेतको समझकर श्रीवास भीतर चले गये। भीतर उनका बच्चा बीमार पड़ा हुआ था। उनकी स्त्री बच्चेकी सेवा-शुश्रूषामें लगी हुई थी। शचीमाता भी वहाँ उपस्थित थीं। बच्चेकी दशा अत्यन्त ही शोचनीय थी। श्रीवासने बच्चेकी छातीपर हाथ रखा, फिर उसकी नाड़ी देखी और अन्तमें उस बच्चेके मुँहकी ओर देखने लगे। श्रीवासको पता चल गया कि बच्चा अन्तिम साँस ले रहा है। बच्चेकी ऐसी दशा देखकर घरकी सभी स्त्रियाँ घबड़ाने लगीं। श्रीवासजीने उन सबको धैर्य बँधाया और वे उसी तरह बच्चेके सिरहाने बैठकर उसके सिरपर हाथ फेरने लगे। थोड़ी ही देरमें श्रीवासने देखा, बच्चा अब साँस नहीं ले रहा है। उसके प्राण-पखेरू इस नश्वर शरीरको त्याग कर किसी अज्ञात लोकमें चले गये हैं। यह देखकर

बच्चेकी माँ और उसकी सभी चाची रुदन करने लगीं। हाय! इकलौते पुत्रकी मृत्युपर माताको कितना भारी शोक होता है, इसका अनुभव कोई मनुष्य कर ही कैसे सकता है? माताका हृदय फटने लगता है। उसका शरीर नहीं रोता है, किन्तु उसका अन्तःकरण पिघलने लगता है, वही पिघल-पिघलकर आँसुओंके रूपमें स्वतः ही बहने लगता है। उस समय उसे रोनेसे कौन रोक सकता है? वह बाहरी रुदन तो होता ही नहीं, वह तो अन्तर्ज्वालाकी भभक होती है, जिससे उसका नवनीतके समान स्निग्ध हृदय स्वतः ही पिघल उठता है। मरे हुए अपने इकलौते पुत्रको शय्यापर पड़े देखकर माताका हृदय फटने लगा, वह जोरसे चीत्कार मारकर पृथ्वीपर मूर्छित होकर गिर पड़ी। अपनी पत्नीको इस प्रकार पछाड़ खाते देखकर तथा घरकी अन्य सभी स्त्रियोंको रुदन करते देखकर श्रीवासजी दृढ़ताके साथ उन सबको समझाते हुए कहने लगे—'देखना, खबरदार किसीने साँस भी निकाली तो फिर खैर नहीं है। देखती नहीं हो, आँगनमें प्रभु नृत्य कर रहे हैं! उनके आनन्दमें भङ्ग न होना चाहिये। मुझे पुत्रके मर जाने का उतना शोक कभी नहीं हो सकता, जितना प्रभुके आनन्दमें विघ्न पड़नेसे होगा। यदि संकीर्तनके बीचमें कोई भी रोयी तो मैं अभी गङ्गाजीमें कूदकर प्राण दे दूँगा। मेरी इस बातको बिल्कुल ठीक समझो।'

हाय! कितनी भारी कठोरता है! भक्ति देवी! तेरे चरणोंमें कोटि-कोटि नमस्कार है। जिस प्रेम और भक्तिमें इतनी भारी स्निग्धता और सरसता है, उसमें क्या इतनी भारी कठोरता भी रह सकती है? जिसका एकमात्र प्राणोंसे भी प्यारा, नयनों का तारा, सम्पूर्ण घरको प्रकाशित करनेवाला इकलौता पुत्र मर गया हो और उसका मृत देह माताके सम्मुख ही पड़ा हो, उस मातासे कहा जाता है कि तू आँसू भी नहीं बहा सकती। जोरसे रोकर अपने हृदयकी ज्वालाको भी कम नहीं कर सकती।

कितना भारी अन्याय है, कैसी निर्दय आज्ञा है ? कितनी भारी कठोरता है ? किन्तु भक्तको अपने इष्टदेवकी प्रसन्नताके निमित्त सब कुछ करना पड़ता है। पति-परायणा बेचारी मालिनीदेवी मन मसोसकर चुप हो गयी। उसने अपनी छातीपर पत्थर रखकर कलेजेको कड़ा किया। भीतरकी ज्वालाको भीतर ही रोका और आँसुओंको पोंछकर चुप हो गयी।

पत्नीके चुप हो जानेपर श्रीवास धीरे-धीरे उसे समझाने लगे—'इस बच्चेका इससे बढ़कर और बड़ा भारी सौभाग्य क्या हो सकता है, जो साक्षात् गौराङ्ग जब आँगनमें नृत्य कर रहे हैं, तब इसने शरीर-त्याग किया है। महाप्रभु ही तो सबके स्वामी हैं। उनकी उपस्थितिमें शरीर-त्याग करना क्या कम सौभाग्यकी बात है ?'

मालिनीदेवी चुपचाप बैठी हुई पतिकी बातें सुन रही थी। उसका हृदय फटा-सा जा रहा था। श्रीवासजीने फिर एक बार दृढ़ताके साथ कहा—'सबको समझा देना। प्रभु जबतक नृत्य करते रहें तबतक कोई भी रोने न पावे। प्रभुके आनन्द-रसमें तनिक भी विघ्न पड़ा तो इस लड़केके साथ ही मेरे इस शरीरका भी अन्त ही समझना।' इतना कहकर श्रीवासजी फिर बाहर आँगनमें आ गये और भक्तोंके साथ मिलकर उसी प्रकार दोनों हाथोंको ऊपर उठाकर संकीर्तन और नृत्य करने लगे।

चार घड़ी रात्रि बीतनेपर बच्चेकी मृत्यु हुई थी। आधी रात्रिसे कुछ अधिक समयतक भक्तगण उसी प्रकार कीर्तन करते रहे, किन्तु इतनी बड़ी बात और कितनी देरतक छिपी रह सकती है। धीरे-धीरे भक्तोंमें यह बात फैलने लगी। एकसे दूसरेके कानमें पहुँचती, जो भी सुनता, वही कीर्तन बंद करके चुप हो जाता। इस प्रकार धीरे-धीरे सभी भक्त चुप हो गये। खोल-करताल आदि सभी वाद्य भी आप-से-आप ही बंद हो गये। प्रभुने भी नृत्य बंद कर दिया। इस प्रकार

कीर्तनको आप-से-आप ही बंद होते देखकर प्रभु श्रीवासकी ओर देखते हुए कहने लगे—'पण्डितजी ! आपके घरमें कोई दुर्घटना तो नहीं हो गयी है ? न जाने क्यों हमारा मन संकीर्तनमें नहीं लग रहा है। हृदयमें एक प्रकारकी खलबली-सी हो रही है।'

अत्यन्त ही दीन-भावसे श्रीवास पण्डितने कहा—'प्रभो ! जहाँ आप संकीर्तन कर रहे हों, वहाँ कोई दुर्घटना हो ही कैसे सकती है ? सम्पूर्ण दुर्घटनाओंके निवारणकर्ता तो आप ही हैं। आपके सम्मुख भला दुर्घटना आ ही कैसे सकती है ? आप तो मंगलस्वरूप हैं। आपकी उपस्थितिमें तो परम मंगल-ही-मंगल होने चाहिये।'

प्रभुने दृढ़ताके साथ कहा—'नहीं, ठीक बताइये। मेरा मन व्याकुल हो रहा है। हृदय आप-से-आप ही निकल पड़ना चाहता है। अवश्य ही कोई दुर्घटना घटित हो गयी है।'

प्रभुके इस प्रकार दृढ़ताके साथ पूछनेपर श्रीवास चुप हो गये, उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब धीरेसे एक भक्तने कहा—'प्रभो ! श्रीवास का इकलौता पुत्र परलोकवासी हो गया है।'

सम्भ्रमके साथ श्रीवासके मुखकी ओर देखते हुए प्रभुने चौंककर कहा—'हैं ! क्या कहा ? श्रीवासके पुत्रका परलोकवास ? कब हुआ ? पण्डितजी ! आप बतलाते क्यों नहीं ? असली बात क्या है ?'

श्रीवास फिर भी चुप ही रहे, तब उसी भक्तने फिर कहा—'प्रभो ! इस बातको तो ढाई प्रहर होनेको आया। आपके आनन्दमें विघ्न होगा, इसीलिये श्रीवास पण्डितने यह बात किसीपर प्रकट नहीं की।'

इतना सुनते ही प्रभुकी दोनों आँखोंसे अश्रुओंकी धारा बहने लगी। गद्गद-कण्ठसे प्रभुने कहा—'श्रीवास ! आपने आज श्रीकृष्णको खरीद

लिया। ओहो! इतनी भारी दृढ़ता! इकलौते मरे पुत्रको भीतर छोड़कर आप उसी प्रेमसे कीर्तन कर रहे हैं। धन्य है आपकी भक्तिको और बलिहारी है आपके कृष्ण-प्रेमको। सचमुच आप-जैसे भक्तोंके दर्शनोंसे ही कोटि जन्मोंके पापोंका क्षय हो जाता है।' यह कहकर प्रभु फूट-फूटकर रोने लगे।

प्रभुको इस प्रकार रोते देखकर गद्गद-कण्ठसे श्रीवास पण्डितने कहा—'प्रभो! मैं पुत्र-शोकको तो सहन करनेमें समर्थ हो सकता हूँ, किन्तु आपके रुदनको नहीं सह सकता। हे सम्पूर्ण प्राणियोंके एकमात्र आश्रयदाता! आप अपने कमल-नयनोंसे अश्रु बहाकर मेरे हृदयको दुखी न बनाइये। नाथ! मैं आपको रोते हुए नहीं देख सकता।'

इतनेमें ही कुछ भक्त भीतर जाकर श्रीवास पण्डितके मृत पुत्रके शरीरको आँगनमें उठा लाये। प्रभु उसके सिरहाने बैठ गये और अपने कोमल करसे उसका स्पर्श करते हुए जीवित मनुष्यसे जिस प्रकार पूछते हैं उसी प्रकार पूछने लगे—'क्यों जीव! तुम कहाँ हो? इस शरीरको परित्याग करके क्यों चले गये?' उस समय प्रभुके अन्तरङ्ग भक्तोंको मानो स्पष्ट सुनायी देने लगा कि वह मृत शरीर जीवित पुरुषकी भाँति उत्तर दे रहा है। उसने कहा—'प्रभो! हम तो कर्माधीन हैं। हमारा इस शरीरमें इतने ही दिनका संस्कार था। अब हम बहुत उत्तम स्थानमें हैं और खूब प्रसन्न हैं।'

प्रभुने कहा—'कुछ काल इस शरीरमें और क्यों नहीं रहते?'

मानो जीवने उत्तर दिया—'प्रभो! आप सर्वसमर्थ हैं। आप प्रारब्धको भी मेट सकते हैं, किन्तु हमारा इस शरीरमें इतने ही दिनका भोग था। अब हमारी इस शरीरमें रहनेकी इच्छा भी नहीं है, क्योंकि अब हम जहाँ हैं वहाँ यहाँसे अधिक सुखी हैं।'

जीवका ऐसा उत्तर सुनकर सभी लोगोंका शोक-मोह दूर हो गया। तब प्रभुने श्रीवास पण्डितको सान्त्वना देते हुए कहा—'पण्डितजी! आप तो स्वयं सब कुछ जानते हैं। आपका इस पुत्रके साथ इतने ही दिनोंका संस्कार था। अबतक आप इस एकको ही अपना पुत्र समझते थे। अब हम और श्रीपाद नित्यानन्द आपके दोनों ही पुत्र हुए। आजसे हम दोनोंको आप अपने सगे पुत्र ही समझें।' प्रभुकी ऐसी बात सुनकर श्रीवास प्रेमके कारण विह्वल हो गये और उनकी आँखोंमेंसे प्रेमाश्रु बहने लगे। इसके अनन्तर भक्तोंने उस मृत शरीरका विधिवत् संस्कार किया।

ओहो! कितना ऊँचा आदर्श है? इकलौते पुत्रके मर जानेपर भी जिनके शरीरको सन्ताप—पीड़ा नहीं हो सकती, क्या वे संसारी मनुष्य कहे जा सकते हैं? क्या उनकी तुलना मायाबद्ध जीवके साथ की जा सकती है? सचमुचमें वे श्यामसुन्दरके सदाके सुहृद् और सखा हैं। ऐसे भगवान्‌के प्राणप्यारे भक्तोंको सन्ताप कहाँ? जिनका मन-मधुप उस मुरलीमनोहरके मुखरूपी कमलकी मकरन्द-मधुरिमाका पान कर चुका है उसे फिर संसारी सन्तापरूपी वन-वीथियोंमें व्यर्थ घूमनेसे क्या लाभ? वह तो उस अपने प्यारेकी प्रेमवाटिकामें विचरण करता हुआ सदा आनन्दका रसास्वादन करनेमें ही मस्त बना रहेगा। श्रीमद्भागवतमें हरिनामक योगेश्वरने ठीक ही कहा है—

भगवत उरुविक्रमाङ्घ्रिशाखा-
नखमणिचन्द्रिकया निरस्ततापे।
हृदि कथमुपसीदतां पुनः स
प्रभवति चन्द्र इवोदितेऽर्कतापः॥

(११।२।५४)

अर्थात् भगवत्-सेवासे परम सुख मिलनेके कारण, उन भगवान्के अरुण कोमल चरणारविन्दोंके मणियोंके समान चमकीले नखोंकी चन्द्रमाके समान शीतल किरणोंकी कान्तिसे एक बार जिसके हृदयके सम्पूर्ण सन्ताप नष्ट हो चुके हों, ऐसे भक्तके हृदयमें संसारी सुखोंके वियोगजन्य दुःख-सन्तापकी स्थिति हो ही कैसे सकती है ? जिस प्रकार रात्रिमें चन्द्रमाके उदय होनेपर सूर्यका ताप किञ्चिन्मात्र भी नहीं रहता, उसी प्रकार भगवत्-कृपाके होनेपर संसारी तापोंका अत्यन्ताभाव हो जाता है ।

इस प्रकार भक्तोंकी सभी लीलाएँ अचिन्त्य हैं, वे मनुष्यकी बुद्धिके बाहरकी बातें हैं । जिनके ऊपर भगवत्-कृपा होती है, जिन्हें भगवान् ही अपना कहकर वरण कर लेते हैं, उन्हींकी किसी महापुरुषके प्रति भगवत्-भावना होती है और वे ही उस अनिर्वचनीय आनन्दके रसास्वादनके अधिकारी भी बन सकते हैं । प्रभुकी सभी लीलामें प्रेम-ही-प्रेम भरा रहता था, क्योंकि वे प्रेमकी सजीव-साकार मूर्ति ही थे ।

शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी प्रभुके अनन्य भक्तोंमेंसे थे । वे कभी-कभी ऐसा अनुभव करते थे, कि प्रभुकी हमारे ऊपर जैसी होनी चाहिये वैसी कृपा नहीं है । उनके मनोगत भावको समझकर प्रभुने एक दिन उनसे कहा—'ब्रह्मचारीजी ! कल हम तुम्हारे ही यहाँ भोजन करेंगे, हमारे लिये और श्रीपाद नित्यानन्दके लिये तुम ही कल भोजन बना रखना ।' ब्रह्मचारीजीको इस बातसे हर्ष भी अत्यधिक हुआ और साथ ही दुःख भी । हर्ष तो इसलिये हुआ कि प्रभुने हमें भी अपनी सेवाके योग्य समझा और दुःख इसलिये हुआ कि प्रभु कुलीन ब्राह्मण हैं, वे हमारे भिक्षुकके हाथका भात कैसे खायँगे ? इसीलिये उन्होंने दीन-भावसे कहा—'प्रभो ! हम तो भिक्षुक हैं, आपको भोजन करानेके योग्य नहीं हैं । नाथ ! हम इतनी कृपाके सर्वथा अयोग्य हैं ।'

प्रभुने आग्रहके साथ कहा—'तुम चाहे मानो, चाहे मत मानो, हम तो कल तुम्हारे ही यहाँ खायँगे। वैसे न दोगे, तो तुम्हारी थालीमें-से छीनकर खायँगे।' यह सुनकर ब्रह्मचारीजी बड़े असमञ्जसमें पड़े। उन्होंने और भी दो-चार अन्तरङ्ग भक्तोंसे इस सम्बन्धमें पूछा। भक्तोंने कहा—'प्रेममें नेम कैसा? प्रभुके लिये कोई नियम नहीं है। वे अनन्य भक्तोंके तो जूँठे अन्नको खाकर भी बड़े प्रसन्न होते हैं, आप प्रेमपूर्वक भात बनाकर प्रभुको खिलाइये।'

भक्तोंकी सम्मति मानकर दूसरे दिन ब्रह्मचारीजीने बड़ी पवित्रताके साथ स्नान-सन्ध्या-वन्दनादि करके प्रभुके लिये भोजन बनाया। इतनेमें ही नित्यानन्दजीके साथ गङ्गास्नान करके प्रभु आ गये। प्रभुने नित्यानन्दजीके साथ बड़े ही प्रेमसे भोजन पाया। भोजन करते-करते आप कहते जाते थे—इतने दिनोंसे दाल, भात और शाक खाते रहे हैं, किन्तु आजके-जैसा स्वादिष्ट भोजन हमने जीवनभरमें कभी नहीं पाया। चावल कितने स्वादिष्ट हैं। कड़ाखोल कितना बढ़िया बना है। इस प्रकार प्रशंसा करते-करते दोनोंने भोजन समाप्त किया। ब्रह्मचारीजीने भक्ति-भावसे दोनोंके हाथ धुलाये। खा-पीकर दोनों ही ब्रह्मचारीजीकी कुटियाकी छतपर सो गये।

ब्रह्मचारीजीकी कुटिया बिल्कुल गङ्गाजीके तटपर ही थी। छतपर गङ्गाजीके शीतल कणोंसे मिली हुई ठण्डी-ठण्डी वायु आ रही थी। नित्यानन्दजीके सहित प्रभु वहाँ आसन बिछाकर लेट गये।

विजय आखरिया नामक एक भक्त प्रभुके समीप ही लेटे हुए थे। विजयकृष्ण जातिके कायस्थ थे। वे पुस्तकें लिखनेका काम करते थे। उस समय छापेखाने तो थे ही नहीं। सभी पुस्तकें हाथसे ही लिखी जाती थीं। जिनका लेख सुन्दर होता, वे पुस्तकें लिखकर ही अपना जीवन-निर्वाह करते थे। विजय भी पुस्तकें ही लिखा करते थे। प्रभुके प्रति

इनके हृदयमें बड़ी भक्ति थी। प्रभु भी अत्यधिक प्यार करते थे। इन्होंने प्रभुकी बहुतसी पुस्तकें लिखी थीं। सोते-ही-सोते इन्हें एक दिव्य हाथ दिखायी देने लगा। वह हाथ चिन्मय था, उसकी उँगलियोंमें भाँति-भाँतिके दिव्य रत्न दिखायी दे रहे थे। आखरियाको उस चिन्मय हस्तके दर्शनसे परम कुतूहल हुआ। वह उठकर चारों ओर देखने लगे। तब भी उन्हें वह हाथ ज्यों-का-त्यों ही प्रतीत होने लगा। वह उस अद्भुत रूप-लावण्ययुक्त दिव्य हस्तके दर्शनसे पागल-से हो गये। प्रभुने हँसकर पूछा—'विजय! क्या बात है। क्यों इधर-उधर देख रहे हो? कोई अद्भुत वस्तु दिखायी दे रही है क्या? शुक्लाम्बर ब्रह्मचारी बड़े भगवत्-भक्त हैं, इनके यहाँ श्रीकृष्ण सदा सशरीर विराजते हैं। तुम्हें उन्हींके तो दर्शन नहीं हो रहे हैं?' प्रभुकी बात सुनकर विजयने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उत्तर दें भी तो कहाँसे? उन्हें तो अपने शरीरतकका होश नहीं था, प्रभुकी बातें सुनकर वह पागलोंकी भाँति कभी तो हँसते, कभी रोते और कभी आप ही बड़बड़ाने लगते। ब्रह्मचारीजी तथा नित्यानन्दजीने भी उठकर उनकी ऐसी दशा देखी। वे समझ गये, प्रभुकी इनके ऊपर कृपा हो गयी है। इस प्रकार विजय सात दिनतक इसी तरह पागलोंकी-सी चेष्टाएँ करते रहे। उन्हें शरीरका कुछ भी ज्ञान नहीं था। न तो कुछ खाते-पीते ही थे और न रात्रिमें सोते ही थे। पागलोंकी तरह सदा रोते ही रहते और कभी-कभी जोरोंसे हँसने भी लगते। सात दिनके बाद उन्हें बाह्य ज्ञान हुआ। तब उन्होंने अन्तरङ्ग भक्तोंपर यह बात प्रकट की।

इसी प्रकार श्रीवास पण्डितके घर एक दर्जी रहता था। नित्यप्रति कीर्तन सुनते-सुनते उसकी कीर्तनमें तथा महाप्रभुके चरणोंमें अगाढ़ भक्ति हो गयी। प्रभु जब भी उधरसे निकलते तभी वह भक्ति-भावसहित उन्हें प्रणाम करता। एक दिन उसे भी प्रभुके दिव्यरूपके दर्शन हुए। उस अलौकिक रूपके दर्शन करके वह मुसलमान दर्जी कृतकृत्य हो गया

और पागलोंकी तरह बाजारमें कई दिनतक 'देखा है' 'देखा है' कहकर चिल्लाता फिरा।

इस प्रकार प्रभु अपने अन्तरङ्ग भक्तोंमें भाँति-भाँतिकी प्रेम-लीलाएँ करते रहे। उनके शरणापन्न भक्तोंको ही उनके ऐसे-ऐसे रूपोंके दर्शन होते थे। अन्य साधारण लोगोंकी दृष्टिमें तो वे निमाई पण्डित ही थे। बहुतोंकी दृष्टिमें तो ढोंगी भी थे। यद्यपि उनका न तो किसीसे विशेष राग था, न द्वेष, तो भी जो एकदम उन्हींके बन जाते, उन्हें उनके दिव्य-दिव्य रूपोंके दर्शन होने लगते। भगवान्‌के सम्बन्धमें भी यही बात कही जाती है, कि भगवान्‌के लिये सभी समान हैं, प्राणीमात्रपर वे कृपा करते हैं, किंतु जो सबका आश्रय त्यागकर एकदम उन्हींका पल्ला पकड़ लेते हैं, उनकी वे सम्पूर्ण मनःकामनाओंको पूर्ण कर देते हैं। जैसे कल्पवृक्ष सबके लिये समान रूपसे सुख देनेवाला होता है, किन्तु मनोवाञ्छित फल तो वह उन्हीं लोगोंको प्रदान करता है, जो उसके नीचे बैठकर उन फलोंका चिन्तन करते हैं। चाहे उसके निकट ही घर बनाकर क्यों न रहो, जबतक उसकी छत्र-छायामें प्रवेश न करोगे, जबतक उसके मूलमें बैठकर चिन्तन न करोगे, तबतक अभीष्ट वस्तुकी प्राप्ति हो ही नहीं सकती। प्रभुके पाद-पद्मोंका आश्रय लेनेपर ही उसकी कृपाके हम अधिकारी बन सकते हैं।*

---

* न तस्य कश्चिद् दयितः सुहृत्तमो
न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा।
तथापि भक्तान् भजते यथा तथा
सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः॥

(श्रीमद्भा० १०। ३८। २२)

नवानुराग और गोपी-भाव

> क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्वृतः ।
> अस्पन्दप्रणयानन्दसलिलामीलितेक्षणः ॥
> आसीनः पर्यटन्नश्नञ्छयानः प्रपिबन् ब्रुवन् ।
> नानुसंधत्त एतानि गोविन्दपरिरम्भितः ॥*
>
> (श्रीमद्भा० ७ । ४ । ४१, ३८)

महाप्रभु जबसे गयासे लौटकर आये थे, तभीसे सदा प्रेममें छके-से बाह्य-ज्ञानशून्य-से तथा बेसुधि-से बने रहते थे, किन्तु भक्तोंके साथ संकीर्तन करनेमें उन्हें अत्यधिक आनन्द आता। कीर्तनमें वे सब कुछ भूल जाते। जहाँ उनके कानोंमें संकीर्तनकी सुमधुर ध्वनि सुनायी पड़ी कि उनका मन उन्मत्त होकर नृत्य करने लगता। संकीर्तनके वाद्योंको सुनते ही उनके रोम-रोम खिल जाते और वे भावावेशमें आकर रात्रिभर

---

* भगवत्-अनुरागमें विभोर हुए प्रह्लादजीकी अवस्थाका वर्णन करते हैं—'वे कभी-कभी भगवत्-स्वरूपमें तन्मय हो जानेके कारण उसी भावमें निमग्न-से हो जाते थे, उनका सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो उठता था। अचल प्रेमके कारण उत्पन्न हुए प्रेमाश्रुओंके कारण उनके नेत्र कुछ मुँद-से जाते थे, ऐसी अवस्थामें वे किसीसे भी कुछ न बोलकर एकान्तमें चुपचाप बैठे रहते थे। बैठते हुए, खाते हुए, घूमते हुए, सोते हुए, जल पीते हुए और संलाप तथा भाषण करते हुए, भोजन और आसनादि भोग्य पदार्थोंके उपभोगके समय उन्हें अपने गुण-दोषोंका भी ध्यान नहीं रहता था, क्योंकि गोविन्दने उन्हें अपनेमें अत्यन्त ही लवलीन कर लिया था।

अखण्ड नृत्य करते रहते। न शरीरकी सुधि और न बाहरी जगत्का बोध; बस, उनका शरीर यन्त्रकी तरह घूमता रहता। इससे भक्तोंके भी आनन्दका पारावार नहीं रहता। वे भी प्रभुके सुखकारी मधुर नृत्यके साथ नाचने लगते। इस प्रकार बारह-तेरह महीनेतक प्रभु बराबर भक्तोंको लेकर कथा-कीर्तनमें कालयापन करते रहे।

काजीके उद्धारके अनन्तर प्रभु की प्रकृतिमें एकदम परिवर्तन दिखायी देने लगा। अब उनका चित्त संकीर्तनमें नहीं लगता था। भक्त ही मिलकर कीर्तन किया करते थे। प्रभु संकीर्तनमें सम्मिलित भी नहीं होते थे। कभी-कभी वैसे ही संकीर्तनके बीचमें चले आते और कभी-कभी भक्तोंके आग्रहसे कीर्तन करने भी लगते, किन्तु अब उनका मन किसी दूसरी ही वस्तुके लिये तड़पता रहता था। उस तड़पनके सम्मुख उनका मन संकीर्तनकी ताल-स्वरके सहित नृत्य करनेके लिये साफ इनकार कर देता था।

अब प्रभु पहलेकी तरह भक्तोंके साथ घुल-घुलकर प्रेमकी बातें नहीं किया करते। अब तो उनकी विचित्र दशा थी। कभी तो वे अपने आप ही रुदन करने लगते और कभी स्वयं ही खिलखिलाकर हँस पड़ते। कभी रोते-रोते कहने लगते—

हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन।
मग्नमुद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिनार्णवे॥

(श्रीमद्भा० १०)

हे नाथ! हे रमानाथ! हे व्रजनाथ! हे गोविन्द! दुःखसागरमें डूबे हुए इस व्रजका तुम्हीं उद्धार करो। हे दीनानाथ! हे दुःखितोंके एकमात्र आश्रय! हमारी रक्षा करो।

कभी राधा-भावमें भावित होकर रुदन करने लगते। कभी एकान्तमें अपने कोमल कपोलको हथेलीपर रखकर अन्यमनस्क भावसे अश्रु ही बहाते

रहते। कभी राधा-भावमें आप कहने लगते—'हे कृष्ण! तुम इतने निष्ठुर हो, मैं नहीं जानती थी। मैं रासमें तुम्हारी मीठी-मीठी बातोंसे छली गयी। मुझ भोली-भाली अबलाको तुम इस प्रकार धोखा दोगे, इसका मुझे क्या पता था? हाय! मेरी बुद्धिपर तब न जाने क्यों पत्थर पड़ गये कि मैं तुम्हारी उन मीठी-मीठी बातोंमें आ गयी। कहाँ तुम अखिल ऐश्वर्यके स्वामी और कहाँ मैं एक वनमें रहनेवाले ग्वालकी लड़की। तुमसे अनजानमें स्नेह किया। हा प्राणनाथ! ये प्राण तो तुम्हारे ही अर्पण हो चुके हैं। ये तो सदा तुम्हारे ही साथ रहेंगे, फिर यह शरीर चाहे कहीं भी पड़ा रहे। प्यारे! तुम कोमल हृदयके हो, सरस हो, सरल हो, सुन्दर हो, फिर तुम मेरे लिये कठोर हृदयके निष्ठुर और वक्र स्वभाववाले क्यों बन गये हो? मुझे इस प्रकारकी विरह-वेदना पहुँचानेमें तुम्हें क्या मजा मिलता है' इस प्रकार घंटों प्रलाप करते रहते।

कभी अक्रूर वृन्दावनमें श्रीकृष्णको लेनेके लिये आये हैं और गोपियाँ भगवान्‌के विरहमें रुदन कर रही हैं। इसी भावको स्मरण करके आप गोपी भावसे कहने लगते--'हा देव! तूने क्या किया? हमारे प्राणप्यारे, हमारे सम्पूर्ण व्रजके दुलारे मनमोहनको तू हमसे पृथक् क्यों कर रहा है? ओ निर्दयी विधाता! तेरी इस खोटी बुद्धिको बार-बार धिक्कार है, जो तू इस प्रकार प्रेमियोंको मिलाकर फिर उन्हें विरह-सागरमें डुबा-डुबाकर बुरी तरहसे तड़पाता रहता है। हाय! प्यारे कृष्ण! अब चले ही जायँगे क्या? क्या अब वह मुरलीकी मनोहर तान सुननेको न मिलेगी? क्या अब उस पीताम्बरकी छटा दिखायी न पड़ेगी? क्या अब मोहनके मनोहर मुखको देखकर हम सम्पूर्ण दिनके दुःख-सन्तापोंको न भुला सकेंगी? क्या अब कृष्ण हमारे घरमें माखन खाने न आवेंगे? क्या अब साँवरेकी सलोनी सूरतको देखकर सुखके सागरमें आनन्दकी डुबकियाँ न लगा सकेंगी? यह क्रूरकर्मा अक्रूर कहाँसे आ गया? इसका ऐसा उलटा नाम किसने रख दिया। जो हमसे हमारे

प्राणप्यारेको अलग करेगा, उसे अक्रूर कौन कह सकता है ? वह तो महाक्रूर है। या यह सब विधाताकी ही क्रूरता है। बेचारे अक्रूरका इसमें क्या दोष ?' ऐसा कह-कहकर वे जोरोंसे चिल्लाने लगते।

कभी श्रीकृष्णके भावमें होकर गोपोंके साथ व्रजकी लीलाओंका अनुकरण करने लगते। कभी प्रह्लादके आवेशमें आकर दैत्य-बालकोंको शिक्षा देनेका अनुकरण करके पासमें बैठे हुए भक्तोंको भगवन्नाम-स्मरण और कीर्तनका उपदेश करने लगते। कभी ध्रुवका स्मरण करके उन्हींके भावमें एक पैरसे खड़े होकर तपस्या-सी करने लगते। फिर कभी विरहिणीकी दशाका अभिनय करने लगते। एकदम उदास बन जाते। हाथोंके नखोंसे पृथिवीको कुरेदने लगते। शचीमाता इनकी ऐसी दशा देखकर बड़ी दुखी होतीं। वे पुत्रकी मङ्गलकामनाके निमित्त सभी देवी-देवताओंकी पूजा करतीं। इसे कोई रोग समझकर वैद्योंसे परामर्श करतीं। भक्तोंसे अत्यन्त ही दीन-भावसे कहतीं—'न जाने निमाईको क्या हो गया है, अब वह पहलेकी भाँति कीर्तन भी नहीं करता और न किसीसे हँसता-बोलता ही है। उसे हो क्या गया ? तुमलोग उसका इलाज क्यों नहीं कराते। किसी वैद्यको दिखाओ।'

बेचारे भक्त भोली-भाली माताकी इन सीधी-सरल मातृस्नेहसे सनी हुई बातोंको सुनकर हँसने लगते। वे मन-ही-मन कहते—'जगत्की चिकित्सा तो ये करते हैं, इनकी चिकित्सा कौन कर सकता है ? इनके रोगकी दवा तो आजतक किसी वैद्यने बनायी ही नहीं और न कोई संसारी वैद्य बना ही सकता है। इनकी ये ही जानते हैं। साँवलियाँ ही इनकी नाड़ी पकड़ेगा तब ये हँसने लगेंगे।' वे माताको भाँति-भाँतिसे समझाते, किन्तु माताकी समझमें एक भी बात नहीं आती। वह सदा अधीर-सी बनी रहतीं।

एक दिन महाप्रभु भावावेशमें जोरोंसे 'गोपी'-'गोपी' कहकर रुदन कर रहे थे। वे गोपी-भावमें ऐसे विभोर हुए कि उनके मुखसे 'गोपी' 'गोपी' इस शब्दके अतिरिक्त कोई दूसरा शब्द निकलता ही नहीं था। उसी समय एक प्रतिष्ठित छात्र इनके समीप इनके दर्शनके लिये आये। वे महाप्रभुके साथ कुछ कालतक पढ़े भी थे। वैसे तो शास्त्रीय विद्यामें पूर्ण पारङ्गत पण्डित समझे जाते थे, किन्तु भक्ति-भावमें कोरे थे। प्रेम-मार्गका उन्हें पता नहीं था। प्रभु तो उस समय बाह्य-ज्ञान शून्य थे, उन्हें भावावेशमें पता ही नहीं था कि कौन हमारे पास आया और हमारे पाससे उठ गया। उन विद्याभिमानी छात्रने महाप्रभुकी ऐसी अवस्था देखकर कुछ गर्वित भावसे कहा—'पण्डित होकर आप यह क्या अशास्त्रीय व्यवहार कर रहे हैं? 'गोपी-गोपी' कहनेसे क्या लाभ? कृष्ण-कृष्ण कहो, जिससे उद्धार हो और शास्त्रकी मर्यादा भी भंग न हो।'

महाप्रभुको उस समय कुछ भी पता नहीं था, कि यह कौन है। भावावेशमें उन्होंने यही समझा कि यह भी कोई उद्धवके समान श्याम-सुन्दरका सखा है और हमें धोखेमें डालनेके लिये आया है। इससे प्रभु-को उसके ऊपर क्रोध आ गया और एक बड़ा-सा बाँस लेकर उसके पीछे मारनेके लिये दौड़े। विद्याभिमानी छात्र महाशय अपना सभी शास्त्रीय ज्ञान भूल गये और अपनी जान बचाकर वहाँसे भागे। महाप्रभु भी उनके पीछे-ही-पीछे उन्हें पकड़नेके लिये दौड़े। प्रहारके भयसे छात्र महोदय मुट्ठी बाँधकर भागे। कन्धेपरका दुपट्टा गिर गया। बगलमेंसे पोथी निकल पड़ी। हाँपते और चिल्लाते हुए वे जोरोंसे भागे जा रहे थे। लोग उन्हें इस प्रकार भागते देखकर आश्चर्यके साथ उनके भागनेका कारण पूछते, कोई इनकी ऐसी दशा देखकर ठहाका मारकर हँसने लगते, किन्तु ये किसीकी कुछ सुनते ही नहीं थे। इन्हें अपनी जानके लाले पड़े हुए थे। 'जान बची लाखों पाये, मियाँ बुद्धू अपने घर आये।'

प्रभुको इस प्रकार इन छात्र महाशयके पीछे दौड़ते देखकर भक्तोंने उन्हें पकड़ लिया। प्रभु उसी भावमें मूर्छित होकर गिर पड़े। विद्यार्थी महोदयने बहुत दूर भागनेके अनन्तर पीछे फिरकर देखा। जब उन्होंने प्रभुको अपने पीछे आते हुए नहीं देखा तब वे खड़े हो गये। उनकी साँसें जोरोंसे चल रही थीं। सम्पूर्ण शरीर पसीनेसे लथपथ हो रहा था। अङ्ग-प्रत्यङ्गसे पसीनेकी धारें-सी बह रही थीं, लोगोंने उनकी ऐसी दशा देखकर उनसे भाँति-भाँतिके प्रश्न करने आरम्भ कर दिये। किन्तु ये प्रश्नोंका उत्तर क्या देते? इनकी तो साँस फूली हुई थी। मुखमेंसे बात ही नहीं निकल सकती थी। कुछ लोगोंने दयार्द्र होकर इन्हें पंखा झला और थोड़ा ठंडा पानी पिलाया। पानी पीनेपर इन्हें कुछ होश हुआ, साँसें भी ठीक-ठीक चलने लगीं। तब एकने पूछा—'महाशय! आपकी ऐसी दशा क्यों हुई? किसने आपको ऐसी ताड़ना दी?'

उन्होंने अपने हृदयकी द्वेषाग्निको उगलते हुए कहा—'अजी! क्या बताऊँ? हमने सुना था कि जगन्नाथ मिश्रका लड़का निमाई बड़ा भक्त बन गया है। वह पहले हमारे साथ पढ़ता था। हमने सोचा—'चलो, वह भक्त बन गया है, तो उसके दर्शन ही कर आवें। इसीलिये हम उसके दर्शन करने गये थे, किन्तु वह भक्ति क्या जाने? हमने देखा वह अशास्त्रीय पद्धतिसे 'गोपी-गोपी' चिल्ला रहा है। हमने कहा—'भाई! तुम पढ़े-लिखे होकर ऐसा शास्त्रविरुद्ध काम क्यों कर रहे हो।' बस, इतनेपर ही उसने आव गिना न ताव लट्ठ लेकर जंगलियोंकी तरह हमारे ऊपर टूट पड़ा। यदि हम जान लेकर वहाँसे भागते नहीं, तो वह तो हमारा वहीं काम तमाम कर डालता। इसीका नाम भक्ति है? इसका नाम तो क्रूरता है। क्रूर हिंसक व्याध ही ऐसा व्यवहार करते हैं। भक्त तो अहिंसाप्रिय, शान्त और प्राणीमात्रपर दया करनेवाले होते हैं।'

उनके मुखसे ऐसी बातें सुनकर कुछ हँसनेवाले तो धीरेसे कहने लगे—'पण्डितजी ! थोड़ा-सा और भी उपदेश क्यों नहीं किया ?' कुछ हँसते हुए कहते—'पण्डितजी ! उपदेशकी दक्षिणा तो बड़ी सख्त मिली। घाटेमें रहे। क्यों ठीक है न चलो, खैर हुई बच आये! अब सवा रुपयेका प्रसाद जरूर बाँटना।'

कुछ ईर्ष्या रखनेवाले खल पुरुष अपनी छिपी हुई ईर्ष्याको प्रकट करते हुए कहने लगे—'ये दुष्ट और कोई भला काम थोड़े ही करेंगे ? बस, साधु-ब्राह्मणोंपर प्रहार करना ही तो इन्होंने सीखा है। रात्रिमें तो छिप-छिपकर न जाने क्या-क्या करते रहते हैं और दिनमें साधु-ब्राह्मणोंको त्रास पहुँचाते हैं। यही इनकी भक्ति है। पण्डितजी ! तुम्हारे हाथ नहीं हैं क्या ? उनके साथ दस-बीस बुद्धिहीन भक्त हैं तो तुम्हारे कहनेमें हजारों विद्यार्थी हैं। एक बार इन सबकी अच्छी तरहसे मरम्मत क्यों नहीं करा देते। बस, तब ये सब कीर्तन-फीर्तन भूल जायँगे। जबतक इनकी नसें ढीली न होंगी तबतक ये होशमें नहीं आवेंगे।'

गुस्सेमें दुर्वासा बने हुए उन विद्याभिमानी छात्र महाशयने गर्जकर कहा—'मेरे कहनेमें हजारों छात्र हैं। मेरे आँखके इशारेसे ही इन भक्तोंमेंसे किसीकी भी हड्डीतक देखनेको न मिलेगी। आपलोग कल ही देखें, इसका परिणाम क्या होता है। कल बच्चुओंको मालूम पड़ जायगा कि ब्राह्मणके ऊपर प्रहार करनेवालेकी क्या दशा होती है ?'

इस प्रकार वे महाशय बड़बड़ाते हुए अपनी छात्र-मण्डलीमें पहुँचे। छात्र तो पहलेसे ही महाप्रभुके उत्कर्षको न सह सकनेके कारण उनसे जले-भुने बैठे थे। उनके लिये महाप्रभुका इतना बढ़ता हुआ यश असहनीय था। उनके हृदयमें महाप्रभुकी देशव्यापी कीर्तिके कारण डाह उत्पन्न हो गयी थी। अब इतने बड़े योग्य विद्यार्थीके ऊपर प्रहारकी बात सुनकर प्रायः दुष्ट स्वभावके बहुत-से छात्र एकदम उत्तेजित हो

उठे और उसी समय महाप्रभुके ऊपर प्रहार करने जानेके लिये उद्यत हो गये। कुछ समझदार छात्रोंने कहा—'भाई! इतनी जल्दी करनेकी कौन-सी बात है, इनपर प्रहार भी नहीं हुआ है। दो-चार दिन और देख लो। यदि उनका सचमुचमें ऐसा ही व्यवहार रहा और अबसे आगे किसी अन्य छात्रपर इस प्रकार प्रहार किया तब तुमलोगोंको प्रहारका उत्तर प्रहारसे देना चाहिये। अभी इतनी शीघ्रता नहीं करनी चाहिये।' इस प्रकार उस समय तो छात्र शान्त हो गये। किन्तु उनके प्रभुके प्रति विद्वेषके भाव बढ़ते ही गये। कुछ दुष्टबुद्धिके मायापुर-निवासी ब्राह्मण भी छात्रोंके साथ मिल गये। इस प्रकार प्रभुके विरुद्ध एक प्रकारका बड़ा भारी दल ही बन गया।

भावावेशके अनन्तर प्रभुको सभी बातें मालूम हुईं। इससे उन्हें अपार दुःख हुआ। वे घर-बार तथा इष्ट-मित्र और अपने साथी भक्तोंसे पहलेसे ही उदासीन थे। इस घटनासे उनकी उदासी और भी अधिक बढ़ गयी। अब उन्हें संकीर्तनके कारण फैली हुई अपनी देशव्यापी कीर्ति काटनेके लिये दौड़ती हुई-सी दिखायी देने लगी। उन्हें घर-बार, कुटुम्ब-परिवार तथा धर्मपत्नी और मातासे एकदम विराग हो गया। उनका मन-मधुप अब घिरी हुई सुगन्धित वाटिकाको छोड़कर खुली वायुमें स्वच्छन्दताके साथ जंगलोंकी कँटीली झाड़ियोंके ऊपर विचरण करनेके लिये उत्सुकता प्रकट करने लगा। वे जीवोंके कल्याणके निमित्त घर-बारको छोड़कर संन्यासी बननेकी बात सोचने लगे।

संन्याससे पूर्व

तत् साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां
सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात्।
हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं
वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत॥†

(श्रीमद्भा० ७।५।५)

---

† हिरण्यकशिपुके यह पूछनेपर कि बेटा! तुम्हारे मतमें सबसे श्रेष्ठ कार्य कौन-सा है? प्रह्लादजी कहते हैं—'हे असुरोंके अधीश्वर पूज्य पिताजी! मैं तो इसे ही सबसे अधिक श्रेष्ठ समझता हूँ कि 'अहंता और ममता' अर्थात् मैं ऐसा हूँ, वह चीजें मेरी हैं इस मिथ्याभिमानके कारण जिनकी बुद्धि सदा उद्विग्न रहती है और जिस घरमें रहकर सदा प्राणी मोहमें ही फँसा रहता है, उस अन्धकूपके समान गृहको त्याग कर एकान्तमें जाकर श्रीहरिके चरणोंका चिन्तन किया जाय। मेरे मतमें तो इससे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है।'

महाप्रभुका मन अब महान् त्यागके लिये तड़पने लगा। उनके हृदयमें वैराग्यकी हिलोरें-सी मारने लगीं। यद्यपि महाप्रभुको घरमें भी कोई बन्धन नहीं था, यहाँ रहकर वे लाखों नर-नारियोंका कल्याण कर रहे थे। किन्तु इतनेसे ही वे सन्तुष्ट होनेवाले नहीं थे। उन्हें तो भगवन्नामको विश्वव्यापी बनाना था, फिर वे अपनेको नवद्वीपका ही बनाकर और किसी एक पत्नीका पति बनाकर कैसे रख सकते थे? वे तो सम्पूर्ण विश्वकी विभूति थे। भगवद्भक्तमात्रके वे पूजनीय तथा वन्दनीय थे। ऐसी दशामें उनका नवद्वीपमें ही रहना असम्भव था।

संसारी सुख, धन-संपत्ति और कीर्ति ये पूर्वजन्मके भाग्यसे ही मिलते हैं। जिसके भाग्यमें धन अथवा कीर्ति नहीं होती, वह चाहे कितना भी परिश्रम क्यों न करे, कितने भी अच्छे-अच्छे भावोंका प्रचार उसके द्वारा क्यों न हो उसे धन या कीर्ति मिल ही नहीं सकती। राजा युद्धमें शायद ही कभी लड़ने जाता है, नहीं तो घरमें ही बैठा रहता है। सेनामें बड़े-बड़े वीर योद्धा साहस और शूरवीरताके साथ युद्ध करते हैं, प्राणोंकी बाजी लगाकर लाखों एक-से-एक बढ़कर पराक्रम दिखाते हुए शत्रुके दाँतोंको खट्टा करते हैं, किन्तु उनकी शूरवीरताका किसीको पता ही नहीं लगता। विजयका सुयश घरमें बैठे हुए राजाको ही प्राप्त होता है। एक चर्मकारका परिवार दिनभर काम करता है। उसके छोटे-से बच्चेसे लेकर बड़े-बूढ़े, स्त्री-पुरुष दिन-रात्रि काममें ही जुटे रहते हैं, फिर भी उन्हें खानेको पूरा नहीं पड़ता। इसके विपरीत दूसरा महाजन पलंगसे नीचे भी जब उतरता है, तो बहुत-से सेवक उसके आगे-आगे बिछौना बिछाते हुए चलते हैं। उसके मुनीम दिन-रात्रि परिश्रम करते हैं, उन्हींके द्वारा उसे हजारों रुपये रोजकी आमदनी है। किन्तु उन मुनीमोंको महीनेमें गिने हुए पंद्रह-बीस रुपये ही मिलते हैं। उस सब आमदनीका स्वामी वह कुछ न करनेवाला महाजन ही समझा जाता

है। इसलिये किसीके धन अथवा बढ़ती हुई कीर्तिको देखकर कभी इस प्रकारका द्वेष नहीं करना चाहिये कि हम इससे बढ़कर काम करते हैं तब भी हमारा इतना नाम क्यों नहीं होता ? यह तो अपने-अपने भाग्यकी बात है। तुम्हारे भाग्यमें उतनी कीर्ति है ही नहीं, फिर तुम कितने भी बड़े काम क्यों न करो, कीर्ति उसीकी अधिक होगी जो तुम्हारी दृष्टिमें तुमसे कम काम करता है। तुम उसके भाग्यकी रेखाको तो नहीं मेट सकते। श्रीरामानुजाचार्यसे भी पूर्व बहुत-से श्रीसम्प्रदायके त्यागी और विरक्त संन्यासी हुए; किन्तु श्रीसम्प्रदायके प्रधान आचार्यका पद रामानुज भगवान्‌के ही भाग्यमें था। इसी प्रकार चाहे कोई कितना भी बड़ा महापुरुष हो या महात्मा क्यों न हो, उन सबके भोग प्रारब्धके ही अनुसार होंगे। प्रारब्धका सम्बन्ध शरीरसे है; जिसने शरीर धारण किया है, उसे प्रारब्धके भोग भोगने ही पड़ेंगे। यह दूसरी बात है कि महापुरुषोंकी उन भोगोंमें तनिक भी आसक्ति नहीं होती। वे शरीरको और प्रारब्धको देहका वस्त्र और मैल समझकर उसीके अनुसार व्यवहार करते हैं। असली बात तो यह है कि उनका अपना प्रारब्ध तो कुछ होता ही नहीं, वे जगत्‌के कल्याणके निमित्त ही प्रारब्धका बहाना बनाकर लीलाएँ करते हैं।

कीर्ति भी संसारके सुखोंमेंसे एक बड़ा भारी सुख है। लोकमें जिसकी अधिक कीर्ति होने लगती है, उसीसे कीर्तिलोलुप संसारी लोग डाह करने लगते हैं। इसका एकमात्र उपाय है अपनी ओरसे कीर्तिलाभका तनिक भी प्रयत्न न करना। 'हमारी कीर्ति हो' ये भाव भी जहाँतक हों, हृदयमें आने ही न चाहिये और आयी हुई कीर्तिका त्याग भी करते रहना चाहिये। त्यागसे कीर्ति और निर्मल हो जाती है और डाह करनेवाले भी त्यागके प्रभावसे उसके चरणोंमें सिर झुकाते हैं।

यह तो संसारी भोगोंके विषयमें बात रही। त्यागका इतना ही फल नहीं कि उससे कीर्ति निर्मल बने और विद्वेषी भी उसका लोहा मानने लगें; किन्तु त्यागका सर्वोत्तम फल तो भगवत्प्राप्ति ही है। त्यागके बिना भगवत्प्राप्ति हो ही नहीं सकती। भगवत्प्राप्तिका प्रधान कारण है सर्वस्वका त्याग कर देना। जो लोग यह कहते हैं, कि 'संन्यास-धर्म तो भक्तिमार्गका विरोधी है।' वे अज्ञानी हैं, उन्हें भक्ति-मार्गका पता ही नहीं। हम दृढ़ताके साथ कहते हैं, बिना संन्यासी बने कोई भी मनुष्य भक्तिमार्गका अनुसरण कर ही नहीं सकता। हम शास्त्रोंकी दुहाई देकर यहाँतक कहनेके लिये तैयार हैं, कि कोई बिना संन्यासी हुए ज्ञान-लाभ भले ही कर ले, किन्तु सर्वस्व त्याग किये बिना भक्ति तो प्राप्त हो ही नहीं सकती। मनसे त्याग करनेका बहाना बनाकर जो विषयोंके सेवनमें लगे रहनेपर भी अपनेको पूर्ण भगवद्भक्त कहनेका दावा करते हैं, उनसे हमें कुछ कहना नहीं है। हम तो उन लोगोंसे निवेदन करना चाहते हैं जो यथार्थमें भक्ति-पथका अनुसरण करनेके इच्छुक हैं। उनसे हम दृढ़ताके साथ कहते हैं, अपने पूर्वजन्मके प्रारब्धानुसार आप सर्वस्व त्याग कर संन्यासी न हो सकें, यह आपकी कमजोरी है। जैसी भी दशामें रहें, भक्तितक पहुँचनेके लिये प्रयत्न तो प्रत्येक दशामें कर सकते हैं, किन्तु पूर्ण भक्त बननेके लिये मनसे नहीं स्वरूपसे भी त्याग करना ही होगा। सर्व-कर्म-फल-त्यागके साथ सर्व सांसारिक भोगोंका त्याग भी अनिवार्य ही है। किन्तु इसके विपरीत कुछ ऐसे भी भगवद्भक्त देखे गये हैं जो प्रवृत्तिमार्गमें रहते हुए भी पूर्ण भक्त हुए हैं। उन्हें अपवाद ही समझना चाहिये। सिद्धान्त तो यही है कि भगवद्भक्तिके लिये रूप, सनातन और रघुनाथदासकी तरह अकिञ्चन बनकर घर-घरके टुकड़ोंपर ही निर्वाह करके अहर्निश कृष्ण-कीर्तन करते रहना चाहिये। इसीलिये

लोकमान्य तिलकने भक्ति-मार्ग और ज्ञान-मार्ग दोनोंको ही त्याग-मार्ग बताकर एक नये ही कर्मयोग-मार्गकी कल्पना की है।

यों गृहस्थमें रहकर भी भगवद्भक्ति की जा सकती है, किन्तु वह ऐसी ही बात है जैसे किसी साँसके रोगीके लिये दही सर्वथा निषेध है। यदि वह साँसकी बीमारीमें दहीसे एकदम बचा रहे तो सर्वश्रेष्ठ है, किन्तु वह अपने पूर्वजन्मके संस्कारोंके अनुसार दहीकी प्रबल वासनाके कारण उसे एकदम नहीं छोड़ सकता, तो वैद्य उसमें एक ऐसी दवाई मिला देते हैं, कि फिर वह दही बीमारीको हानिप्रद नहीं होती। इसी प्रकार जो एकदम स्वरूपतः त्याग नहीं कर सकते उनके लिये भगवान्ने बताया है, वे सम्पूर्ण संसारी कामोंको भगवत्-सेवा ही समझकर निष्काम भावसे फलकी इच्छासे रहित होकर करते रहेंगे और निरन्तर हरि-स्मरणमें ही लगे रहेंगे तो उन्हें संसारी काम बाधा न पहुँचा सकेंगे। किन्तु जो लोग हठपूर्वक इस बातका आग्रह ही करते हैं कि भक्ति-मार्गके पथिकको किसी भी दशामें संसारी कर्मोंको त्यागकर संन्यास-धर्मका अनुसरण न करना चाहिये, उनसे अब हम क्या कहें। वे थोड़ी ऊँची दृष्टि करके देखें तो पता चलेगा कि सभी भक्ति-मार्गके प्रधान पुरुष घर-बार-त्यागी संन्यासी ही हुए हैं।

भक्तिके अथवा सभी मार्गोंके प्रवर्तक भगवान् ब्रह्माजी हैं। वे तो प्रवृत्ति निवृत्ति दोनोंके ही जनक हैं इसलिये उन्हें किसी एक मार्गका कहना ठीक नहीं। उनके पुत्र अथवा शिष्य भगवान् नारद ही भक्ति-मार्गके प्रधान आचार्य समझे जाते हैं। वे घर-बार-त्यागी आजन्म ब्रह्मचारी संन्यासी ही थे। उन्होंने एक-दोको ही घर-बार-विहीन नहीं बनाया किन्तु लाखोंको उनकी पूर्वप्रकृतिके अनुसार संसार-त्यागी विरागी बना दिया। महाराज दक्षप्रजापतिके ग्यारह-बारह हजार शबलाश्व और हरिताश्व नामक पुत्रोंको सदाके लिये संन्यासी बना दिया। भक्ति-मार्ग-

की एक प्रधान शाखाके प्रवर्तक सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन–ये चारों-के-चारों संन्यासी ही थे। भगवान्‌के ब्राह्मण-शरीरोंमें परशुराम, वामन, नारद, सनत्कुमार, कपिल, नर-नारायण जितने भी अवतार हुए हैं सभी गृह-त्यागी संन्यासी ही थे। और तो क्या भक्ति-मार्गके चारों सम्प्रदायोंके माधवाचार्य (आनन्दतीर्थ), निम्बार्काचार्य, रामानुजाचार्य और वल्लभाचार्य—ये सब-के-सब संन्यासी ही थे। यद्यपि भगवान् वल्लभाचार्यकी पूजा-पद्धतिमें संन्यास-धर्मकी उतनी आवश्यकता नहीं। यथार्थमें उन्होंने प्रवृत्ति-मार्गवाले धनवान् पुरुषोंके ही निमित्त इस प्रकारकी पूजा-अर्चाकी पद्धतिकी परिपाटी चलायी और स्वयं भी गृहस्थी रहते हुए सदा वात्सल्यभावसे बालकृष्णकी सेवा-पूजा करके ही भक्तोंके सामने आदर्श उपस्थित करते रहे, किन्तु फिर भी उन्होंने अन्तमें श्रीवाराणसीधाममें जाकर भागवत-धर्मके अनुसार सर्वस्व त्यागकर संन्यास-धर्मको ग्रहण किया। जिस संन्यास-धर्मकी इतनी महिमा है उसकी निन्दा संसारी विषयोंमें आबद्ध जीवोंके अतिरिक्त कोई कर ही नहीं सकता। बुद्ध, ईसा और चैतन्य यदि संन्यासी न होते तो ये महापुरुष संसारमें आज त्यागका इतना ऊँचा भाव कैसे भर सकते थे?

महाप्रभु गौराङ्गदेव तो त्यागकी मूर्ति ही थे। वे तो यहाँतक कहते हैं—

> संदर्शनं विषयिणामथ योषितां च
> हा हन्त हन्त विषभक्षणतोऽप्यसाधु ॥
>
> (महाप्रभु-वाक्य)

अर्थात् 'विषयी लोगोंका तथा कामिनियोंका दर्शन भी विष-भक्षणसे बढ़कर है।' अहा! ऐसा त्यागका सजीव उदाहरण और कहाँ मिल सकता है! महाप्रभुने सचमुचमें महान् त्यागकी पराकाष्ठा करके दिखा दी। उनके पथके अनुयायी अन्तरङ्ग भक्त जीव, सनातन, रूप, रघुनाथदास, प्रबोधानन्द, स्वरूप दामोदर, हरिदास, गोपाल भट्ट, लोकनाथ गोस्वामी

एक-से-एक बढ़कर परम त्यागी संन्यासी थे। इनका त्याग और वैराग्य महाप्रभुके परम त्यागमय भावोंका एक उज्ज्वल आदर्श है। रूप स्वामीके लिये तो यहाँतक सुना जाता है, कि वे एक दिनसे अधिक एक वृक्षके नीचे भी नहीं ठहरते थे। व्रजवासियोंके घरसे टुकड़े माँग लाना और रोज किसी नये वृक्षके नीचे पड़ रहना। धन्य है उनके त्यागको और उनकी भक्तिको !

भगवान्के अन्तरङ्ग भक्त उद्धव, विदुर दोनों ही संन्यासी हुए। परम संन्यासिनी गोपिकाओंसे बढ़कर त्यागका आदर्श कहाँ मिल सकता है ? उद्धव, विदुर और गोपिकाओंने यद्यपि लिङ्ग-संन्यास नहीं लिया था, क्योंकि लिङ्ग-संन्यासका विधान शास्त्रोंमें प्रायः ब्राह्मणके लिये ही पाया जाता है, किन्तु तो भी ये घर-बारको छोड़कर अलिङ्ग-संन्यासी ही थे।

महाप्रभु भला घरमें कैसे रह सकते थे ? उनके मनमें संन्यास लेनेके भाव प्रबलताके साथ उठने लगे। वे मन-ही-मन सोचने लगे कि—'अब हम जबतक संन्यासी बनकर और मूँड़ मुड़ाकर घर-घर भिक्षा नहीं माँगेंगे तबतक न तो हमारी आत्माको पूर्ण शान्ति प्राप्त होगी और न हमारे इन विरोधियोंका ही उद्धार होगा। हम इन विरोधियोंका उद्धार अपने महान् त्यागद्वारा ही कर सकेंगे। ये हमारी बढ़ती हुई कीर्तिसे डाह करके ऐसे भाव रखने लगे हैं।' प्रभु इन्हीं भावोंमें मग्न थे, कि इतनेमें ही कटवामें रहनेवाले दण्डी स्वामी, केशव भारती महाराज नवद्वीप पधारे। समयके प्रभावसे आजकल तो सभी प्राचीन व्यवस्था नष्ट हो गयी। किन्तु हम जबकी बात कह रहे हैं उस समय ऐसी परिपाटी थी, कि दण्डी संन्यासी किसी भी गृहस्थके द्वारपर पहुँच जाय, वही गृहस्थ उठकर उनका सत्कार करता और उनसे श्रद्धा-भक्तिके सहित भिक्षा कर लेनेके लिये प्रार्थना करता।

दसनामी संन्यासियोंमें तीर्थ, सरस्वती और आश्रम–इन तीनोंको दण्ड धारण करनेका अधिकार है। भारतीयोंको भी दण्डका अधिकार है, किन्तु दण्डी-सम्प्रदायमें उनका आधा दण्ड समझा जाता है। शेष गिरी, पुरी, वन, अरण्य तथा पर्वत आदि छः प्रकारके संन्यासियोंको दण्डका अधिकार नहीं है।* दण्ड ब्राह्मण ही ले सकता है। इसलिये दण्डी संन्यासी ब्राह्मण ही होते हैं। केशव भारती दण्डी ही संन्यासी थे। पीछे इनकी शिष्य-परम्परामें इनके उत्तराधिकारी गृहस्थी बन गये जो कटवाके समीप अब भी विद्यमान हैं।

भारतीको देखते ही प्रभुने उठकर उनके चरणोंमें प्रणाम किया। भारती इनके शरीरमें ऐसे अपूर्व प्रेमके लक्षणोंको देखकर एकदम भौचक्के-से रह गये। इनकी नम्रता, शालीनता और सुशीलतासे प्रसन्न होकर भारती प्रेममें विभोर हुए कहने लगे—'आप या तो नारद हैं या प्रह्लाद, आप तो मूर्तिमान् प्रेम ही दिखायी पड़ते हैं।'

भारतीके मुखसे ऐसी बात सुनकर प्रभु प्रेममें विभोर हो गये और भारतीके पैरोंको पकड़कर गद्गद कण्ठसे कहने लगे—'आप साक्षात् ईश्वर हैं, आप नररूपमें नारायण हैं। आज मुझ गृहस्थीके घरको पावन बनाइये और मेरे ऊपर कृपा कीजिये, जिससे मैं संसार-बन्धनसे मुक्त हो सकूँ।'

भारतीने कहा—'आपके सम्पूर्ण शरीरमें भगवत्ताके चिह्न हैं। आप प्रेमके अवतार हैं, मुझे तो आपके दर्शनसे भगवान्‌के दर्शनका सा सुख अनुभव हो रहा है।'

प्रभुने भारतीकी स्तुति करते हुए कहा—'आप तो भगवान्‌के प्यारे हैं, आपके हृदयमें भगवान् सदा निवास करते हैं। आपके नेत्रोंमें श्रीकृष्ण-

---

* तीर्थाश्रमवनारण्यगिरिपर्वतसागराः ।
पुरी सरस्वती चैव भारती च दश क्रमात् ॥

की छाया सदा छायी रहती है। इसीलिये चराचर विश्वमें आप भगवान्‌के ही दर्शन करते हैं।'

इस प्रकार इन दोनों महापुरुषोंमें बहुत देरतक प्रेमकी बातें होती रहीं। एक दूसरेके गुणोंपर आसक्त होकर एक दूसरेकी स्तुति कर रहे थे। अनन्तर शचीमाताने भोजन तैयार किया। प्रभुने श्रद्धापूर्वक भारतीजीको भिक्षा करायी। दूसरे दिन भारतीजी गङ्गा-किनारे अपने आश्रमको ही फिर लौट गये। मानो वे प्रभुको संन्यासका स्मरण दिलानेके लिये ही आये हों।

भारतीजीके चले जानेपर प्रभुका मन अब और भी अधिकाधिक अधीर होने लगा। अब वे महात्यागकी तैयारियाँ करने लगे। पूर्ण सुख जिसका नाम है, जिससे आगे दूसरा सुख हो ही नहीं सकता, वह तो त्यागसे ही मिलता है। धर्म, तप, ज्ञान और त्याग—ये ही भक्तिके परम साधन हैं। इसीलिये शास्त्रोंमें बताया है—

सत्यान्नास्ति परो धर्मो मौनान्नास्ति परं तपः।
विचारान्न परं ज्ञानं त्यागान्नास्ति परं सुखम्॥

अर्थात् जिसने एक सत्यका अवलम्बन कर लिया उसने सभी धर्मोंका पालन कर लिया। जिसने मौन रहकर वाणीका पूर्णरीत्या संयम कर लिया उसे सभी तपोंका फल प्राप्त हो गया। जो सदा सत्-असत्‌का विचार करता रहता है, उसके लिये इससे बढ़कर और ज्ञान हो ही क्या सकता है और जिसने सर्वस्व त्याग कर दिया, उसने सबसे श्रेष्ठ परम सुखको प्राप्त कर लिया।

अब पाठक आगे कलेजेको खूब कसकर पकड़ लीजिये। दिलको थामकर उन महान् त्यागी महाप्रभुके महात्यागकी तैयारीकी बात सुनिये।

भक्तवृन्द और गौरहरि

निवारयामः समुपेत्य माधवं

किं नोऽकरिष्यन् कुलवृद्धबान्धवाः ।

मुकुन्दसङ्गान्निमिषार्द्धदुस्त्यजाद्

दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥*

(श्रीमद्भा० १० । ३९ । २८)

महाप्रभुका वैराग्य दिनोंदिन बढ़ता ही जाता था, उधर विरोधियोंके भाव भी महाप्रभुके प्रति अधिकाधिक उत्तेजनापूर्ण होते जाते थे। दुष्ट-

* भगवान्के मथुरा जानेके समय वियोग-दुःखसे दुखी हुई गोपिकाएँ परस्पर कह रही हैं—'अरी सखियो ! न हो तो चलो हम सब भगवान्के रथके सामने लेटकर या और किसी भांतिसे उन्हें मथुरा जानेसे रोकें। यदि यह कहो कि कुलके बड़े-बूढ़ोंके सामने ऐसा साहस हम कर ही कैसे सकती हैं; सो इसकी बात तो यह है कि जिन मुकुन्दके मुख-कमलको देखे बिना हम क्षणभर भी नहीं रह सकतीं उन्हींका आज दैवयोगसे असह्य वियोगजन्य दुःख आकर उपस्थित हो गया है, ऐसी दीन-चित्तवाली हम दुःखिनियोंका कुलके बड़े-बूढ़े कर ही क्या सकते हैं ? उनका हमें क्या भय ?

प्रकृतिके कुछ पुरुष प्रभुके ऊपर प्रहार करनेका सुयोग ढूँढ़ने लगे। महाप्रभुने ये बातें सुनीं और उनके हृदयमें उन भाइयोंके प्रति महान् दया आयी। वे सोचने लगे—'ये इतने भूले हुए जीव किस प्रकार रास्तेपर आ सकेंगे? इनके उद्धारका उपाय क्या है, ये लोग किस भाँति श्रीहरिकी शरणमें आ सकेंगे?'

एक दिन महाप्रभु भक्तोंके सहित गङ्गा-स्नानके निमित्त जा रहे थे। रास्तेमें प्रभुने दो-चार विरोधियोंको अपने ऊपर ताने कसते हुए देखा। तब आप हँसते हुए कहने लगे—'पिप्पलीके टुकड़े इसलिये किये थे, कि उससे कफकी निवृत्ति हो, किन्तु उसका प्रभाव उलटा ही हुआ। उससे कफकी निवृत्ति न होकर और अधिक बढ़ने ही लगा।' इतना कहकर प्रभु फिर जोरोंके साथ हँसने लगे। भक्तोंमेंसे किसीने भी इस गूढ़ वचनका रहस्य नहीं समझा। केवल नित्यानन्दजी प्रभुकी मनोदशा देखकर ताड़ गये कि जरूर प्रभु हम सबको छोड़कर कहीं अन्यत्र जानेकी बात सोच रहे हैं। इसीलिये उन्होंने एकान्तमें प्रभुसे पूछा—'प्रभो! आप हमसे अपने मनकी कोई बात नहीं छिपाते। आजकल आपकी दशा कुछ विचित्र ही हो रही है। हम जानना चाहते हैं, इसका क्या कारण है?'

नित्यानन्दजीकी ऐसी बात सुनकर गद्गद कण्ठसे प्रभु कहने लगे—'श्रीपाद! तुमसे छिपाव ही क्या है? तुम तो मेरे बाहर चलनेवाले प्राण ही हो। मैं अपने मनकी दशा तुमसे छिपा नहीं सकता। मुझे कहनेमें दुःख हो रहा है। अब मेरा मन यहाँ नहीं लग रहा है। मैं अब अपने अधीन नहीं हूँ। जीवोंका दुःख अब मुझसे देखा नहीं जाता। मैं जीवोंके कल्याणके निमित्त अपने सभी संसारी सुखोंका परित्याग करूँगा। मेरा मन अब गृहस्थमें नहीं लगता है। अब मैं परिव्राजक-धर्मका पालन करूँगा। जो लोग मेरी उत्तरोत्तर बढ़ती हुई कीर्ति-

से डाह करने लगे हैं, जो मुझे भक्तोंके सहित आनन्द-विहार करते देखकर जलते हैं, जो मेरी भक्तोंके द्वारा की हुई पूजाको देखकर मन-ही-मन हमसे विद्वेष करते हैं, वे जब मुझे मूँड़ मुड़ाकर घर-घर भिक्षाके टुकड़े माँगते देखेंगे, तो उन्हें अपने बुरे भावोंके लिये पश्चात्ताप होगा। उसी पश्चात्तापके कारण वे कल्याण-पथके पथिक बन सकेंगे। इन मेरे घुँघराले काले-काले बालोंने ही लोगोंके विद्वेषपूर्ण हृदयको क्षुभित बना रखा है। भक्तोंद्वारा आँवलेके जलसे धोये हुए और सुगन्धित तैलोंसे तर हुए ये बाल ही भूले-भटके अज्ञानी पुरुषोंके हृदयोंमें विद्वेषकी अग्नि भभकाते हैं। मैं इन घुँघराले बालोंको नष्ट कर दूँगा। शिखासूत्रका त्याग करके मैं वीतराग संन्यासी बनूँगा। मेरा हृदय अब संन्यासी होनेके लिये तड़प रहा है। मुझे वर्तमान दशामें शान्ति नहीं, सच्चा सुख नहीं। मैं अब पूर्ण शान्ति और सच्चे सुखकी खोजमें संन्यासी बनकर द्वार-द्वारपर भटकूँगा। मैं अपरिग्रही संन्यासी बनकर सभी प्रकारके परिग्रहोंका त्याग करूँगा। श्रीपाद! तुम स्वयं त्यागी हो, मेरे पूज्य हो, बड़े हो, मेरे इस काममें रोड़े मत अटकाना।'

प्रभुकी ऐसी बात सुनते ही नित्यानन्दजी अधीर हो गये। उन्हें शरीरका भी होश नहीं रहा। प्रेमके कारण उनके नेत्रोंमेंसे अश्रु बहने लगे। उनका गला भर आया। रुँधे हुए कण्ठसे उन्होंने रोते-रोते कहा—'प्रभो! आप सर्वसमर्थ हैं, सब कुछ कर सकते हैं। मेरी क्या शक्ति है, जो आपके काममें रोड़े अटका सकूँ? किन्तु प्रभो! ये भक्त आपके बिना कैसे जीवित रह सकेंगे? हाय! विष्णुप्रियाकी क्या दशा होगी? बूढ़ी माता जीवित न रहेंगी। आपके पीछे वह प्राणोंका परित्याग कर देंगी। प्रभो! उनकी अन्तिम अभिलाषा भी पूर्ण न हो सकेगी। अपने प्रिय पुत्रसे उन्हें अपने शरीरके दाह-कर्मका भी सौभाग्य प्राप्त न हो सकेगा। प्रभो! निश्चय समझिये, माता आपके बिना जीवित न रहेंगी।'

प्रभुने कुछ गम्भीरताके स्वरमें नित्यानन्दजीसे कहा—'श्रीपाद ! आप तो ज्ञानी हैं, सब कुछ समझते हैं। सभी प्राणी अपने-अपने कर्मोंके अधीन हैं। जितने दिनोंतक जिसका जिसके साथ सम्बन्ध होता है वह उतने ही दिनोंतक उसके साथ रह सकता है। सभी अपने-अपने प्रारब्धकर्मोंसे विवश हैं।'

प्रभुकी बातें सुनकर नित्यानन्दजी चुप रहे। प्रभु उठकर मुकुन्दके समीप चले आये। मुकुन्ददत्तका गला बड़ा ही सुरीला था। प्रभुको उनके पद बहुत पसंद थे। वे बहुधा मुकुन्ददत्तसे भक्तिरसके अपूर्व-अपूर्व पद गवा-गवाकर अपने मनको सन्तुष्ट किया करते थे। प्रभुको अपने यहाँ आते हुए देखकर मुकुन्दने जल्दीसे उठकर प्रभुकी चरण-वन्दना की और बैठनेके लिये सुन्दर आसन दिया। प्रभुने बैठते ही मुकुन्ददत्तसे कोई पद गानेके लिये कहा। मुकुन्द बड़े स्वरके साथ गाने लगे। मुकुन्दके पदको सुनकर प्रभु प्रेममें गद्‌गद हो उठे। फिर प्रेमसे मुकुन्ददत्तका आलिङ्गन करते हुए बोले—'मुकुन्द ! अब देखें तुम्हारे पद कब सुननेको मिलेंगे ?'

आश्चर्यचकित होकर सम्भ्रमके सहित मुकुन्द कहने लगे—'क्यों-क्यों प्रभो ! मैं तो आपका सेवक हूँ, जब भी आज्ञा होगी तभी गाऊँगा !'

आँखोंमें आँसू भरे हुए प्रभुने कहा—'मुकुन्द ! अब हम इस नवद्वीपको त्याग देंगे, सिर मुड़ा लेंगे। काषाय वस्त्र धारण करेंगे। द्वार-द्वारसे टुकड़े माँगकर अपनी भूखको शान्त करेंगे और नगरके बाहर सूने मकानोंमें, टूटी कुटियाओंमें तथा देवताओंके स्थानोंमें निवास करेंगे। अब हम गृहत्यागी वैरागी बनेंगे।'

मानो मुकुन्दके ऊपर वज्राघात हुआ हो। उस हृदयको बेधनेवाली बातको सुनते ही मुकुन्द मूर्च्छित-से हो गये। उनका शरीर पसीनेसे तर हो गया। बड़े ही दुःखसे कातर स्वरमें वे बिलख-बिलखकर कहने लगे—

'प्रभो ! हृदयको फाड़ देनेवाली आप यह कैसी बात कह रहे हैं ? हाय ! इसीलिये आपने इतना स्नेह बढ़ाया था क्या ? नाथ ! यदि ऐसा ही करना था, तो हमलोगोंको इस प्रकार आलिङ्गन करके, पासमें बैठाके, प्रेमसे भोजन कराके, एकान्तमें रहस्यकी बातें कर-करके इस तरहसे अपने प्रेमपाशमें बाँध ही क्यों लिया था ? हे हमारे जीवनके एकमात्र आधार ! आपके बिना हम नवद्वीपमें किसके बनकर रह सकेंगे ? हमें कौन प्रेमकी बातें सुनावेगा ? हमें कौन संकीर्तनकी पद्धति सिखावेगा ? हम सबको कौन भगवन्नामका पाठ पढ़ावेगा ? प्रभो ! आपके कमल-मुखके बिना देखे हम जीवित न रह सकेंगे। यह आपने क्या निश्चय किया है ? हे हमारे जीवनदाता ! हमारे ऊपर दया करो।'

प्रभुने रोते हुए मुकुन्दको अपने गलेसे लगाया। अपने कोमल करोंसे उनके गरम-गरम आँसुओंको पोंछते हुए कहने लगे—'मुकुन्द ! तुम इतने अधीर मत हो। तुम्हारे रुदनको देखकर हमारा हृदय फटा जाता है। हम तुमसे कभी पृथक् न होंगे। तुम सदा हमारे हृदयमें ही रहोगे।'

मुकुन्दको इस प्रकार समझाकर प्रभु गदाधरके समीप आये। महा-भागवत गदाधरने प्रभुको इस प्रकार असमयमें आते देखकर कुछ आश्चर्य-सा प्रकट किया और जल्दीसे प्रभुकी चरण-वन्दना करके उन्हें बैठनेको आसन दिया। आज ये प्रभुकी ऐसी दशा देखकर कुछ भयभीत-से हो गये। उन्होंने आजतक प्रभुकी ऐसी आकृति कभी नहीं देखी थी। उस समयकी प्रभुकी चेष्टामें दृढ़ता थी, ममता थी, वेदना थी और त्याग, वैराग्य, उपरति और न जाने क्या-क्या भव्य भावनाएँ भरी हुई थीं ! गदाधर कुछ भी न बोल सके। तब प्रभु आप-से-आप ही कहने लगे—'गदाधर ! तुम्हें मैं एक बहुत ही दुःखपूर्ण बात सुनाने आया हूँ। बुरा मत मानना ! क्यों, बुरा तो न मानोगे ?'

मानो गदाधरके ऊपर यह दूसरा प्रहार हुआ। वे उसी भाँति चुप बैठे रहे। प्रभुकी इस बातका भी उन्होंने कुछ उत्तर नहीं दिया। तब प्रभु कहने लगे—'मैं अब तुमलोगोंसे पृथक् हो जाऊँगा। अब मैं इन संसारी भोगोंका परित्याग कर दूँगा और यतिधर्मका पालन करूँगा।'

गदाधर तो मानो काठकी मूर्ति बन गये। प्रभुकी इस बातको सुनकर भी वे उसी तरह मौन बैठे रहे। इतना अवश्य हुआ कि उनका चेतनाशून्य शरीर पीछेकी दीवालकी ओर स्वयं ही लुढ़क पड़ा। प्रभु समीप ही बैठे थे, थोड़ी ही देरमें गदाधरका सिर प्रभुके चरणोंमें लोटने लगा। उनके दोनों नेत्रोंसे दो जलकी धाराएँ निकलकर प्रभुके पाद-पद्मोंको प्रक्षालित कर रही थीं। उन गरम-गरम अश्रुओंके जलसे प्रभुके शीतल-कोमल चरणोंमें एक प्रकारकी और अधिक ठंढक-सी पड़ने लगी। उन्होंने गदाधरके सिरको बलपूर्वक उठाकर अपनी गोदीमें रख लिया और उनके आँसू पोंछते हुए कहने लगे—'गदाधर! तुम इतने अधीर होगे तो भला मैं अपने धर्मको कैसे निभा सकूँगा? मैं सब कुछ देख सकता हूँ, किन्तु तुम्हें इस प्रकार विलखता हुआ नहीं देख सकता। मैंने केवल महान् प्रेमकी उपलब्धि करनेके ही निमित्त ऐसा निश्चय किया है। यदि तुम मेरे इस शुभ संकल्पमें इस प्रकार विघ्न उपस्थित करोगे तो मैं कभी भी उस कामको न करूँगा। तुम्हें दुखी छोड़कर मैं शाश्वत सुखको भी नहीं चाहता। क्या कहते हो? बोलते क्यों नहीं।'

रुँधे हुए कण्ठसे बड़े कष्टके साथ लड़खड़ाती हुई वाणीमें गदाधरने कहा—'प्रभो! मैं कह ही क्या सकता हूँ? आपकी इच्छाके विरुद्ध कहनेकी किसकी सामर्थ्य है? आप स्वतन्त्र ईश्वर हैं।

प्रभुने कहा—'मैं तुमसे आज्ञा चाहता हूँ।'

गदाधर अब अपने वेगको और अधिक न रोक सके। वे ढाड़ मार-मारकर जोरोंसे रुदन करने लगे। प्रभु भी अधीर हो उठे। उस समयका दृश्य बड़ा ही करुणापूर्ण था। प्रभुकी प्रेममय गोदमें पड़े हुए गदाधर अबोध बालककी भाँति फूट-फूटकर रुदन कर रहे थे। प्रभु उनके सिरपर हाथ फेरते हुए उन्हें ढाढ़स बँधा रहे थे। प्रभु अपने अश्रुओंको वस्त्रके छोरसे पोंछते हुए कह रहे थे—'गदाधर! तुम मुझसे पृथक् न रह सकोगे। मैं जहाँ भी रहूँगा तुम्हें साथ ही रक्खूँगा। तुम इतने अधीर क्यों होते हो? तुम्हारे बिना तो मुझे वैकुण्ठका सिंहासन भी रुचिकर नहीं होगा। तुम इस प्रकारकी अधीरताको छोड़ो। 'मंगलमय भगवान् सब भला ही करेंगे।' यह कहते-कहते गदाधरका हाथ पकड़े हुए प्रभु श्रीवासके घर पहुँचे। गदाधरकी दोनों आँखें लाल पड़ी हुई थीं। नाकमेंसे पानी बह रहा था। शरीर लड़-खड़ाया हुआ था; कहीं पैर रखते थे, कहीं जाकर पड़ते थे। सम्पूर्ण देह डगमगा रही थी। प्रभुके हाथके सहारेसे वे यन्त्रकी तरह चले जा रहे थे। प्रभु उस समय सावधान थे। श्रीवास सब कुछ समझ गये। उनसे पहले ही नित्यानन्दजीने आकर यह बात कह दी थी। वे प्रभुको देखते ही रुदन करने लगे। प्रभुने कहा—'आप मेरे पिताके तुल्य हैं। जब आप ही इस तरह मुझे हतोत्साहित करेंगे तो मैं अपने धर्मका पालन कैसे कर सकूँगा? मैं कोई बुरा काम करने नहीं जा रहा हूँ। केवल अपने शरीरके स्वार्थके निमित्त भी संन्यास नहीं ले रहा हूँ। आज-कल मेरी दशा उस महाजन साहूकारकी-सी है, जिसका नाम तो बड़ा भारी हो, किन्तु पासमें पैसा एक भी न हो। मेरे पास प्रेमका अभाव है। आप सब लोगोंको संसारी भोग्य पदार्थोंकी न तो इच्छा ही है और न कमी ही। आप सभी भक्त प्रेमके भूखे हैं। मैं अब परदेश जा रहा हूँ। जिस प्रकार महाजन परदेशोंमें जाकर धन कमा लाता है और उस धनसे अपने कुटुम्ब-परिवारके सभी स्वजनोंका समान भावसे पालन-पोषण करता है, उसी प्रकार मैं भी प्रेमरूपी धन कमाकर आप

लोगोंके लिये लाऊँगा। तब हम सभी मिलकर उसका उपभोग करेंगे।'

कुछ क्षीणस्वरमें श्रीवास पण्डितने कहा—'प्रभो ! जो बड़भागी भक्त आपके लौटनेतक जीवित रह सकेंगे वे ही आपकी कमाईका उपभोग कर सकेंगे। हमलोग तो आपके बिना जीवित रह ही नहीं सकते।'

प्रभुने कहा—'पण्डितजी ! आप ही हम सबके पूज्य हैं। मुझे कहनेमें लज्जा लगती है, किन्तु प्रसङ्गवश कहना ही पड़ता है कि आपके ही द्वारा हम सभी भक्त इतने दिनोंतक प्रेमके सहित संकीर्तन करते हुए भक्ति-रसामृतका आस्वादन करते रहे। अब आप ऐसा आशीर्वाद दीजिये कि हम अपने व्रतको पूर्णरीत्या पालन कर सकें।'

इतनेमें ही मुरारी गुप्त भी वहाँ आ गये। वे तो इस बातको सुनते ही एकदम बेहोश होकर गिर पड़े। बहुत देरके पश्चात् चैतन्यलाभ होनेपर कहने लगे—'प्रभो ! आप सर्वसमर्थ हैं, किसीकी मानेंगे थोड़े ही। जिसमें आप जीवोंका कल्याण समझेंगे वह चाहे आपके प्रियजनोंके लिये कितनी भी अप्रिय बात क्यों न हो, उसे भी कर डालेंगे, किन्तु हे हम पतितोंके एकमात्र आधार ! हमें अपने हृदयसे न भुलाइयेगा। आपके श्रीचरणोंकी स्मृति बनी रहे, ऐसा आशीर्वाद और देते जाइयेगा। आपके चरणोंका स्मरण बना रहे तो यह नीरस जीवन भी सार्थक है। आपके चरणोंकी विस्मृतिमें अन्धकार है और अन्धकार ही अज्ञानताका हेतु है।'

प्रभुने मुरारीका गाढ़ालिङ्गन करते हुए कहा—'तुम तो जन्म-जन्मान्तरोंके मेरे प्रिय सुहृद् हो। यदि तुम सबको ही भुला दूँगा तो फिर स्मृतिको ही रखकर क्या करूँगा ? स्मृति तो केवल तुम्हीं प्रेमी बन्धुओंके चिन्तन करनेके लिये रख रक्खी है।' इस प्रकार सभी भक्तों-

को समझा-बुझाकर प्रभु अपने घर चले गये। इधर प्रभुके सभी अन्तरङ्ग भक्तोंमें यह बात बिजलीकी तरह फैल गयी। जो भी सुनता, वही हाथ मलने लगता। कोई ऊर्ध्व श्वास छोड़ता हुआ कहता—'हाय! अब यह कमलनयन फिर प्रेमभरी चितवनसे हमारी ओर न देख सकेंगे।' कोई कहता—'क्या गौरहरिके मुनि-मन-मोहन मनोहर मुखके दर्शन अब फिर न हो सकेंगे?' कोई कहता—'हाय! इन घुँघराले केशोंको कौन निर्दयी नाई सिरसे अलग कर सकता है? बिना इन घुँघराले बालोंवाला यह घुटा सिर भक्तोंके हृदयोंमें कैसी दाह उत्पन्न करेगा?' कोई कहता—'प्रभु काषाय वस्त्रकी झोली बनाकर घर-घर टुकड़े माँगते हुए किस प्रकार फिरेंगे?' कोई कहता—'ये अरुण रंगके कोमल चरण इस कठोर पृथ्वीपर नंगे किस प्रकार देश-विदेशोंमें घूम सकेंगे?'

कोई-कोई पश्चात्ताप करता हुआ कहता—'हम अब उन घुँघराले काले-काले कन्धोंतक लटकनेवाले बालोंमें सुगन्धित तैल न मल सकेंगे क्या? क्या अब हमारे पुण्योंका अन्त हो गया? क्या अब नवद्वीपका सौभाग्य-सूर्य नष्ट होना चाहता है? क्या नदियानागर अपनी इस लीला-भूमिका परित्याग करके किसी अन्य सौभाग्यशाली प्रदेशको पावन बनावेंगे? क्या अब नवद्वीपपर क्रूर ग्रहोंकी वक्रदृष्टि पड़ गयी? क्या अब भक्तोंका एकमात्र प्रेमदाता हम सबको बिलखता हुआ ही छोड़कर चला जायगा? क्या हम सब अनाथोंकी तरह इसी तरह तड़प-तड़पकर अपने जीवनके शेष दिनोंको व्यतीत करेंगे? क्या सचमुचमें हमलोग जाग्रत अवस्थामें ये बातें सुन रहे हैं या हमारा यह स्वप्नका भ्रम ही है? मालूम तो स्वप्न-सा ही पड़ता है।' इस प्रकार सभी भक्त प्रभुके भावी वियोगजन्य दुःखका स्मरण करते हुए भाँति-भाँतिसे प्रलाप करने लगे।

शचीमाता और गौरहरि

> अहो विधातस्तव न क्वचिद्दया
> संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ।
> तांश्चाकृतार्थान्वियुनंक्ष्यपार्थकं
> विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥*
>
> (श्रीमद्भा० १० । ३९ । १९)

भक्तोंके मुखसे निमाईके संन्यासकी बात सुनकर माताके शोकका पारावार नहीं रहा ! वह भूली-सी, भटकी-सी, किंकर्तव्यविमूढा-सी होकर चारों ओर देखने लगी । कभी आगे देखती, कभी पीछेको निहारती, कभी आकाशकी ही ओर देखने लगती । मानो माता दिशा-विदिशाओंसे सहायताकी भिक्षा माँग रही है । लोगोंके मुखसे इस बातको सुनकर

---

* अरे ओ निर्दयी विधाता ! तुझे तनिक-सी भी दया नहीं । तू बड़ी ही कठोर प्रकृतिका है । पहले तो तू सम्पूर्ण प्राणियोंको प्रेमभावसे और स्नेहसम्बन्धमें बांधकर एकत्रित कर देता है और जब ठीक प्रेमके उपभोगका समय आता है तभी उन्हें एक दूसरेसे पृथक् कर देता है । इससे तेरा यह व्यवहार अबोध बालकोंके समान है । (मालूम पड़ता है तूने किसीसे स्नेह करना सीखा ही नहीं ।)

दुःखिनी माताका धैर्य एकदम जाता रहा। वह विलखती हुई, रोती हुई, पुत्रवियोगरूपी दावानलसे झुलसी हुई-सी महाप्रभुके पास पहुँची और बड़ी ही कातरताके साथ कलेजेकी कसकको अपनी मर्माहत वाणीसे प्रकट करती हुई कहने लगी—'बेटा निमाई! मैं जो कुछ सुन रही हूँ वह सब कहाँतक ठीक है?'

पुत्र-वियोगको अशुभ समझनेवाली माताके मुखसे वह दारुण बात स्वयं ही न निकली। उसने गोलमाल तरहसे ही उस बातको पूछा। कुछ अन्यमनस्क भावसे प्रभुने पूछा—'कौन-सी बात?'

हाय! उस समय माताका हृदय स्थान-स्थानसे फटने लगा। वह अपने मुखसे वह हृदयको हिला देनेवाली बात कैसे कहती? कड़ा जी करके उसने कहा—'बेटा! कैसे कहूँ, इस दुःखिनी विधवाके ही भाग्यमें न जाने विधाताने सम्पूर्ण आपत्तियाँ लिख दी हैं क्या? मेरे कलेजेका बड़ा टुकड़ा विश्वरूप घर छोड़कर चला गया और मुझे मर्माहत बनाकर आजतक नहीं लौटा। तेरे पिता बीचमें ही धोखा दे गये। उस भयंकर पति-वियोगरूपी पहाड़-से दुःखको भी मैंने केवल तेरा ही मुख देखकर सहन किया। तेरे कमलके समान खिले हुए मुखको देखकर मैं सभी विपत्तियोंको भूल जाती। मुझे जब कभी दुःख होता तो तुझसे छिपकर रोती। तेरे सामने इसलिये खुलकर नहीं रोती थी कि मेरे रुदनसे तेरा चन्द्रमाके समान सुन्दर मुख कहीं म्लान न हो जाय। मैं तेरे मुखपर म्लानता नहीं देख सकती थी! दुःख-दावानलमें जलती हुई इस अनाश्रिता दुःखिनीका तेरा चन्द्रमाके समान शीतल मुख ही एकमात्र आश्रय था। उसीकी शीतलतामें मैं अपने तापोंको शान्त कर लेती। अब भक्तोंके मुखसे सुन रही हूँ, कि तू भी मुझे धोखा देकर जाना चाहता है। बेटा! क्या यह बात ठीक है?'

माताकी ऐसी करुणापूर्ण कातर वाणीको सुनकर प्रभुने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वे डबडबाई आँखोंसे पृथ्वीकी ओर देखने लगे। उनके

चेहरेपर म्लानता आ गयी। वे भावी वियोगजन्य दुःखके कारण कुछ विषण्ण-से हो गये।

माताकी अधीरता और भी अधिक बढ़ गयी। उसने भयभीत होकर बड़े ही आर्तस्वरमें पूछा—'निमाई! बेटा, मैं सत्य-सत्य जानना चाहती हूँ। क्या यह बात ठीक है? चुप रहनेसे काम न चलेगा। मौन रहकर मुझे और अत्यधिक क्लेश मत पहुँचा, मुझे ठीक-ठीक बता दे।'

सरलताके साथ प्रभुने स्वीकार किया कि माताने जो कुछ सुना है, वह ठीक ही है।

इतना सुननेपर माताको कितना अपार दुःख हुआ होगा, इसे किस कविकी निर्जीव लेखनी व्यक्त करनेमें समर्थ हो सकती है? माताके नेत्रोंसे निरन्तर अश्रु निकल रहे थे। वे उस सूखे हुए मुखको तर करते हुए माताके वस्त्रोंको भिगोने लगे। रोते-रोते माताने कहा—'बेटा! तुझको जानेके लिये मना करूँ, तो तू मानेगा नहीं। इसलिये मेरी यही प्रार्थना है कि मेरे लिये थोड़ा विष खरीदकर और रखता जा। मेरे आगे-पीछे कोई भी तो नहीं है। तेरे पीछेसे मैं मरनेके लिये विष किससे मँगाऊँगी? बेचारी विष्णुप्रिया अभी बिल्कुल अबोध बालिका है। उसे अभी संसारका कुछ पता ही नहीं। उसने आजतक एक पैसेकी भी कोई चीज नहीं खरीदी। यदि उसे ही विष लेने भेजूँ तो हाल तो वह जा ही नहीं सकती। चली भी जाय तो कोई उसे अबोध बालिका समझकर देगा नहीं। ये जो इतने भक्त यहाँ आते हैं, ये सब तेरे ही कारण आया करते हैं। तू चला जायगा तो फिर ये बेचारे क्यों आवेंगे? मेरे सूने घरका तू ही एकमात्र दीपक है, तेरे रहनेसे अँधेरेमें भी मेरा घर आलोकित होता रहता है। तू अब मुझे आधी सुलगती ही हुई छोड़कर जा रहा है। जा बेटा! खुशीसे जा। किन्तु मैंने तुझे नौ महीने, गर्भमें रक्खा है, इसी नातेसे मेरा इतना काम तो कर जा। मुझ दुःखिनीका विषके सिवा दूसरा कोई और आश्रय भी तो

नहीं। गङ्गाजीमें कूदकर भी प्राण गँवाये जा सकते हैं; किन्तु बहुत सम्भव है कोई दयालु पुरुष मुझे उसमेंसे निकाल ले। इसलिये घरके भीतर ही रहनेवाली मुझ आश्रयहीना दुःखिनीका विष ही एकमात्र सहारा है।' यह कहते-कहते वृद्धा माता बेहोश होकर भूमिपर गिर पड़ी।

प्रभुने अपने हाथोंसे अपनी दुःखिनी माताको उठाया और सम्पूर्ण शरीरमें लगी हुई उसकी धूलिको अपने वस्त्रसे पोंछा और माताको धैर्य बँधाते हुए वे कहने लगे—'माता! तुमने मुझे गर्भमें धारण किया है। मेरे मल-मूत्र साफ किये हैं। मुझे खिला-पिलाकर और पढ़ा-लिखाकर इतना बड़ा किया है। तुम्हारे ऋणसे मैं किस प्रकार उऋण हो सकता हूँ? माता! यदि मैं अपने जीवित शरीरपरसे खाल उतारकर तुम्हारे पैरोंके लिये जूता बनाकर पहिनाऊँ तो भी तुम्हारे इतने भारी ऋणका परिशोध नहीं कर सकता। मैं जन्म-जन्मान्तरोंसे तुम्हारा ऋणी रहा हूँ और आगे भी रहूँगा। माँ! मैं सत्य-सत्य कह रहा हूँ, यदि मेरे वशकी बात होती, तो मैं प्राणोंको गँवाकर भी तुम्हें प्रसन्न कर सकता। किन्तु मैं करूँ क्या? मेरा मन मेरे वशमें नहीं है। मैं ऐसा करनेके लिये विवश हूँ।'

'तुम वीर-जननी हो। विश्वरूप-जैसे महापुरुषकी माता होनेका सौभाग्य तुम्हें प्राप्त हुआ है। तुम्हें इस प्रकारका विलाप शोभा नहीं देता। ध्रुवकी माता सुनीतिने अपने प्राणोंसे भी प्यारे पाँच वर्षकी अवस्थावाले अपने इकलौते पुत्रको तपस्या करनेके लिये जानेकी आज्ञा प्रदान कर दी थी। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी माताने पुत्रवधूसहित अपने इकलौते पुत्रको वन जानेकी अनुमति दे दी थी। सुमित्राने दृढ़तापूर्वक घरमें पुत्रवधू रहते हुए भी लक्ष्मणको आग्रहपूर्वक श्रीरामचन्द्रजीके साथ वनमें भेज दिया था। मदालसाने अपने सभी पुत्रोंको संन्यास-धर्मकी दीक्षा दी थी। तुम क्या उन माताओंसे कुछ कम हो? जननि! तुम्हारे चरणोंमें मेरा कोटि-कोटि प्रणाम है। तुम मेरे काममें

पुत्रस्नेहके कारण बाधा मत पहुँचाओ। मुझे प्रसन्नतापूर्वक संन्यास ग्रहण करनेकी अनुमति दो और ऐसा आशीर्वाद दो कि मैं अपने इस व्रतको भलीभाँति निभा सकूँ।'

माताने आँसुओंको पोंछते हुए कहा—'बेटा! मैंने आजतक तेरे किसी भी काममें हस्तक्षेप नहीं किया। तू जिस काममें प्रसन्न रहा, उसीमें मैं सदा प्रसन्न बनी रही। मैं चाहे भूखी बैठी रही, किन्तु तुझे हजार जगहसे लाकर तेरी रुचिके अनुसार सुन्दर भोजन कराया। मैं तेरी इच्छाके विरुद्ध कोई काम नहीं कर सकती। किन्तु घरमें रहकर क्या भगवद्भजन नहीं हो सकता? यहींपर श्रीवास, गदाधर, मुकुन्द, अद्वैताचार्य—इन सभी भक्तोंको लेकर दिन-रात्रि भजन-कीर्तन करता रह। मैं तुझे कभी भी न रोकूँगी। बेटा! तू सोच तो सही, इस अबोध बालिका विष्णुप्रियाकी क्या दशा होगी? इसने तो अभी संसारका कुछ भी सुख नहीं देखा। तेरे बिना यह कैसे जीवित रह सकेगी? मेरा तो विधाताने वज्रका हृदय बनाया है। विश्वरूपके जानेपर भी यह नहीं फटा और तेरे पिताके परलोक-गमन करनेपर भी यह ज्यों-का-त्यों ही बना रहा। मालूम पड़ता है, तेरे चले जानेपर भी इसके टुकड़े-टुकड़े नहीं होंगे। रोज सुनती हूँ, अमुक मर गया, अमुक चल बसा। न जाने मेरी आयु विधाताने कितनी बड़ी बना दी है, जो अभीतक वह सुध ही नहीं लेता! विष्णुप्रियाके आगेके लिये कोई आधार हो जाय और मैं मर जाऊँ, तब तू खुशीसे संन्यास ले लेना। मेरे रहते हुए और उस बालिकाको जीवित रहनेपर भी विधवा बनाकर तेरा घरसे जाना ठीक नहीं। मैं तेरी माता हूँ। मेरे दुःखकी ओर थोड़ा भी तो खयाल कर। तू जगत्के उद्धारके लिये काम करता है। क्या मैं जगत्में नहीं हूँ? मुझे जगत्से बाहर समझकर मेरी उपेक्षा क्यों कर रहा है? मुझ दुःखिनीको तू इस तरह बिलखती हुई छोड़ जायगा तो तुझे माताको दुखी करनेका पाप लगेगा।'

प्रभुने धैर्यके साथ कहा—'माता! तुम इतनी अधीर मत हो।

भाग्यको मेटनेकी सामर्थ्य मुझमें नहीं है। विधनाने मेरा-तुम्हारा संयोग इतने ही दिनका लिखा था। अब आगे लाख प्रयत्न करनेपर भी मैं नहीं रह सकता। भगवान् वासुदेव सबकी रक्षा करते हैं। उनका नाम विश्वम्भर है। जगत्के भरण-पोषणका भार उन्हींपर है। तुम हृदयसे इस अज्ञानजन्य मोहको निकाल डालो और मुझे प्रेमपूर्वक हृदयसे यति-धर्म ग्रहण करनेकी अनुमति प्रदान करो।'

रोते-रोते माताने कहा—'बेटा! मैं बालकपनसे ही तेरे स्वभावको जानती हूँ। तू जिस बातको ठीक समझता है, उसे ही करता है। फिर चाहे उसके विरुद्ध साक्षात् ब्रह्मा भी आकर तुझे समझावें तो भी तू उससे विचलित नहीं होता। अच्छी बात है, जिसमें तुझे प्रसन्नता हो, वही कर। तेरी प्रसन्नतामें ही मुझे प्रसन्नता है। कहीं भी रह, सुखपूर्वक रह। चाहे गृहस्थी बनकर रह या यति बनकर। मैं तो तुझे कभी भुला ही नहीं सकती। भगवान् तेरा कल्याण करें। किन्तु तुझे जाना हो तो मुझसे बिना ही कहे मत जाना। मुझे पहलेसे सूचना दे देना।'

महाप्रभुने इस प्रकार मातासे अनुमति लेकर उसकी चरणवन्दना की और उसे आश्वासन देते हुए कहने लगे—'माता! तुमसे मैं ऐसी ही आशा करता था, तुमने योग्य माताके अनुकूल ही बर्ताव किया है। मैं इस बातका तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ, कि तुमसे बिना कहे नहीं जाऊँगा। जिस दिन जाना होगा, उससे पहले ही तुम्हें सूचित कर दूँगा।' इस प्रकार प्रभुने माताको तो समझा-बुझाकर उससे आज्ञा ले ली। विष्णुप्रियाको समझाना थोड़ा कठिन था। वह अबतक अपने पितृगृहमें थीं, इसलिये उनके सामने यह प्रश्न उठा ही नहीं था। प्रभुके संन्यास ग्रहण करनेकी बात सम्पूर्ण नवद्वीपनगरमें फैल गयी थी। विष्णुप्रियाने भी अपने पिताके घरमें ही यह बात सुनी। उसी समय वह अपने पिताके घरसे पतिदेवके यहाँ आ गयीं।

विष्णुप्रिया और गौरहरि

यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्र-
लीलावलोकपरिरम्भणरासगोष्ठ्याम् ।
नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा विना तं
गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरन्तम् ॥*

(श्रीमद्भा० १० । ३९ । २९)

पितृगृहसे जिस दिन विष्णुप्रिया पतिगृहमें आयी थीं उस दिन प्रभु भक्तोंके साथ कुछ देरमें गङ्गाजीसे लौटे थे। आते ही भक्तोंके सहित प्रभुने भोजन किया। भोजनके अनन्तर सभी भक्त अपने-अपने स्थानोंको चले गये। प्रभु भी अपने शयनगृहमें जाकर शय्यापर लेट गये।

इधर विष्णुप्रियाका हृदय धक्-धक् कर रहा था। उनके हृदय-सागरमें मानो चिन्ता और शोकका बवण्डर-सा उठ रहा था। एकके

---

* गोपियां परस्परमें कह रही हैं—'हा! जिन श्रीकृष्णके स्नेहके साथ खिले हुए सुन्दर मन्द-मन्द हास्ययुक्त मनोहर मुखको देखकर और उनके सुमधुर वचनोंको सुनकर तथा लीलाके सहित कुटिल कटाक्षोंसे उनकी मन्द-मन्द चितवन और प्रेमालिङ्गनोंद्वारा रास-क्रीड़ामें हमने बहुत-सी बड़ी-बड़ी निशाएँ एक क्षणके समान बिता दीं, ऐसे अपने प्यारे श्रीकृष्णके बिना हम इस दुस्सह विरहजन्य दुःखको कैसे सहन कर सकेंगी? इसका सहन करना तो अत्यन्त ही कठिन है।'

बाद एक विचार आते और उनकी स्मृतिमात्रसे विष्णुप्रिया काँपने लगतीं। ऐसी दशामें भूख-प्यासका क्या काम ? मानो भूख-प्यास तो शोक और चिन्ताके भयसे अपना स्थान परित्याग करके भाग गयी थीं। प्रातःकालसे उन्होंने कुछ भी नहीं खाया था। पतिके निकट बिना कुछ प्रसाद पाये जाना अनुचित समझकर उन्होंने प्रभुके उच्छिष्ट पात्रोंमेंसे दो-चार ग्रास अनिच्छापूर्वक माताके आग्रहसे खा लिये। उनके मुखमें अन्न भीतर जाता ही नहीं था। जैसे-तैसे कुछ खा-पीकर वे धीरे-धीरे पतिदेवकी शय्याके समीप पहुँचीं। उस समय प्रभुको कुछ निद्रा-सी आ गयी थी। दुग्धके स्वच्छ और सुन्दर झागोंके समान सुकोमल गद्देके ऊपर बहुत ही सफेद वस्त्र बिछा हुआ था। दो झालरदार स्वच्छ सफेद कोमल तकिये प्रभुके सिरहाने रखे हुए थे। एक बाँह तकियेके ऊपर रक्खी थी। उसपर प्रभुका सिर रक्खा हुआ था। कमलके समान दोनों बड़े-बड़े नेत्र मुँदे हुए थे। उनके मुखके ऊपर घुँघराली काली-काली लटें छिटक रही थीं। मानो मकरन्दके लालची मत्त मधुपोंकी काली-काली पंक्तियाँ एक-दूसरेका आश्रय लेकर उस अनुपम मुख-कमलकी मन-मोहक मधुरिमाका प्रेमपूर्वक पान कर रही हों। अर्धनिद्रित समयके प्रभुके श्री-मुखकी शोभाको देखकर विष्णुप्रियाजी ठिठक गयीं। थोड़ी देर खड़ी होकर वे उस अनिर्वचनीय अनुपम आननकी अद्‌भुत आभाको निहा-रती रहीं। उनकी अधीरता अधिकाधिक बढ़ती ही जाती थी। धीरेसे वे प्रभुके पैरोंके समीप बैठ गयीं और अपने कोमल करोंसे शनैः-शनैः प्रभुके पाद-पद्मोंके तलवोंको सुहराने लगीं। उन चरणोंकी कोमलता, अरुणता और सुकुमारताको देखकर विष्णुप्रियाका हृदय फटने लगा। वे सोचने लगीं—'हाय ! प्राणप्यारे इन सुकोमल चरणोंसे कण्टकाकीर्ण पृथ्वीपर नंगे पैरों कैसे भ्रमण कर सकेंगे ? तपाये हुए सुवर्णके रंगके समान यह राजकुमारका-सा सुकुमार शरीर संन्यासके कठोर नियमोंका पालन कैसे कर सकेगा ?' इन विचारोंके आते ही विष्णुप्रियाजीके नेत्रोंसे

मोतियोंके समान अश्रुविन्दु झड़ने लगे। चरणोंमें गर्म विन्दुओंके स्पर्श होनेसे प्रभु चौंक उठे और तकियेसे थोड़ा सिर उठाकर उन्होंने अपने पैरोंकी ओर निहारा। सामने विष्णुप्रियाको देखकर प्रभु थोड़े उठ-से पड़े। आधे लेटे-ही-लेटे प्रभुने कहा—'तुम रो क्यों रही हो? इतनी अधीर क्यों बनी हुई हो? तुम्हें यह हो क्या गया है?'

रोते-रोते अत्यन्त क्षीणस्वरमें सुबकियाँ भरते हुए विष्णुप्रियाजीने कहा—'अपने भाग्यको रो रही हूँ कि विधाताने मुझे इतनी सौभाग्यशालिनी क्यों बनाया?'

प्रभुने कुछ प्रेमविस्मित अधीरता-सी प्रकट करते हुए कहा—'बात तो बताती नहीं, वैसे ही सुबकियाँ भर रही हो। मालूम भी तो होना चाहिये क्या बात है?'

उसी प्रकार रोते-रोते विष्णुप्रियाजी बोलीं—'मैंने सुना है आप घर-बार छोड़कर संन्यासी होंगे, हम सबको छोड़कर चले जायँगे।'

प्रभुने हँसते हुए कहा—'तुमसे यह बे-सिर-पैरकी बात कही किसने?'

विष्णुप्रियाजीने अपनी बातपर कुछ जोर देते हुए और अपना स्नेह-अधिकार जताते हुए कहा—'किसीने भी क्यों न कही हो। आप बतलाइये क्या यह बात ठीक नहीं है?'

प्रभुने मुस्कराते हुए कहा—'हाँ, कुछ-कुछ ठीक है!'

विष्णुप्रियाजीपर मानो वज्र गिर पड़ा, वे अधीर होकर प्रभुके चरणोंमें गिर पड़ीं और फूट-फूटकर रोने लगीं। प्रभुने उन्हें प्रेमपूर्वक हाथका सहारा देते हुए उठाया और प्रेमपूर्वक आलिङ्गन करते हुए वे बोले—'तभी तो मैं तुमसे कोई बात कहता नहीं। तुम एकदम अधीर हो जाती हो।'

हाय ! उस समयकी विष्णुप्रियाजीकी मनोवेदनाका अनुभव कौन कर सकता है ? उनके दोनों नेत्रोंसे निरन्तर अश्रु प्रवाहित हो रहे थे, उसी वेदनाके आवेशमें रोते-रोते उन्होंने कहा—'प्राणनाथ ! मुझ दुखियाको सर्वथा निराश्रय बनाकर आप क्या सचमुच चले जायँगे ? क्या इस भाग्यहीना अबलाको अनाथिनी ही बना जायँगे ? हाय ! मुझे अपने सौभाग्यसुखका बड़ा भारी गर्व था। ऐसे त्रैलोक्य-सुन्दर जगद्वन्द्य अपने प्राणप्यारे पतिको पाकर मैं अपनेको सर्वश्रेष्ठ सौभाग्यशालिनी समझती थी। जिसके रूप-लावण्यको देखकर स्वर्गकी अप्सराएँ भी मुझसे ईर्ष्या करती थीं। नवद्वीपकी नारियाँ जिस मेरे सौभाग्य-सुखकी सदा भूरि-भूरि प्रशंसा किया करती थीं, वे ही कालान्तरमें मुझे भाग्यहीन-सी द्वार-द्वार भटकते देखकर मेरी दशापर दया प्रकट करेंगी। मैं अनाथिनी अब किसकी शरणमें जाऊँगी ? मेरी जीवन-नौकाका डाँड़ अब कौन अपने हाथमें लेकर खेवेगा ? पति ही स्त्रियोंका एकमात्र आश्रय-स्थान है, पतिके बिना स्त्रियोंकी और दूसरी गति हो ही क्या सकती है ?'

प्रभुने विष्णुप्रियाजीको समझाते हुए कहा—देखो, संसारमें सभी जीव प्रारब्धकर्मोंके अधीन हैं। जितने दिनतक जिसका जिसके साथ संस्कार होता है, वह उतने ही दिनतक उसके साथ रह सकता है। सबके आश्रयदाता तो वे ही श्रीहरि हैं। तुम श्रीकृष्णका सदा चिन्तन करती रहोगी तो तुम्हें मेरे जानेका तनिक भी दुःख न होगा।'

रोते-रोते विष्णुप्रियाजीने कहा—'देव ! आपके अतिरिक्त कोई दूसरे श्रीकृष्ण हैं, इसे मैं आजतक जानती ही नहीं, और न आगे जाननेकी ही इच्छा है। मेरे तो ईश्वर, हरि और परमात्मा जो भी कुछ हैं, आप ही हैं। आपके श्रीचरणोंके चिन्तनके अतिरिक्त दूसरा चिन्तनीय पदार्थ मेरी दृष्टिमें है ही नहीं। मैं आपकी चरण-सेवामें ही अपना जीवन बिताना चाहती हूँ और मुझे किसी प्रकारके संसारी सुखकी इच्छा नहीं है !'

प्रभुने कुछ अधीरता प्रकट करते हुए कहा—'प्रिये ! मैं सदासे तुम्हारा हूँ और सदा तुम्हारा रहूँगा। तुम्हारा यह निःस्वार्थ प्रेम कभी भुलाया जा सकता है ? कौन ऐसा भाग्यहीन होगा जो तुम-जैसी सर्वगुण-सम्पन्ना जीवनकी सहचरीका परित्याग करनेकी मनमें इच्छा भी करेगा, किन्तु विष्णुप्रिये ! मैं सत्य-सत्य कहता हूँ, मेरा मन अब मेरे वशमें नहीं है। जीवोंका दुःख अब मुझसे देखा नहीं जा सकता। मैं संसारी होकर और घरमें रहकर जीवोंका उतना अधिक कल्याण नहीं कर सकता। जीवोंके लिये मुझे शरीरसे तुम्हारा त्याग करना ही होगा। मनसे तो तुम्हारा प्रेम कभी भुलाया नहीं जा सकता। तुम निरन्तर विष्णुचिन्तन करती हुई अपने नामको सार्थक बनाओ और अपने जीवनको सफल करो।'

बहुत ही अधीर स्वरमें विष्णुप्रियाजीने कहा—'मेरे देवता ! यदि जीवोंके कल्याणमें मैं ही बाधकरूप हूँ तो मैं आपके श्रीचरणोंका स्पर्श करके कहती हूँ कि मैं सदा अपने पितृगृहमें ही रहा करूँगी। जब कभी आप गङ्गास्नानको जाया करेंगे, तो कहींसे छिपकर दर्शन कर लिया करूँगी। माताको तो कम-से-कम आधार रहेगा। खैर, मैं तो अपने हृदयको वज्र बनाकर इस पहाड़-जैसे दुःखको सहन भी कर लूँ, किन्तु उन वृद्धा माताकी क्या दशा होगी ? उनके तो आगे-पीछे कोई नहीं है। उनका जीवन तो एकमात्र आपके ही ऊपर निर्भर है। वे आपके बिना जीवित न रह सकेंगी। निश्चय ही वे आत्मघात करके अपने प्राणोंको गँवा देंगी।'

प्रभुने कुछ रुँधे हुए कण्ठसे रुक-रुककर कहा—'सबके आगे-पीछे वे ही श्रीहरि हैं। उनके सिवाय प्राणियोंका दूसरा आश्रय हो ही नहीं सकता। प्राणिमात्रके आश्रय वे ही हैं। उनके स्मरणसे सभीका कल्याण होगा। प्रिये ! मैं विवश हूँ, मुझे नवद्वीपको परित्याग करके अन्यत्र जाना ही होगा। संन्यासके सिवाय मुझे दूसरे किसी काममें सुख नहीं। तुम सदासे मुझे सुखी बनानेकी ही चेष्टा करती रही हो। तुमने मेरी प्रसन्नताके

निमित्त अपने सभी सुखोंका परित्याग किया है। जिस बातमें मैं प्रसन्न रह सकूँ, तुम सदा ऐसा ही आचरण करती रही हो। अब तुम मुझे दुखी बनाना क्यों चाहती हो ? यदि तुम मुझे जबरदस्ती यहाँ रहनेका आग्रह करोगी तो मुझे सुख न मिल सकेगा। रही माताकी बात, सो उनसे तो मैं अनुमति ले भी चुका और उन्होंने मुझे संन्यासके निमित्त आज्ञा दे भी दी। अब तुमसे ही अनुमति लेनी और शेष रही है। मुझे पूर्ण आशा है, तुम भी मेरे इस शुभ काममें बाधा उपस्थित न करके प्रसन्नतापूर्वक अनुमति दे दोगी।'

कठोर हृदय करके और अपने दुःखके आवेगको बलपूर्वक रोकते हुए विष्णुप्रियाने कहा—'यदि माताने आपको संन्यासकी आज्ञा दे दी है, तो मैं आपके काममें रोड़ा न अटकाऊँगी। आपकी प्रसन्नतामें ही मेरी प्रसन्नता है। आप जिस दशामें भी रहकर प्रसन्न हों वही मुझे स्वीकार है, किन्तु प्राणेश्वर ! मुझे हृदयसे न भुलाइयेगा। आपके श्रीचरणोंका निरन्तर ध्यान बना रहे ऐसा आशीर्वाद मुझे और देते जाइयेगा। प्रसन्नतापूर्वक तो कैसे कहूँ, किन्तु आपकी प्रसन्नताके सम्मुख मुझे सब कुछ स्वीकार है। आप समर्थ हैं, मेरे स्वामी हैं, स्वतन्त्र हैं और पतितोंके उद्धारक हैं। मैं तो आपके चरणोंकी दासी हूँ। स्वामीके सुखके निमित्त दासी सब कुछ सहन कर सकती है। किन्तु मेरा स्मरण बना रहे, यही प्रार्थना है।'

प्रभुने प्रियाजीको प्रेमपूर्वक आलिङ्गन करते हुए कहा—'धन्य है, तुमने एक वीरपत्नीके समान ही यह बात कही है। इतना साहस तुम-जैसी पतिपरायणा सती-साध्वी स्त्रियाँ ही कर सकती हैं। तुम सदा मेरे हृदयमें बनी रहोगी और अभी मैं जाता थोड़े ही हूँ। जब जाना होगा तब बताऊँगा।' इस प्रकार प्रेमकी बातें करते-करते ही वह सम्पूर्ण रात्रि बीत गयी। प्रातःकाल प्रभु उठकर नित्य-कर्मके लिये चले गये।

परम सहृदय निमाईकी निर्दयता

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमीश्वरः॥*

(उत्तररामच० तृतीयाङ्क २। ७। २३)

पता नहीं, भगवान्‌ने विषमतामें ही महानता छिपा रखी है क्या ? 'महतो महीयान्' भगवान् 'अणोरणीयान्' भी कहे जाते हैं। निराकार

---

* इन महात्माओंके हृदय वज्रसे भी अधिक कठोर और पुष्पोंसे भी अधिक कोमल होते हैं, ऐसे इन असाधारण लोकोत्तर महापुरुषोंके चरितोंको जाननेमें कौन पुरुष समर्थ हो सकता है।

होनेपर भी प्रभु साकार-से दीखते हैं। अकर्ता होते हुए भी सम्पूर्ण विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयके एकमात्र कारण वे ही कहे जाते हैं। अजन्मा होनेपर भी उनके शास्त्रोंमें जन्म कहे और सुने जाते हैं। इस प्रकारकी विषमतामें ही तो कहीं ईश्वरता छिपी हुई नहीं रहती। महापुरुषोंके जीवनमें भी सदा ऐसी ही विषमता देखनेमें आती है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके सम्पूर्ण चरित्रको पढ़ जाइये, उसमें स्थान-स्थानपर भारी विषमता ही भरी हुई मिलेगी। श्रीमद्रामायण विषमताका भारी भण्डार ही है। अत्यन्त सुकुमार होनेपर भी राम भयङ्कर राक्षसोंका बात-की-बातमें वध कर डालते हैं। तपस्वी होते हुए भी धनुष-बाणको हाथसे नहीं छोड़ते। मैत्री करनेपर भी सुग्रीवको भय दिखाते हैं। सम्पूर्ण जीवन ही उनका विषमतामय है। जो राम अपनी माताओंको प्राणोंसे भी प्यारे थे, जो पिताकी आज्ञाको कभी नहीं टालते थे, जिनका कोमल-हृदय किसीको दुखी देख ही नहीं सकता था, वे ही वन जाते समय इतने कठोर हो गये, कि उनपर माताके वाक्य-बाणोंका, उनके अविरत-बहते हुए अश्रुओंका, पिताकी दीनतासे की हुई प्रार्थनाका, बिलखते हुए नगरवासियोंके करुण-क्रन्दनका, तपस्वी और ऋत्विज वृद्ध ब्राह्मणोंके हंसके समान श्वेत बालोंवाली दुहाईका, राजकर्मचारी और भगवान् वशिष्ठकी भाँति-भाँतिकी नगरमें रहनेवाली युक्तियोंका तनिक भी असर नहीं पड़ा। वे सभीको रोते-बिलखते छोड़कर, सभीको शोकसागरमें डुबाकर अपने हृदयको वज्रसे भी अधिक कठोर बनाकर बनके लिये चले ही गये। इससे उनकी कठोरताका परिचय मिलता है।

सीतामाताके हरणके समयके उनके क्रोधको पढ़कर कलेजा काँपने लगता है, मानो वे अपनी प्राणप्यारी प्रियाके पीछे सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्डको बात-की-बातमें अपने अमोघ बाणोंसे नष्ट ही कर डालेंगे। स्फटिक-शिलापर बैठकर अपनी प्रियाके लिये उनकी अधीरताको सुनकर

पाषाण भी पिघल गये थे। लङ्कापर चढ़ाईके पूर्व, हनूमान्‌के आनेपर सीताजीके लिये वे कितने व्याकुल-से दिखायी पड़ते थे! उनकी छोटी-छोटी बातोंको स्मरण करके रोते रहते थे। उस समय कौन नहीं समझता था कि सीताको पाते ही ये एकदम उन्हें गलेसे लगाकर खूब रुदन न करेंगे और उन्हें प्रेमपूर्वक अपने अंकमें न बिठा लेंगे। किन्तु रावणके वधके अनन्तर उनका रंग ही पलट गया। सीताके सामने आनेपर उन्होंने जैसी कठोर, कड़ी और अकथनीय बातें कह डालीं, उन्हें सुनकर कौन उन्हें सहृदय और प्रेमी कह सकता है? यथार्थमें देखा जाय तो यही उनकी महानताका द्योतक है। जिसे हम प्राणोंसे भी अधिक प्यार करते हैं यदि उसके परित्याग करनेका समय दैवात् आकर उपस्थित हो जाय, तो बात-की-बातमें हँसते हुए उसे त्याग देना इसीका नाम तो यथार्थ प्रेम है। जो दृढ़ताके साथ 'स्वीकार' करनेकी सामर्थ्य रखता है उसमें त्यागकी भी उतनी ही अधिक शक्ति होनी चाहिये।

भक्तोंके साथ महाप्रभुका ऐसा अपूर्व प्रेम देखकर कोई स्वप्नमें भी इस बातका अनुमान नहीं कर सकता था कि ये एक दिन इन सबको त्यागकर भी चले जायँगे। वे भक्तोंसे हृदय खोलकर मिलते। भक्तोंके प्राणोंके साथ अपने प्राणोंको मिला देते। उनके आलिङ्गनमें, नृत्यमें, नगर-भ्रमणमें, ऐश्वर्यमें, भक्तोंके साथ भोजनमें, सर्वत्र ओतप्रोतभावसे प्रेम-ही-प्रेम भरा रहता। विष्णुप्रियाजी समझती थीं, पतिदेव मुझसे ही अत्यधिक स्नेह करते हैं, वे मेरे प्रेमपाशमें दृढ़तासे बँधे हुए हैं। माता समझती थीं, निमाई मुझे छोड़कर कहीं जा ही नहीं सकता। उसे मेरे बिना एक दिन भी तो कहीं रहना अच्छा ही नहीं लगता। दूसरेके हाथसे भोजन करनेमें उसका पेट ही नहीं भरता! जबतक मेरे हाथसे कुछ नहीं खा लेता तबतक उसकी तृप्ति ही नहीं होती। इस प्रकार सभी प्रभुको अपने प्रेमकी रज्जुमें दृढ़ताके साथ बँधा हुआ समझते थे। किन्तु

वे महापुरुष थे। उनके लिये यह सब लीला थी। उनका कौन प्रिय और कौन अप्रिय ? वे तो चराचर विश्वमें अपने प्यारे प्रेमका ही दर्शन करते थे। प्रेम ही उनका आराध्यदेव था। प्राणियोंकी शकल-सूरतसे उनका अनुराग नहीं था, वे तो प्रेमके पुजारी थे। पुजारी क्या थे, प्रेम-स्वरूप ही थे। उन्होंने एकदम संन्यास लेनेका निश्चय कर लिया। सभीको अपनी-अपनी भूलका अनुभव होने लगा। आजतक जिसे हम केवल अपना ही समझते थे, वह तो प्राणिमात्रका प्रिय निकला। उसपर हमारे ही समान सभी प्राणियोंका समानभावसे अधिकार है, सभी उसके द्वारा प्रेमपीयूष पाकर प्रसन्न हो सकते हैं।

महाप्रभुके संन्यास लेनेका समाचार-सम्पूर्ण नवद्वीप नगरमें फैल गया। बहुत-से लोग प्रभुके दर्शनोंके लिये आने लगे। महाप्रभु अब भक्तोंके सहित संकीर्तनमें सम्मिलित नहीं होते थे। भक्तगण स्वयं ही मिलकर संकीर्तन करते और प्रातःसायं प्रभुके दर्शनोंके लिये उनके घरपर आया करते थे।

जिस दिन महामहिम श्रीस्वामी केशव भारती प्रभुके घर आये थे उसी दिन प्रभुने संन्यास लेनेकी तिथि निश्चित कर ली थी। उस समय सूर्य दक्षिणायन थे। दक्षिणायन-सूर्यमें शुभ संस्कार और इस प्रकारके वैदिक कृत्य और अनुष्ठान नहीं किये जाते इसलिये प्रभु उत्तरायण-सूर्य होनेकी प्रतीक्षा करने लगे। समय बीतते कुछ देर नही लगती। धीरे-धीरे भक्तोंको तथा प्रभुके सम्बन्धियोंको शोक-सागरमें डुबा देनेवाला वह समय सन्निकट आ पहुँचा। प्रभुने नित्यानन्दजीको गृह-परित्याग करनेवाली तिथिकी सूचना दे दी और उनसे आग्रहपूर्वक कह दिया—'हमारी माता, हमारे मौसा चन्द्रशेखर आचार्य, गदाधर, मुकुन्द और ब्रह्मानन्द—इन पाँचोंको छोड़कर आप और किसीको भी इस बातको

न बतावें।' नित्यानन्दजी तो इनके स्वरूप ही थे। उन्होंने इनकी आज्ञा शिरोधार्य की और दुखी होकर उस भाग्यहीन दिनकी प्रतीक्षा करने लगे।

महाप्रभुके लिये आजका ही दिन नवद्वीपमें अन्तिम दिन है। कल अब गौरहरि न तो निमाई पण्डित रहेंगे और न शचीपुत्र। वे अकेली विष्णुप्रियाके पति न रहकर प्राणिमात्रके प्रिय हो जायँगे। कल वे भक्तोंके ही वन्दनीय न होकर जगद्वन्दनीय बन जायँगे। किसीको क्या पता था कि अब नवद्वीप नदियानागरसे शून्य बन जायगा!

प्रातःकाल हुआ, प्रभु नित्यकर्मसे निवृत्त होकर भक्तोंके साथ श्रीवास पण्डितके घर चले गये। वहाँ सभी भक्त आकर एकत्रित हुए। सभीने प्रभुके साथ मिलकर संकीर्तन किया। फिर भक्तोंको साथ लेकर प्रभु गङ्गाकिनारे चले गये और वहाँ बहुत देरतक श्रीकृष्ण-कथाका रसास्वादन करते रहे। अनन्तर सभी भक्तोंके समूहके सहित अपने घरपर आये। न जाने उस दिन सभीके हृदयोंमें कैसी एक अपूर्व-सी प्रेरणा हुई कि उस रात्रिमें प्रभुके प्रायः सभी अन्तरङ्ग भक्त आकर एकत्रित हो गये। खोल बेचनेवाले श्रीधर कहींसे थोड़ा चिउरा लेकर आये और बड़े ही प्रेमसे आकर प्रभुके चरणोंमें उसे भेंट किया। अपने अकिञ्चन भक्तका अन्तिम समयमें ऐसा अपूर्व उपहार पाकर प्रभु परम प्रसन्न हुए और हँसते हुए कहने लगे—'श्रीधर! ये ऐसे सुन्दर चिउरा तुम कहाँसे ले आये?' इतना कहकर प्रभुने उन्हें माताको दिया। उसी समय एक भक्त बहुत-सा दूध ले आया। प्रभु दूधको देखते ही खिलखिलाकर हँस पड़े और प्रसन्नता प्रकट करते हुए कहने लगे—'श्रीधर! तुम बड़े शुभ मुहूर्तमें चिउरा लेकर चले थे, लो दूध भी आ गया।' यह कहकर प्रभुने माताको चिउराकी खीर बनानेको कहा। माताने जल्दीसे भोजन बनाया, प्रभुने भक्तोंके सहित महाभागवत श्रीधरके लाये हुए चिउरेकी खीर

खायी। वही उनका नवद्वीपमें शचीमाताके हाथका अन्तिम भोजन था। भोजनके अनन्तर सभी भक्त अपने-अपने घरोंको चले गये। महाप्रभुजी भी अपने शयन-गृहमें जाकर लेट गये।

वियोगजन्य दुःखकी आशंकासे भयभीता हिरणीकी भाँति डरते-डरते विष्णुप्रियाने प्रभुके शयन-गृहमें प्रवेश किया। उनकी आँखोंमेंसे निरन्तर अश्रु बह रहे थे।

प्रभुने हँसते हुए कहा—'प्रिये! मैं तुम्हारे हँसते हुए मुख-कमलको एक बार देखना चाहता हूँ। तुम एक बार प्रसन्न होकर मेरी ओर देखो।'

विष्णुप्रियाजी चुप ही रहीं, उन्होंने प्रभुकी बातका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। तब प्रभु आग्रहके स्वरमें कहने लगे—'विष्णुप्रिये! तुम बोलती क्यों नहीं, क्या सोच रही हो?'

आँसू पोंछते हुए विष्णुप्रियाने कहा—'प्रभो! न जाने क्यों आज मेरा दिल धड़क रहा है। मेरा हृदय आप-से-आप ही फटा-सा जाता है! पता नहीं क्या बात है?'

प्रभुने बातको टालते हुए कहा—'तुम सदा सोच करती रहती हो, उसीका यह परिणाम है। अच्छा, तुम हँस दो, देखो, अभी तुम्हारा सभी शोक-मोह दूर होता है या नहीं?'

विष्णुप्रियाजीने प्रेमपूर्ण कुछ रोषके स्वरमें कहा—'रहने भी दो! तुम तो ऐसे ही मुझे बनाया करते हो। ऐसे समयमें तो तुम्हें ही हँसी आ सकती है। मेरा तो हृदय रुदन कर रहा । फिर कैसे हँसूँ? हँसी तो भीतरकी प्रसन्नतासे आती है।'

विष्णुप्रियाजीको पता चल गया कि अवश्य ही पतिदेव आज ही मुझे अनाथिनी बनाकर गृह-त्याग करेंगे, किन्तु उन्होंने प्रभुके सम्मुख इस बातको प्रकट नहीं किया। वे रात्रिभर प्रभुके चरणोंको दबाती रहीं।

प्रभुने भी आज उन्हें बड़े ही प्रेमके साथ अनेकों बार गाढ़ालिङ्गन कर-करके परम सुखी बना दिया। किन्तु विष्णुप्रियाको पतिके आजके इन आलिङ्गनोंमें विशेष सुखका अनुभव नहीं हुआ। जिस प्रकार शूलीपर चढ़नेवालेको उस समय भाँति-भाँतिकी स्वादिष्ट मिठाइयाँ रुचिकर प्रतीत नहीं होतीं, उसी प्रकार विष्णुप्रियाको वह पतिका इतना अधिक स्नेह और अधिक पीड़ा पहुँचाने लगा।

माताको तो पहलेसे ही पता था कि निमाई आज घर छोड़कर चला जायगा, वे दरवाजेकी चौखटपर पड़ी हुई रात्रिभर आह भरती रहीं। विष्णुप्रिया भी प्रभुके पैरोंको पकड़े रात्रिभर ज्यों-की-त्यों बैठी रहीं।

माघका महीना था, शुक्लपक्षका चन्द्रमा अस्त हो चुका था। दो घड़ी रजनी शेष थी। सम्पूर्ण नगरके नर-नारी सुखकी निद्रामें सोये हुए थे; किन्तु महाप्रभुको नींद कहाँ, वे तो संन्यासकी उमंगमें भूख-प्यास, सुख-निद्रा आदिको एकदम भुलाये हुए थे। विष्णुप्रिया उनके पैरोंको पकड़े बैठी हुई थीं। प्रभु उनसे छूटकर भाग निकलनेका सुअवसर ढूँढ़ रहे थे। भावी बड़ी प्रबल है, जो होनहार होता है, वैसे ही उसके लिये साधन भी जुट जाते हैं, रात्रिभरकी जागी हुई विष्णुप्रियाको नींद आ गयी। वह प्रभुकी शय्यापर ही उनके चरणोंमें पड़कर सो गयी। रात्रिभरकी जागी हुई थीं इसलिये पड़ते ही गाढ़ निद्राने आकर उनके ऊपर अपना अधिकार जमा लिया।

प्रभुने इसे ही बड़ा अच्छा सुअवसर समझा। बहुत ही धीरेसे प्रभुने अपने चरणोंको विष्णुप्रियाजीकी गोदमेंसे उठाया। पैरके उठाते ही विष्णुप्रियाजी कुछ हिलीं। उसी समय प्रभुने दूसरे पैरको ज्यों-का-त्यों ही उनकी छातीपर रखा रहने दिया। थोड़ी देरमें फिर धीरे-धीरे दूसरे भी पैरको उठाया। अबके विष्णुप्रियाजीको कुछ भी पता नहीं चला। प्रभु बहुत ही धीरेसे शय्यापरसे नीचे उतरे। पासमें खूँटीपर

टँगे हुए अपने वस्त्र पहिने और एक बार फिर अपनी प्राणप्यारीकी ओर दृष्टिपात किया सामने एक क्षीण ज्योतिका दीपक टिमटिमा रहा था। मानो वह भी प्रभुके वियोगजन्य दुःखके कारण दुखी होकर रो रहा है। दीपका मन्द-मन्द प्रकाश विष्णुप्रियाजीके मुखपर पड़ रहा था, इससे उनके मुखकी कान्ति और भी अधिक शोभायमान हो रही थी। प्रभु इस प्रकार गाढ़ निद्रामें पड़ी हुई अपनी प्राणप्यारीके चन्द्रमाके समान खिले हुए मुखको देखकर एक बार कुछ झिझके।

वे सोचने लगे—'मैं इस अबोध बालिकाके ऊपर यह कैसा अनर्थ कर रहा हूँ। इसे बिना सूचित किये हुए, इसकी बेहोशीमें मैं इसे सदाके लिये त्याग रहा हूँ। यह मेरा काम बड़ा ही कठोर और निन्दनीय है।' फिर अपनेको सावधान करके वे सोचने लगे—'जीवोंके कल्याणके निमित्त ऐसी कठोरता मुझे करनी ही पड़ेगी। जब एक ओरसे कठोर न बनूँगा तो संसारका कल्याण कैसे होगा? मायामें बँधे हुए जीवोंको त्याग-वैराग्यका पाठ कैसे पढ़ा सकूँगा? लोग मेरे इसी कार्यसे तो त्याग-वैराग्यकी शिक्षा प्राप्त कर सकेंगे।' इतना सोचकर वे मन-ही-मन विष्णुप्रियाजीको आशीर्वाद देते हुए शयन-घरसे बाहर हुए। दरवाजेपर शचीमाता बेहोश-सी पड़ी रुदन कर रही थीं। उनकी आँखोंमें भला नींद कहाँ? वे तो पुत्र-विछोहरूपी शोक-सागरमें डुबकियाँ लगा रही थीं। कभी ऊपर उछल आतीं और कभी फिर जलमें डुबकियाँ लगाने लगतीं। प्रभुने बेहोश पड़ी हुई दुःखिनी माताके चरणोंमें मन-ही-मन प्रणाम किया। धीरेसे उनकी चरण-धूलि उठाकर मस्तकपर चढ़ायी, फिर उनकी प्रदक्षिणा की और मन-ही-मन प्रार्थना की—'हे माता! तुमने मेरे लिये बड़े-बड़े कष्ट उठाये। मुझे खिला-पिलाकर, पढ़ा-लिखाकर इतना बड़ा किया। फिर भी मैं तेरी कुछ भी सेवा नहीं कर सका। माता! मैं तुम्हारा जन्म-जन्मान्तरोंतक ऋणी रहूँगा, तुम्हारे ऋणसे

कभी भी मुक्त न हो सकूँगा।' इतना कहकर वे जल्दीसे दरवाजेके बाहर हुए और दौड़कर गङ्गा-किनारे पहुँचे।

वे ही जाड़ेके दिन थे, जिन दिनों प्रभुके अग्रज विश्वरूप घर छोड़ कर गये थे। वही समय था और वही घाट। उस समय नाव कहाँ मिलती। विश्वरूपजीने भी हाथोंसे तैरकर ही गङ्गाजीको पार किया था। प्रभुने भी अपने बड़े भाईके ही पथका अनुसरण करना निश्चय किया।

उन्होंने घाटपर खड़े होकर पीछे फिरकर एक बार नवद्वीप नगरीके अन्तिम दर्शन किये। वे हाथ जोड़कर गद्गद-कण्ठसे कहने लगे—'हे ताराओंसे भरी हुई रात्रि! तू मेरे गृह-त्यागकी साक्षी है। ओ दशों दिशाओ! तुम मुझे घर से बाहर होता हुआ देख रही हो। हे धर्म! तुम मेरी सभी चेष्टाओंको समझनेवाले हो। मैं जीवोंके कल्याणके निमित्त घर-बार छोड़ रहा हूँ। हे विश्वब्रह्माण्डके पालनकर्ता! मैं अपनी वृद्धा माता और युवती पत्नीको तुम्हारे ही सहारेपर छोड़ रहा हूँ। तुम्हारा नाम विश्वम्भर है। तुम सभी प्राणियोंका पालन करते हो और करते रहोगे। इसलिये मैं निश्चिन्त होकर जा रहा हूँ।' यह कहकर प्रभुने एक बार नवद्वीप नगरीको और फिर भगवती भागीरथीको प्रणाम किया और जल्दीसे गङ्गाजीके शीतल जलके बहते हुए प्रवाहमें कूद पड़े और तैरकर उस पार हुए। उसी प्रकार वे गीले वस्त्रोंसे ही कटवा (कण्टक नगर) केशव भारतीके गङ्गा-तटवाले आश्रमपर पहुँच गये।

जिस निर्दय घाटने विश्वरूप और विश्वम्भर दोनों भाइयोंको पार करके सदाके लिये नवद्वीपके नर-नारियोंसे पृथक् कर दिया, वह आजतक भी नवद्वीपमें 'निर्दय घाट' के नामसे प्रसिद्ध होकर अपनी लोक-प्रसिद्ध निर्दयताका परिचय दे रहा है।

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ।
दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥*

(श्रीमद्भा० १० । ३० । ३९)

निद्रामें पड़ी हुई विष्णुप्रियाजीने करवट बदली। सहसा वे चौंक पड़ीं और जल्दीसे उठकर बैठ गयीं। मानो उनके ऊपर चौड़े मैदानमें बिजली गिर पड़ी हो, अथवा सोते समय किसीने उनका सर्वस्व हरण कर लिया हो। वे भूली-सी, पगली-सी बेसुधि-सी आँखोंको मलती हुई चारों ओर देखने लगीं। उन्हें जागते हुए भी स्वप्नका-सा अनुभव होने लगा। वे अपने हाथोंसे प्रभुकी शय्याको टटोलने लगीं, किन्तु अब वहाँ था ही क्या? शुक तो पिंजड़ा परित्याग करके वनवासी बन गया। अपने प्राणनाथको पलंगपर न पाकर विष्णुप्रियाजीने जोरोंके साथ चीत्कार मारी और 'हा नाथ! हा प्राणप्यारे! मुझ दुःखिनीको इस प्रकार धोखा देकर चले गये।' यह कहते-कहते जोरोंसे नीचे गिर पड़ीं और ऊपरसे गिरते ही बेसुधि हो गयीं। उनके क्रन्दनकी ध्वनि शचीमाताके कानोंमें पड़ी। उनकी उस करुण क्रन्दनसे बेहोशी दूर हुई। वहीं पड़े-पड़े उन्होंने कहा—'बेटी! बेटी! क्या मैं सचमुच लुट गयी? क्या मेरा इकलौता बेटा मुझे धोखा देकर चला गया? क्या वह मेरी आँखोंका तारा निकलकर मुझ विधवाको इस वृद्धावस्थामें अन्धी बना गया? मेरी आँखोंके दो तारे थे। एकके निकल जानेपर सोचती थी, एक आँखसे ही काम चला लूँगी।

---

* भगवान्‌के रासमें सहसा अन्तर्धान हो जानेपर वियोग-दुःखसे व्याकुल हुई गोपिकाएँ रुदन कर रही हैं—

हा नाथ! हा रमण करनेवाले! ओ हमारे प्राणोंसे भी प्यारे! ओ महापराक्रमी! प्यारे! तुम कहां हो? कहां हो? तुम्हारे वियोगसे हम अत्यन्त ही दीन हैं। हम आपकी दासी हैं, हमें अपने दर्शन दो!

...ा संसार सूना-ही-सूना
...ा कौन पकड़ेगा ? बेटा !
...ा निमाई सचमुच चला गया ?'
...ुखमेंसे आवाज ही नहीं निकलती थी।
...ा हुई जोरोंसे रुदन करने लगीं। दुःखिनी
मा... ...ड़ाती हुई प्रभुके शयन-भवनमें पहुँचीं। वहाँ उसने
प्रभुके प... ...ा देखा। विष्णुप्रिया नीचे पड़ी हुई रुदन कर रही थीं।
माताकी अधीरताका ठिकाना नहीं रहा। वे जोरोंसे रुदन करने ...—
'बेटा निमाई! तू कहाँ चला गया ? अरे, अपनी इस बूढ़ी माताको
इस तरह धोखा मत दे। बेटा ! तू कहाँ छिप गया है ? मुझे अपनी सूरत
तो दिखा जा। बेटा ! तू रोज प्रातःकाल मुझे उठकर प्रणाम किया करता
था। आज मैं कितनी देरसे खड़ी हूँ, उठकर प्रणाम क्यों नहीं करता !'
इतना कहकर माता दीपकको उठाकर घरके चारों ओर देखने लगी।
मानो मेरा निमाई यहीं कहीं छिपा बैठा होगा। माता पलंगके नीचे देख
रही थी। बिछौनाको बार-बार टटोलती, मानो निमाई इसीमें छिप
गया। वृद्धा माताके दुःखके कारण काँपते हुए हाथोंसे दीपक नीचे गिर
पड़ा और वे भी विष्णुप्रियाके पास ही बेहोश होकर गिर पड़ीं और फिर
उठकर चलनेको तैयार हुईं और कहती जाती थीं—'मैं तो वहीं जाऊँगी
जहाँ मेरा निमाई होगा। मैं तो अपने निमाईको ढूँढूँगी, वह यदि
मिल गया तो उसके साथ रहूँगी, नहीं तो गङ्गाजीमें कूदकर प्राण दे
दूँगी।' यह कहकर वे दरवाजेकी ओर जाने लगीं। विष्णुप्रियाजी भी
अब होशमें आ गयीं और वे भी माताके वस्त्रको पकड़कर जिस प्रकार
गौके पीछे उसकी बछिया चलती है, उसी प्रकार चलने लगीं। वृद्धा माता
द्वारपर भी नहीं पहुँचने पायीं कि बीचमें ही मूर्छित होकर गिर पड़ी।

इतनेमें ही कुछ भक्त उषा-स्नान करके प्रभुके दर्शनोंके लिये आ
गये। द्वारपर माताको बेहोश पड़े देखकर भक्त समझ गये कि महाप्रभु

आज जरूर चल गये हैं
शेखर आचार्य तथा श्रीवास
और विष्णुप्रियाको इस प्रकार विल
भाँतिसे समझा-समझाकर आश्वासन दे
श्रीवासने मातासे कहा—'माता ! तुम ... वे
निमाई तुमसे जरूर मिलेगा । तुम्हारा पुत्र इतना ... चौड़े

माता संज्ञाशून्य-सी पड़ी हुई थी । नित्यानन्दजी उनको अपने हाथसे उठाया । उनके सम्पूर्ण शरीरमें लगी हुई धूलिको अपने वस्त्रसे पोंछा और उसे धैर्य दिलाते हुए वे कहने लगे–'माता ! तुम इतना शोक मत करो । हमारा हृदय फटा जाता है । हम तुम्हारे दूसरे पुत्र हैं । हम तुमसे शपथपूर्वक कहते हैं, तुम्हारा निमाई जहाँ भी कहीं होगा, वहींसे लाकर हम उसे तुमसे मिला देंगे । हम अभी जाते हैं ।' नित्यानन्दजीकी बात सुनकर माताने कुछ धैर्य धारण किया । उन्होंने रोते-रोते कहा—'बेटा ! मैं निमाई बिना जीवित न रह सकूँगी । तुम कहींसे भी उसे ढूँढ़कर ले आ । नहीं तो मैं विष खाकर या गङ्गाजीमें कूदकर अपने प्राणोंको परित्याग कर दूँगी ।'

नित्यानन्दजीने कहा—'माँ ! इस प्रकारके तुम्हारे रुदनको देखकर हमारी छाती फटती है । तुम धैर्य धरो । हम अभी जाते हैं ।' यह कहकर नित्यानन्दजीने श्रीवास पण्डितको तो माता तथा विष्णुप्रियाजीकी देख-रेखके लिये वहीं छोड़ा । वे जानते थे कि प्रभु कटवा (कण्टक नगर) में स्वामी केशव भारतीसे संन्यास लेनेकी बात कह रहे थे, अतः नित्यानन्दजी अपने साथ वक्रेश्वर, गदाधर, मुकुन्द और चन्द्रशेखर आचार्यको लेकर गङ्गा-पार करके कटवाकी ही ओर चल पड़े ।*

---

* आगेकी पुण्य लीलाओंके लिये तीसरा खण्ड देखनेकी प्रार्थना है ।

मुद्रक—काशी मुद्रणालय, विश्वेश्वरगंज, वाराणसी ।

मिलनेका पता

गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)